कांग्रेस के सौ वर्ष

मूल्य पचास रुपए (50.00)
संस्करण 198_ © मन्मथनाथ गुप्त
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित
CONGRESS KE SAU VARSH (History of Indian National Congress)
by Manmathnath Gupta

कांग्रेस के सौ वर्ष

सघर्ष और सफलता का इतिहास

मन्मथनाथ गुप्त

भूमिका

मैं मन्मथनाथ गुप्त को जानता हू । यह जरूरी नही है कि उनकी हर बात से मैं सहमत हू। फिर भी उन्होने यह जो पुस्तक लिखी है, मैं उसकी प्रशसा करता हू । काग्रेस की महिमामयी शताब्दी इस वर्ष मनाई जा रही है। उसके सन्दर्भ मे श्री मन्मथनाथ जी की पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी । काग्रेस का जनता की भावनाओ से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। नई पीढ़ी के लिए यह पुस्तक उपयोगी होगी।

7 फरवरी 1983 —कमलापति त्रिपाठी
9, जनपथ, नई दिल्ली कार्यकारी अध्यक्ष
अ भा कांग्रेस कमेटी

दो शब्द

राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास का मैं पुराना छात्र हू। 1939 मे मेरी लिखी हुई पुस्तक 'भारत मे क्रातिचेष्टा का रोमाचकारी इतिहास' प्रकाशित हुई और छपते ही ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। पुस्तक का यह नाम मेरा दिया हुआ नही था, बल्कि "चाद" का फासी अक निकालकर यशस्वी हुए रामरखसिंह सहगल का दिया हुआ था। असल मे उन्होंने इसके प्रथम कई अध्याय अपने मासिक पत्र मे छापे थे। लेखमाला समाप्त होने तक धैर्य धारण किए रहना मुझे मुश्किल लगा, इसलिए कि मैं किसी भी वक्त गिरफ्तार हो सकता था और हुआ भी यही — 1939 के सितम्बर मे मैं दो युद्ध विरोधी व्याख्यानो के लिए अन्दर कर दिया गया। पिछली बार 12 साल बाद छूटा था, इस बार सात साल बाद छूटा।

1939 मे मेरी एक पुस्तिका भी जब्त हो गई, जिसका नाम था 'क्रान्तिकारी आन्दोलन और राष्ट्रीय विकास'। यह पुस्तिका एक थीसिस के रूप मे थी। स्वराज्य (1947) के बाद ये दोनो जब्त पुस्तकें अपटुडेट करके स्वतन्त्रता प्राप्ति तक लाकर एक वृहत पुस्तक बन गई। अब यह सातवें सस्करण मे 'क्रातिकारी आन्दोलन का इतिहास' के रूप मे है।

पर क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का एक महत्वपूर्ण और निर्णायक अश होने पर भी उसमे आन्दोलन का समग्र इतिहास नही आ पाया था, अतएव मुझे 1947 मे राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास लिखना पडा। इसका एक लघु सस्करण भी निकाला गया, ताकि छात्रो के काम आए।

इस क्षेत्र मे मेरी रुचि पुरानी है। इस सम्बन्ध मे मेरे पहले और दूसरे प्रयास के परिणाम ब्रिटिश सरकार ने जब्त करके मुझे जो सम्मान दिया था वह मेरे जीवन का सबसे बडा सम्मान है।

अब दूसरा सम्मान यह मिला कि कांग्रेस के तपे हुए नेता, मेरे प्रथम जेलवास (1929) के तथा काशी विद्यापीठ के वरिष्ठ साथी कमलापति जी ने मेरी इस पुस्तक की भूमिका लिखी।

कहते हैं हाथी के पाव मे सबके पाव। भारतीय राजनीति का यह हाथी कांग्रेस है। इसका अर्थ यह नही कि हमारे जगल मे हाथी के अलावा और कोई प्राणी नही है। बाघ हैं, जगल का राजा सिंह है, पानी का राजा घडियाल है, बगुले हैं, मरु का पक्षी शुतरमुर्ग है, ईश्वर की तरह घट-घट व्यापी कौए हैं। आलकारिक भाषा त्याग कर यदि साधारण भाषा अपनाई जाए और कांग्रेस को देश का पर्यायवाची न मानकर एक दल मात्र माना जाए, तो भी जीवित दलो मे वह सबसे पुराना पोढा है।[1] कितने दल आए और काल के

गाल मे समा गए, पर काग्रेस जीवित है, और उससे भी बडी बात यह है कि उसे वह गुर मालूम है और वह मत्र सिद्ध है जिसके द्वारा वह बराबर पतझडो को परास्त करके नव यौवन प्राप्त करती है। काग्रेस बराबर नए विचारो को पचाकर परिपुष्ट हुई है। वह नए विचारो (जैसे समाजवाद) को पचाने मे यदि देर करती है तो दूसरे लोग जो समाजवाद की ठेकेदारी का दम भरते हैं, वही कौन से समाजवाद पर डटे है। आज सारे ससार के समाजवादी और साम्यवादी ससदवाद के सुखद दलदल मे फस चुके हैं, उनमे बारह कनौजिया तेरह चूल्हे हैं, निजी जीवन मे वे किसी प्रकार दूसरो से श्रेष्ठ नही। हद तो यह है कि वे मार्क्स और लेनिन को नही पढते, पढते हैं तो समझते नही। कुछ लोग जो मुख्य दल से फटकर अपने को मार्क्सवादी लेनिनवादी नक्सलवादी कहते हैं वे रूस का साम्राज्यवादी बता रहे हैं। इन्दिरोत्तर चुनाव मे ये सब घोर दक्षिणपथियो खालिस्तानियों से कधे से कधा मिलाकर लडे। जनता ने उनको उचित सजा दी। पर इस सजा से वे कुछ सीखे ऐसा नही लगता।

काग्रेस की सबसे बडी एतिहासिक सेवा रही है देश का एकीकरण। सचाई तो यह है कि काग्रेस के गगन मे भगवान भास्कर के भव्य रूप मे महात्मा गाधी के उदित होने के पहले ही यह महान काय सिद्ध हो चुका था। जवाहरलाल नेहरू ने 19 जनवरी 1936 को लाड लोथियन को लिखे एक पत्र म कहा था कि भारत मे ब्रिटिश शासन ने अनिवाय रूप से देश मे एकता पैदा करने मे कही सहायता की है। पर उसी पत्र मे उन्होने यह भी लिखा कि अग्रेजो ने पराधीनता-बोध से उत्पन्न इस प्रक्रिया का विरोध किया, यहा तक विरोध किया कि पाकिस्तान बना। खालिस्तान का बीज भी उन्ही का डाला हुआ है। कथित होमलैंड मे आम मुसलमानो की कैसी दुगति हुई, कैसे पाकिस्तान टूटा यह सब देखकर भी विदेशी पैसो से कैसे खालिस्तान का आन्दोलन चला, यह हम जानते हैं।

आज अणु बम से सुसज्जित विश्व साम्राज्यवाद के समक्ष एकमात्र प्रश्न यह है— कि भारत की अखडता बनी रहे। हिटलर पीडित यूरोप ने लगभग इन्ही परिस्थितियो मे सयुक्त मोर्चे का नारा दिया था। पहले भारत बचे तो सही, फिर हम समाजवाद के लिए लडेंगे—वेदान्ती समाजवाद नही, वैज्ञानिक समाजवाद।

मन्मथनाथ गुप्त

क्रम

1

काग्रेस-स्थापना की पृष्ठभूमि

वृक्ष का इतिहास कहा से शुरू होता है ? जब अकुर आखें खोलकर, अगडाई लेकर, सलज्ज दृष्टि से विराट आकाश को पहली बार देखता है, या कि बीज से, जो जमीन के नीचे धरती का रस पीकर एकाएक जगजाहिर होकर अपना झडा ऊपर फैलाने की तयारी करता है ?

काग्रेस का जन्म 1885 मे हुआ, पर यह कोई कायकारणहीन आकस्मिक घटना नही थी। इसके पीछे वर्षों की साधना, सघर्ष, सग्राम, रक्तपात और साधारण जन के स्वाधीन होने की आकुल छटपटाहट थी। अग्रेज इतिहासकारो ने भारत के इतिहास को तीन भागो मे बाटा था—हिन्दू युग, मुस्लिम युग, ब्रिटिश युग— पर इस विभाजन की वास्तविकता यह है कि कथित हिन्दू युग मे थोडे से परस्पर लडनेवाले राजाओ और उनके पिछलग्गुओ का राज्य था। आम जनता तुलसीदास की भाषा मे चेरी मात्र थी। कथित मुस्लिम युग मे भी परिस्थिति वही रही, सिवा इसके कि शासक अब विदेशी थे, हा उनके वशज अवश्य भारत मे बस गए। मुस्लिम सुलतान भी अपने हिन्दू पूर्ववर्तियो की तरह शोषक थे, हा, अब इन सुलतानो के सेवक मानसिह जैसे कुछ हिन्दू भी इन शोषको मे शामिल हो गए। यह इसलिए नही कि शासक धर्मनिरपेक्ष थे, बल्कि इसलिए कि वे अपना राज्य स्थायी बनाना चाहते थे। रहा ब्रिटिश युग, उसमे अग्रेजो और उनके चरण-दासो, चारणो और चपरासियो के चमडे के सिक्के चलते रहे। आम जनता जहा की तहा रही। महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि अब उसका धन देश के बाहर जाने लगा।

हजारो वर्षों के हमारे इतिहास मे प्रथम बार 1947 के 15 अगस्त को भारत के जनसाधारण के हाथो मे राष्ट्र की बागडोर आई। प्रथम प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वतन्त्रता प्राप्ति का आवाहन करते हुए 1947 मे कहा था—

"आज हम एक आजाद लोग है, आजाद मुल्क है। मैं आपसे जो बोल रहा हू, एक हैसियत, एक सरकारी हैसियत मुझे मिली है, जिसका असली नाम यह होना चाहिए कि मैं हिन्दुस्तान की जनता का प्रथम सेवक हू। जिस हैसियत मे मैं आपसे बोल रहा हू, वह हैसियत मुझे किसी बाहरी शख्स ने नही, आपने दी है।"

हैसियत प्राप्ति की यह बात न तो युधिष्ठिर कह सकते थे, न अशोक, न अकबर। भारत की जनता को प्रथम बार 1947 मे एक अहता और मर्यादा मिली, जो पहले के किसी युग मे कभी उसे एक दिन के लिए भी नही मिली थी। रहा यह कि किन्ही कारणो से इस अहता और मर्यादा को पूर्ण रूप से विकसित होने का मौका नही मिला, यह दूसरी बात है। यथास्थान हम उस पर लौटेंगे।

ऊपर सूत्र रूप मे जो कुछ कहा गया, उसके ढाचे म विचार करते हुए जिस सबसे बडे तथ्य पर हमारी दृष्टि जाकर जम जाती है, वह यह है काग्रेस का जन्म उन लोगो मे एका पैदा करने मे सहायक हुआ, जो अब तक विभिन्न भाषाओ, जातियो, धर्मों, उप-

जातियों, श्रेणियो और उपश्रेणियो म बटे बिखरे थे और हरेक अपनी डेढ़ इंट की मस्जिद मे अपनी डफली बजा रहा था। श्री पी० वी० काणे के अनुसार धर्मशास्त्रो में केवल 172 जातियो का उल्लेख है, पर मदु मजुमदार के अनुसार इन जातियो की सख्या हजारो म पहुच चुकी थी। यहा तक कि मुसलमानों, ईसाइयो, सिक्खो में भी जातिभेद बहुत गहरा था। धर्मों म सकडो सम्प्रदाय और फिर्के थे, जो एक दूसरे का गला काटने को उद्यत थे। जब इस्लाम का उदभव भी नही हुआ था, उस समय भी जैनियो के विरुद्ध इतना विद्वेष था कि कहा गया कि 'हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेत जनमदिरम' यानी यदि हाथी पीछा कर रहा हो, तो भी जैन मन्दिर म आश्रय न ले। मुसलमानो मे शिया, सुन्नी अहमदिया न जाने कितने फिर्के हैं। पाकिस्तान मे कानूनन अहमदिया को गैर मुस्लिम और उनकी मसजिदो को अमसजिद घोषित किया गया है। सिक्खो म मजहबी सिक्ख हैं, जिनका दर्जा अलग है और अहमदियो की तरह निरकारियो को सिक्ख धर्म से बाहर माना गया है।

मध्य युग म बहुत से हिन्दू मुसलमान हो गए, पर जसा कि डी० इब्बटसन ने 'पजाब कास्टस' म लिखा है, धर्मपरिवर्तन से जातपात पर असर नही पडता था। राजपूत, गूजर, जाट अपनी अपनी हिंदू बिरादरी के अधिक करीब थे। उच्च वर्णों से आए हुए मुसलमान शरीफ और निम्न वर्णों से आए लोग रजील कहलाते थे। ईरान और आक्सस नदी के उस पार से आए हुए मुसलमानो को विलायती कहकर उन्हें ईर्ष्या की दृष्टि से देखा जाता था। सुन्नी शिया लोगों को रफीजी समझते थे और ईमानदार जुलाहो, कसाईयो, भिश्तियो, लालबेगियो (भगियो) को घटिया समझा जाता था। सिक्खो म और यहा तक कि ईसाइयो म भी जातिभेद प्रत्यक्ष है। नानक, कबीर, रामदास, चैतन्य ने जो एक दूसरे को निकट लाने के आन्दोलन चलाए, वे जातिभेद की चट्टान पर टकराकर टूट फूट गए।

भारत मे बीस के करीब मुख्य भाषाए हैं। एक भाषा होती तो हम मे एका आसान होता, यह भी शायद एक मिथक है, क्योंकि ऐसी स्थिति मे अरबों का एक जाति होना चाहिए था। अरबो का तो धर्म भी एक है। ईरान और ईराक आपस मे टक्कर ले रहे हैं यद्यपि उनका धर्म मूलत एक है।

सारी बातो का निचोड यह कहा जा सकता है कि भारत एक बहुधर्मी, बहु भाषाभाषी देश है। अग्रेज इस कमजोरी को अच्छी तरह जानते थे और इसका फायदा उठाकर हमेशा के लिए हम पर राज्य करना चाहते थे। उन्होंने इसका एक दर्शनशास्त्र बनाया जिसका नाम है White man s burden—इसका अर्थ यह कि श्वेत जातियो पर यह दायित्व या बोझ है कि वे श्वेतेतर जातियो पर राज्य करके उन्हे सभ्य बनाते रहें। इस दर्शन को अब नया नाम देकर सम्पन्न श्वेत देश उसे अपने लोगों की 'ग्लोबल रेस्पान्सिबिलिटी' यानी विश्वव्यापी जिम्मेदारी बताते हैं।

जब कांग्रेस का जन्म हुआ, उसके सामने सबसे बड़ी समस्या थी सम्प्रदायो, धर्मों, भाषाओं, मतमतान्तरो मे बटे लोगो की आवाज में एकरूपता लाना। इस एकरूपता के सामने क्या मार्ग हो, उसका लक्ष्य क्या हो, दिशा क्या हो, यह सब धीरे धीरे विकसित हुआ। दिशा के स्पष्टीकरण और आविष्करण के साथ साथ उसे कैसे प्राप्त किया जाए, क्या उपाय किए जाए, आदि उलझन भरे प्रश्न भी उठे।

कांग्रेस से पहले इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए और भी बहुत से व्यक्तियो और सस्थाओं ने काम किया, पर वे व्यक्ति अकेले थे और सस्थाए प्रादेशिक तथा स्थानीय। सर्वदेशीय स्तर पर कोई काम नही हुआ था।

भारत मे उस समय बरतानिया की ईस्ट इडिया कम्पनी का राज्य था। यदि थोडे मे कहा जाए तो लार्ड क्लाइव स लेकर जितने भी अग्रेज शासक हुए, उनका एकमात्र उद्देश्य लूटमार, राज्यविस्तार और भारत का दोहन करके अपने देश के लोगो की उन्नति करना था। सच कहा जाए तो इगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति इसी कारण द्रुत हुई कि भारत से लूटे हुए धन का सहारा उसे मिला, नही तो वैज्ञानिक आविष्कार, जैसे स्टीम इजन का आविष्कार, आदि बातें पुस्तको के पन्नो मे पडी पडी पीली पड जाती। वैज्ञानिक आविष्कार होते गए और पूजी से उनका पष्ठपोषण होता गया।

कुछ भारतीय यह जल्द ही पहचान गए कि भारतीयो को अग्रेजी सीखकर ससार की मुख्य धारा म प्रवेश करना पडेगा। ईस्ट इडिया कम्पनी नहीं चाहती थी कि भारतीय अग्रेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त करें, उनके लिए क्लर्क ही पर्याप्त थे। पर कम्पनी के इस विरोध के बावजूद 1817 को 20 जनवरी को हिदू रईसो के रुपया मे कलकत्ता मे हिंदू कालेज खुल गया। इसमे अग्रेज़ी के साथ-साथ सस्कृत पढाने की भी व्यवस्था हुई। इस प्रकार भारतीयो के प्रयत्न म ही अग्रेजी उच्च शिक्षा की पहली सस्था खुली। यह उस नवजागरण का आरभ था जो अनेक रूपा म बढा और पनपा और जिसकी परिणति काग्रेस की अग्रेजा द्वारा स्थापना और फिर भारतीयो द्वारा रूप-परिवतन म हुई।

राममोहन राय का उदय

राममोहन राय (1772 1833) भारतीय नवजागति के पुरोधा कहे जा सकते हैं। वह अग्रेज़ी और भारतीय नाना विद्याए, दशन तथा धम शास्त्र के ज्ञाता थे। वह बहुत ही उदार विचारो के व्यक्ति थे, और घटनाओ तथा वस्तुओ को भविष्य की दृष्टि से देखने मे समथ थे। वह जिस युग मे पले, उस युग म पश्चिम की उदीयमान पूजीवादी सभ्यता और भारतवप की ह्रास शील सामन्तवादी धार्मिक सभ्यता मे प्रवल सघष हो रहा था। राममोहन ने इन दोनो सभ्यताओ का अच्छी तरह अध्ययन किया था, और उनकी यह राय बन चुकी थी कि भारतीयो को अग्रेजी शिक्षा अपनानी चाहिए।

राममोहन राय शास्त्रो का अध्ययन करके इस नतीजे पर पहुचे कि हिदू धम का सार एकेश्वरवाद है, न कि बहुदेव देवी पूजा। उन्होने 1804 मे ही फारसी मे 'तहफात उलमुआहदीन' नामक एक ग्रथ लिखा, जिसम एकेश्वरवाद को पुन स्थापित किया। कहना न होगा कि उनकी इस चेष्टा से पादरी बहुत नाराज हुए, और मजे की बात यह है कि कई कट्टर हिदू भी उनसे नाराज हुए। पर वह इससे दबने वाले नही थे। 1815 मे उन्होने वेदान्त का भाष्य लिखा, और उसमे फिर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया। उसी साल उन्होने मानिकतल्ला मे आत्मीय सभा नाम स एक सभा की स्थापना की, जिसका उद्देश्य वेदान्त की आलोचना करना था। यही आत्मीय सभा 1828 मे उपासना समाज, ब्राह्म सभा या ब्राह्म समाज मे परिणत हो गई।

राममोहन राय केवल दाशनिक क्षेत्र मे ही लोहा लेकर चुप नही रहे, उन्होने सती प्रथा के विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन किया और 1829 तक इसे सरकार को कानूनन बन्द कर देना पडा। इस सबध मे राजा राममोहन को पडितो से बहुत लोहा लेना पडा।

राममोहन राय ने शीघ्र ही ब्राह्म समाज की स्थापना की। इसमे सब धर्मों की अच्छी बातो को अपनाया गया। इसन मूर्ति पूजा पर प्रहार किया और विधवा विवाह को अपनाया। राममोहन दुनिया की हलचलो से परिचित थे, और उनके विषय मे बहुत प्रगतिशील दृष्टि रखते थे। कहा जाता है कि आस्ट्रिया द्वारा इटली के रौंदे जाने पर उन्हे बडा अफसोस था। जिस समय वह इगलैंड जा रहे थे, उस समय उन्होने एक फ्रेंच

जहाज पर फ्रास की क्रातिकारी पताका देखी। इस पर वह इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने उस जहाज को खडा करवाया, उस पर चढे और चिल्ला-चिल्लाकर फ्रास की जय बोलने लगे। एक विवरण के अनुसार यह घटना केप आव गुड हाप मे हुई और इस मौके पर उत्तेजना के कारण उनके पैरो मे जो चोट आई, वह अत तक बनी रही। लदन म रहते समय भी उन्होने अपना देशी पहनावा नही छोडा। यह बात शायद आज कोई बहुत महत्त्व की न जचे, पर उस युग मे जब कि लोग अग्रेजो के साथ का अर्थ ही ईसाई हो जाना तथा शराब पीना समझते थे, यह बहुत बडी बात थी। वह 'भारतवर्ष को स्वतत्र, ब्रिटेन का मित्र तथा एशिया को रोशनी देने वाले' के रूप मे देखना चाहते थे।

पत्रकारिता का विकास

राममोहन ने अपने मत के प्रचार की दृष्टि से समाचार पत्र भी निकाले। इस प्रकार वे बगला गद्य तथा पत्रकार कला के आदि पिताओ म भी हैं। भारतवर्ष मे सबसे पहला गैरसरकारी छापाखाना श्रीरामपुर के बपटिस्ट मिशनरियो ने खोला था और 1780 की 29 जनवरी का जेम्स अगस्टस हिकी ने 'बगाल गजट' नाम से जो अखबार निकाला, वही भारतवर्ष का प्रथम समाचार पत्र था। 1826 म प्रकाशित 'उदन्त मातड' हिंदी का पहला पत्र था। इसके प्रकाशक कानपुर के युगलकिशोर शुक्ल थे, जो सदर दीवानी अदालत के एक कर्मचारी थे। पत्र केवल डेढ साल चला क्योकि लोगो ने इसे नही अपनाया। 1830 तक बगला मे तीन दैनिक और तीस अग्रेजी पत्र थे। पत्रो की स्वाधीनता के सग्राम का एक निराला ही इतिहास है। हम उसके ब्योरे म नही जाएगे, इतना ही बता दें कि इसमे भी राजा राममोहनराय का नाम अमर रहेगा। 4 दिसम्बर, 1821 को उन्होने 'सम्वाद कौमुदी' नाम से एक पत्र निकाला। इस पत्र मे वे नियमित रूप से लिखते थे। वे जो कुछ लिखते थे उनका अनुवाद साथ ही साथ जेम्स सिल्क बकिंहम के 'केलकटा जनल' म प्रकाशित होता था। इन्ही सब कारणो से चिढकर भारत सरकार ने 1823 म बकिंहम को भारत से निकालकर इगलड भेज दिया। बाद म यह सज्जन पालियामेट के मेम्बर हो गए, और वे फिर उन्ही बातो को पालियामेट मे कहने लगे जिनके लिए उनको भारत से निकाला गया था।

1823 मे ही यह कानून बनाया गया कि कोई भी व्यक्ति बिना इजाजत के न तो छापखाने का मालिक हो सकता है और न उसको इस्तेमाल ही कर सकता है। कहना न होगा कि इस कानून से छापाखाना तथा पत्र जगत पर कुठाराघात हुआ। बस क्या था, राममोहन राय तथा अन्य पाच प्रमुख व्यक्तियो ने इसके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट म एक दरख्वास्त दे दी। ये पाच व्यक्ति थे—चन्द्रकुमार ठाकुर, द्वारकानाथ ठाकुर, हरिश्चन्द्र घोष, गौरीचरण चट्टोपाध्याय और प्रसन्नकुमार ठाकुर। पर वहा इनकी कौन सुनता था? यह दरख्वास्त Aeropagitica of the Indian Press नाम से मशहूर है। 'सम्वाद कौमुदी' के अतिरिक्त राममोहन 12 अप्रैल 1822 से 'मीरतुल अखबार' नाम से एक फारसी अखबार भी निकालने लगे थे। जब उक्त गलाघोटू कानून बना तो उन्होने 4 अप्रैल 1823 को इसके प्रतिवाद मे 'मीरतुल अखबार' का प्रकाशन बन्द कर दिया।

रगभेद

राममोहन ने भारतीयो और गोरो म भेदभाव के विरुद्ध भी आन्दोलन किया। 1828 मे उन्होने इस नियम के विरुद्ध आन्दोलन किया कि हिन्दू और मुसलमानो के मुकदमो मे ईसाई जूरी हो सकते हैं, पर ईसाइयो के मुकदमो मे हिन्दू या मुसलमान

जूरी नही हो सकेंगे। उन्होने इस सबध मे ब्रैफोड को अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे लिखा कि यदि इस प्रकार का भेदभाव जारी रहा, तो वह दिन आ सकता है जब हिन्दू और मुसलमान मिलकर इस अ यायपूर्ण कानून के विरुद्ध लडेंगे, और उसमे उन्हे कामयाबी हासिल होगी। उन्होने कुछ कडाई के साथ यह लिखा कि भारतवष आयरलैंड नही है कि दो चार जगी जहाजो से खौफ खा जाए। यदि भारतवासी आयरिशो का एक-चौथाई साहस भी दिखलाए, तो देर भले ही लगे, वे अपने दुश्मनो के लिए बहुत खतरनाक साबित हो सकते हैं।

इस प्रकार राममोहन नवयुग की प्रतिमूर्ति तथा प्रतीक थे। यह आश्चय की बात है कि ऐसे मामलो मे भी जिनमे अंग्रेजो का कुछ बिगडता नही था, उन्होने राममोहन को वर्षों तक टरकाया। सती दाह एक ऐसी कुप्रथा थी जिसके सम्बन्ध मे दो राय नही हो सकती थी, पर इस सम्बन्ध मे भी सरकार ने दीघसूत्रीपन से काम लिया। जब इसका आन्दोलन जोरो से उठाया गया, तो भी लाड वेलेजली पूछताछ करके ही रह गए। वे समझते थे कि यह प्रथा खराब है, किन्तु वे अपने साम्राज्य का हित इसी में समझते थे कि प्रथा मे हस्तक्षेप न किया जाए। बहाना यह था कि सरकार धार्मिक बातो मे हस्तक्षेप करके जनता मे क्षोभ उत्पन्न करना नही चाहती। परतु सरकार ने ऐसी सकडो बातें की जिनसे जनता को क्षोभ हुआ—जैसे यहा की कारीगरी का नाश करके हजारो लोगो की रोजी छीन लेना। इसलिए क्षोभ की बात असली नही थी। सरकार ऐसे मामलो मे क्षोभ उत्पन्न करने से नही डरती थी जिनसे उसका काम बनता था।

कुछ अच्छे उदारचित्त अंग्रेज भी थे, जिनमे हिको और बकिंगहम का नाम आ चुका है। डिरोजियो हिन्दू कालेज म शिक्षक बनकर आए और उन्होन भी भारतीयो का साथ दिया। परन्तु डिरोजियो की शिष्य मण्डली और राममोहन द्वारा प्रचारित कायक्रम मे एक बहुत बडा फक यह था कि डिरोजियो के शिष्य अपने सुधारो मे धम का आधार नही मानते थे। धम को सब कुसंस्कारो का जनक बनाकर उन्होने धम के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की थी। वे बहुत से ऐसे काम करते थे, उदाहरणाथ, उन्होन उसी युग मे छुआ-छूत त्याग दिया था और गो-मास आदि भक्षण किया था, इत्यादि। पर वह लोगो को ईसाई बनाने मे दिलचस्पी नही रखते थे। लोगो को डिरोजियो से इतनी घबडाहट हुई कि हिन्दू कालेज कमेटी ने 25 अप्रल 1831 को उन्हे कालेज स निकाल दिया। इसके बाद डिरोजियो ने पहली जून से 'ईस्ट इंडिया' नाम से एक अखबार निकाला। दुर्भाग्य से उसी साल 26 दिसम्बर को उनकी मत्यु हो गई, नही तो इसमे सदेह नही कि वह कालेज के जरिये जो सेवा कर रहे थे, अब उसी को अखबार के जरिये व्यापक रूप म जारी रखते। डिरोजियो के शिष्यो म कई नवजागति के नेता हुए। पुरान लोग उनस जिस प्रकार घबडाते थे, उसकी कोई जरूरत नही थी, यह इस बात से साबित है कि डिरोजियो की शिष्य मडली मे केवल कृष्ण मोहन बन्दोपाध्याय ही ईसाई हुए, बाकी लोगो ने सुधार कार्यों मे भाग लिया। कृष्ण मोहन भी बराबर राष्ट्रीय विचार के रहे।

6 अक्टूबर 1831 को ब्रिटिश ससदीय समिति के सामने गवाही देते हुए मेजर जनरल सर लाइनोल स्मिथ ने कहा था—"अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप भारतीयो क मन मे एक दिन स्वतत्र होने की भावना जागेगी। उस समय हमे भारतवर्ष छोडकर चला जाना पडेगा।" बाद को मकाले नाम के सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान ने बडे जोरो के साथ इस बात की सिफारिश की कि भारतवष मे अंग्रेजी शिक्षा का प्रवतन किया जाए। यह सिफारिश करते हुए उन्होने बहुत सी अप्रासगिक बातें भी कही, जैसे उन्होंने कहा कि

भारत की सभ्यता तथा संस्कृति दो कौड़ी की है, पर उन्होंने जो सिफारिश की वही इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है न कि उनकी दी हुई गालियां तथा लतरानियां।

एक तरफ तो 1835 के करीब अंग्रेजी शिक्षा की संगठित चेष्टा हुई, दूसरी तरफ उन्हीं दिनों अर्थात् 1835 में ही 15 सितम्बर को सर चार्ल्स मेटकाफ ने भारतीय छापेखानों को स्वतंत्रता दे दी। इसका नतीजा यह हुआ कि देश में स्वतंत्र आलोचना तथा प्रगतिशील विचारों का सूत्रपात हुआ। इन दिनों प्रसन्न कुमार का साप्ताहिक पत्र 'रिफामर' खूब चलता था। इस पत्र के जरिए अंग्रेजी शिक्षित वर्ग में प्रगतिशील विचारों का प्रचार हुआ, तथा धीरे धीरे लोग यह महसूस करने लगे कि भारतीयों और गोरों में भेद नहीं होना चाहिए। पर भेद तो था और इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय भावना की जड़ में नस्लवाद के तत्व थे। यह स्मरण रहे कि भारतीय राष्ट्रीयता में, बल्कि सभी औपनिवेशिक देशों की राष्ट्रीयता में, इस तत्व को लाने के लिए स्वयं अंग्रेज और दूसरे गोरे ही जिम्मेदार हैं। यदि वे शुरू से ही भारतीयों और गोरों में भेद भाव न करते, तो इस उपादान की उत्पत्ति ही न होती। उनकी आक्रामकता के विरुद्ध बचाव के रूप में पददलित भारतीयों में इस उपादान का उत्पन्न होना आवश्यक और अनिवार्य था।

आरम्भिक संस्थाएं

बंगाल में बंगभाषा प्रकाशिका सभा, फिर जमींदार सभा बनी। जमींदार सभा में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सब बड़े जमींदार थे। ये लोग पैसे वाले होने के नाते अंग्रेजों की बराबरी करना चाहते थे। वे किसानों की भी कुछ उन्नति चाहते थे, क्योंकि किसान समृद्ध होगा तो उनकी भी भलाई होगी।

बाद को जमींदार सभा ने अपना कार्य क्षेत्र बढ़ाने के लिए यह तय किया कि विलायत में आन्दोलन किया जाए। राममोहन राय का 1833 में ही देहान्त हो चुका था। 1839 की जुलाई में विलियम ऐडम नामक एक अंग्रेज ने अंग्रेजों को भारतीय शिकायतों के बारे में उद्बुद्ध करने के लिए ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी नाम से इंगलैंड में एक सभा की स्थापना की थी। विलियम ऐडम राममोहन के मित्रों में थे, और वह जब तक इस देश में रहे, भारतीयों पर उनका विशेष स्नेह रहा। जमींदार सभा ने 30 नवम्बर 1839 को यह तय किया कि ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी विलायत में जमींदार सभा द्वारा उठाई हुई मांगों के सम्बन्ध में आन्दोलन करे। 1841 में ब्रिटिश इंडिया सोसायटी के मुखपत्र के रूप में 'ब्रिटिश इंडिया एडवोकेट' नामक एक पत्र प्रकाशित होने लगा जिसके सम्पादक हुए विलियम ऐडम। ऐडम को गुलामी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन में प्रसिद्ध जार्ज टामसन का भी सहयोग प्राप्त हुआ। 17 जुलाई, 1843 को जमींदार सभा की एक बैठक में यह तय हुआ कि जार्ज टामसन विलायत में सभा के एजेंट हैं। पर जमींदार सभा कुछ ही दिन टिकी।

यह स्वाभाविक भी था क्योंकि देश में जमींदार थे कितने। देश की उदीयमान मध्यवित्त श्रेणी का जमींदार सभा में न कोई स्थान था और न हो सकता था। इसी बीच 'सोसाइटी फॉर एक्विजिशन आव जनरल नॉलेज' यानी ज्ञानार्पाजिका सभा की स्थापना हो चुकी थी। इस सभा के स्थायी सभापति ताराचन्द चक्रवर्ती और मंत्री प्यारीचांद मित्र थे। इस सभा के अधिवेशनों में इतिहास, साहित्य, राजनीति, सभी विषयों पर व्याख्यान दिए जाते तथा निबन्ध पढ़े जाते थे। सभा के सदस्य कई अखबार भी चलाते थे।

ज्ञानोपार्जिका सभा के 8 फरवरी, 1843 वाले अधिवेशन मे दक्षिणारजन मुखोपाध्याय ने एक निबन्ध पढा। इस निबन्ध मे सरकार की कार्यवाहियो की बहुत कडी टीका की गई थी। अधिवेशन हिन्दू कालेज के भवन मे हो रहा था। कालेज के अध्यक्ष कैप्टन डी० एल० रिचडसन भी सभा मे उपस्थित थे। जिस समय दक्षिणारजन अपने निबन्ध के उस अश को पढ रहे थे, जिसमे सरकार की टीका की गई थी, रिचर्डसन आपे से बाहर हो गए, और अपना अधिकार जताते हुए बोले कि मैं हिन्दू कालेज भवन को राजद्रोहियो के गढ मे परिणत होने नही दे सकता। इस पर सभा के सभापति ताराचन्द बिगड गए और उन्होने कहा कि इस समय रिचडसन एक निमन्त्रित की तरह यहा पर बैठे हुए हैं, उन्हे कोई हक नही है कि वे इस तरह की बात कहे। उन्होने कहा कि यह सभापति का काम है कि वह देखे कि कौन क्या कह रहा है और जो कुछ कह रहा है, ठीक कह रहा है या नही। सभापति ने रिचडसन से कहा कि आप अपने मन्तव्य वापस लें, नही तो यह मामला कालेज के अधिकारियो, यहा तक कि सरकार के सामने पेश किया जाएगा। रिचडसन का अपना वक्तव्य वापस लेना पडा।

उस युग के लिए यह मामला बहुत बडा था। एग्लो इडियन अखबार 'इगलिशमैन' ने इस मामले को बहुत तूल दिया। प्रगतिशील दल का चक्रवर्ती गुट करार देकर उसके विरुद्ध हमले किए गए। फ्रेंड आफ इडिया' नामक अखबार ने तो यहा तक लिखा कि यदि कोई इस प्रकार का व्याख्यान बटेविया मे देता, तो इसके लिए वक्ता को कम-से-कम देश से निकाल दिया जाता। इधर सरकारपरस्त अखबारो ने ऐसा लिखा, उधर राष्ट्रीय अखबार 'बगाल हरकरा' ने दक्षिणारजन के पूरे निबन्ध को अपने 2 और 3 मार्च के अक मे छाप दिया, और साथ ही यह लिख दिया कि इसमे तो कोई ऐसी बात ही नही, जिसके कारण रिचडसन तथा उसके भाई बन्द इतने बिगडे हैं।

पर ज्ञानोपार्जिका सभा का वैचारिक दायरा बडा होते हुए भी कार्यक्षेत्र छोटा था। यह तय हुआ कि भारतवर्ष के मगल के लिए और भारत मे ब्रिटिश सरकार की उन्नति एव कार्यक्षमता को बढाने के लिए सब जातियो तथा धर्मों को एक सस्था बनाई जाए और इसका नाम 'बगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी' हो। सस्था के उद्देश्य के सबध मे तय हुआ कि यहा के विषय मे सब तरह के तथ्यो का सग्रह किया जाए, तथा शातिपूर्वक और वैध उपायो से ऐसी कारवाई की जाए, जिसके फलस्वरूप भारत मे सभी श्रेणियो की भलाई हो और उनके उचित अधिकार तथा स्वार्थों का सरक्षण हो। यह न समझा जाए कि इस सस्था के निर्माता बागी थे। इनके उद्देश्यो मे यह साफ कर दिया गया कि सस्था मल्का विक्टोरिया के प्रति श्रद्धा रखकर और उनके शासन तथा कानून को मानकर ही कार्रवाई करेगी।

यह सभा बन गई तो उसके सदस्यो मे ज्ञानोपार्जिका सभा के बहुत से लोग आ गए। सच तो यह है कि यह उसी सस्था का दूसरा तथा विस्तृत रूप था। इस सभा के मन्त्री भी प्यारीचाद मित्र हुए पर सभापति जाज टामसन बनाए गए। पूर्वोल्लिखित ताराचन्द इस सभा के असली नेता थे। यद्यपि टामसन इसके सभापति थे, भारत स्थित साधारण अग्रेज इस सभा की कारवाइयो को अच्छी दृष्टि से नही देखते थे। उनका मुख पत्र 'फ्रेंड आफ इण्डिया' बराबर इस सभा पर कडी टिप्पणी करता रहता था। टामसन के भारत मे रहते ही बगाल स्पेक्टेटर' 20 नवम्बर, 1843 को बन्द हो गया। इस पर ताना कसते हुए 'फ्रेंड आफ इण्डिया' ने लिखा कि "इस देश के लोगो के द्वारा कोई अच्छा काम कराना कितना असम्भव है इसका प्रमाण टामसन इस देश म रहते हुए ही पा गए।"

उक्त संस्था भी अधिक दिन नहीं टिकी। इसके बाद तत्वबोधिनी सभा की स्थापना हुई और उसने 'तत्वबोधिनी' पत्रिका निकाली। कवीन्द्र रवीन्द्र के पिता देवेन्द्र नाथ ठाकुर इस संस्था के प्रवर्तक थे। इस सभा का उद्देश्य यह था कि दार्शनिक स्तर पर ईसाइयत का विरोध किया जाए। यहां हम यह देख लें कि भारतीय राष्ट्रीयता के साथ साथ हिन्दू अभ्युत्थान का आंदोलन कदम रखकर चल रहा था, यद्यपि जैसा कि हमने बंगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी के उद्देश्यों में देखा, नारा यह था कि सब जातियों तथा धर्मों के लोगों की आम भलाई हो।

इस जमाने में हिन्दुओं में केवल विद्रोही सम्प्रदायों के रूप में ही ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज आदि की उत्पत्ति हुई ऐसी बात नहीं, कट्टर सनातनी हिन्दुओं में भी सुधार की लहरें जोरों से चल रही थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सम्पूर्ण रूप से कट्टरपंथी पण्डित थे। उनके पिता भी पुराने ढंग के पण्डित थे। सारा खानदान पुराने ढंग का ही था, पर विद्यासागर एक सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके प्रयत्नों का फल 26 जुलाई, 1856 को सामने आया जब विधवा विवाह सम्बन्धी कानून बन गया। विद्यासागर ने बहुविवाह को रद्द कराने के लिए भी आंदोलन किया। उन्होंने 25 हजार व्यक्तियों के दस्तखत से एक प्रार्थनापत्र भेजा। पर कुछ नहीं हुआ। स्वतन्त्र भारत में ही हिन्दुओं का बहुविवाह बन्द हुआ। इसके अतिरिक्त विद्यासागर ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए एक स्कूल भी खुलवा दिया।

1857 का महाविद्रोह

देश को विदेशी शासन से मुक्त करने का एक लगभग भारतव्यापी प्रयास 1857 में हुआ। वह हमारे स्वतन्त्रता संग्राम का प्रथम अध्याय था। सावरकर ने इस पर एक पूरा ग्रन्थ लिखकर साबित किया है कि सामन्ती उपादान के बावजूद जनता इस विद्रोह के साथ थी। डा० भगवान दास माहौर ने लिखा है "सत्तावनी क्रांति कोई सहसा फूट पड़ी और सामाजिक स्थिति से असम्बद्ध एकाकी घटना नहीं है। यह अंग्रेजी राज के विरुद्ध जनता और सिपाहियों के विद्रोह की एक लम्बी परम्परा की विकसित कड़ी है।'

1857 के असफल विद्रोह का 100 साल बाद मूल्यांकन करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने 10 मई 1957 को कहा था—"वह अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ एक नाराजगी का इजहार था और अंग्रेजी हुकूमत को निकालने की कोशिश थी। यह कोशिश किसने की, मिलके की, या अलग अलग की? जहां तक अब मालूम होता है, यह कोशिश कोई बहुत मिलके नहीं हुई थी। लेकिन आम जज्बा इस हिस्से में फैला हुआ था और जहां एक भी चिंगारी लगी तो फिर वह आग फैल गई। यानी कोई एक बहुत इन्तजाम करके यह मुकाबला नहीं किया गया था। इस बारे में जो किस्से मालूम हुए हैं, वे भी आपने सुने होंगे कि चपातियां बंटी थीं। यह एक इशारा था कि लोग तैयार रहें। और भी ऐसे किस्से हैं। लेकिन जहां तक मालूम होता है, कोई बड़ा इन्तजाम करके यह बात नहीं हुई थी, बल्कि एक चिंगारी थी जिसका फायदा उठाया गया। यह आम नाराजगी थी, मुख्तलिफ तबकों में, ज्यादातर ऊंचे तबकों में। राजाओं में जमींदारों में, ताल्लुकेदारों में तो यह नाराजगी थी ही, साथ ही सब कहीं आम लोगों में भी यह नाराजगी जरूर थी। किसी कदर यह बिल्कुल दुरुस्त है कि जो विदेशी राज यहां कायम हुआ था, उसके खिलाफ जज्बा और उसके निकालने की कोशिश की गई इसमें कोई शक नहीं।

"विदेशी राज हिन्दुस्तान में कैसे आया? वह भी अजीब कहानी है। वह कोई एकाएक धूमधाम से या बड़ी फतह करके नहीं आया था। वह हल्के हल्के आया। लोगों

को मालूम भी नही हुआ कि कोई विदेशी राज आ रहा है, इस तरह से वह आया। पहले तिजारत के नाम से अग्रेज यहा आए। तिजारत के साथ साथ कुछ और अख्तियारात भी उन्होने हासिल कर लिए। सौ बरस तक वे अपने को हाकिम नही कहते थे। वह अपने को मुगल बादशाह के दीवान, या इसी तरह कुछ कहते थे, हालाकि हुकूमत अग्रेज कर रहे थे। यानी ऊपर एक रग था और साथ ही पुराने सिलसिले भी चलते जाते थे। इस ढग से, एक तरह परदे के पीछे से अग्रेजी साम्राज्य यहा कायम हुआ। आखिर मे मुगल बादशाह की हुकूमत दिल्ली के लाल किले तक रह गई थी। करीब-करीब समझिए कि वह गिरफ्तार से थे। यह एक परदा सा रहा और आम लोग एक जमाने तक यह समझे भी नही कि कोई दूसरी हुकूमत यहा कायम हो गई है। खाली यहा ही नही, बगाल मे भी ऐसा ही हुआ। सिर्फ 1857 के वाकय से जरा पहले अवध मे जब अग्रेजो ने वहा के नवाब को गद्दी से उतारा, तो जाहिर हुआ कि वे अब सीधे तौर से हुकूमत करने वाले हैं। तो इससे एक बडा धक्का लोगो को पहुचा और मुल्क म मुख्तलिफ बातें हुईं।

"इसमे तो कोई शक और शुबहा नही कि 1857 म जो कुछ हुआ, वह अग्रेजी हुकूमत या विदेशी हुकूमत के कायम होने के खिलाफ एक जज्बा था, एक बलवा था, एक जग थी। वह बहुत इतजाम करके नही शुरू हुई, वह एकाएक इत्तफाकन शुरू हो गई। एक जगह हुई, उसका असर दूसरी जगह हुआ लेकिन तभी असर हुआ न, जब एक जज्बा फैला हुआ था?"

हम यहा 1857 के विद्रोह के सम्बन्ध मे इतना ही कहकर आगे बढते हैं कि 29 मार्च, 1857 को मगल पाडे ने क्राति के लिए निर्दिष्ट तारीख (31 मई) के पहले बैरकपुर छावनी मे अग्रेज अफसरो पर गोलिया चला दी। इससे क्राति शुरू हो गई। मगल पाडे ने अपने को घिरा देखकर अपने को गोली मारने की चेष्टा की, पर असफल रहे। उन्हे 8 अप्रैल, 1857 को फासी दी गई। उनको फासी देने के लिए बाहर से ऐसा जल्लाद बुलाया गया जिसे पता नही था कि वह किसे फासी दे रहा है।

क्राति के नेताओ म थे बाजीराव पेशवा के उत्तराधिकारी नाना साहब, झासी की विधवा महारानी लक्ष्मीबाई तात्या टोपे, रगोजी, अजीमुल्ला खा इत्यादि। अतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर ने (जिनका राज्य लाल किले के इर्दगिर्द तक सीमित था) इसका औपचारिक नेता होना स्वीकार किया था जो बहादुरी की बात थी। विद्रोह दूर तक हुआ, पर जैसा नेहरू जी ने कहा तैयारी अधूरी थी। लक्ष्मीबाई घोडे पर सवार होकर भयकर युद्ध के बाद शहीद हो गइ। उक्त क्रातिकारियो मे अजीमुल्ला के विचार सुलझे हुए थे, जैसा कि उनके लिखे झडागीत मे प्रकट है। गीत इस प्रकार था—

> हम हैं इसके मालिक हिन्दुस्तान हमारा
> पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा।
> यह है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
> इसकी रूहानियत से रोशन है जग सारा।
> कितना कदीम कितना नईम सब दुनिया मे प्यारा,
> करती है जिसे जरखेज गगजमुन की धारा।
> ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा
> नीचे साहिल पै बजता सागर का नक्कारा।
> इसकी खानें उगल रही है सोना हीरा पारा
> इसकी शानोशौकत का दुनिया म जयकारा।
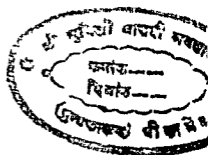
आया फिरंगी दूर से ऐसा मन्तर मारा
लूटा दोनो हाथो से प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदो ने तुमको अहले वतन ललकारा
तोडो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अगारा।
हिंदू, मुस्लिम, सिख हमारा भाई भाई प्यारा
यह है आजादी का झंडा इसे सलाम हमारा।

यह गीत विद्रोह का झंडागीत था, और उस समय के क्रांतिकारी अखबार 'पयामे आजादी' मे छपा था। इस गीत मे स्पष्ट है कि 1857 मे ही कम से कम उनके नेता अजीमुल्ला ऐसे लोग धर्म निरपेक्षता की चोटी पर पहुंच चुके थे।

क्रान्तिकारी अजीमुल्ला—अजीमुल्ला ने गोरो के यहा खानसामे का काम करके अंग्रेजी और फ्रेंच का ज्ञान प्राप्त किया था। अपने इसी ज्ञान के कारण भारतीय राजाओ की ओर से प्रतिनिधि बनाकर वह इग्लैंड भेजे गए थे। वहा कुछ बनता न देखकर वह और रगोजी (ये दूसरे राजाओ की तरफ से पैरोकार होकर गए थे) सारे यूरोप का भ्रमण करते रहे। फिर दोनो परिपक्व मन से क्राति मे कूद पड़े। उनकी कविता मे उनके विचार प्रतिफलित हैं, जो युग की दृष्टि से बहुत प्रगतिशील थे। इकबाल लिखित 'सारे जहा से अच्छा हिंदुस्ता हमारा' गीत इसी गीत का परिमार्जित रूप लगता है। छन्द भी वही, कई उपमाएं भी वही। अजीमुल्ला के गीत मे 'मजहब नही सिखाता आपस मे बैर रखना' का रूप है 'हिंदू, मुस्लिम, सिख हमारा भाई भाई प्यारा।' इसके अलावा इस गीत में गुलामी की जजीरो को तोडने की ललकार है जो इकबाल के तराने मे नही है।

1857 के विद्रोह मे हिन्दुओ और मुसलमानो का खून एक साथ बहा और जब फासी की बारी आई, सब लोग (बिना किसी मुकदमे की औपचारिकता के) नीम और दूसरे पेडो पर लटकाए गए। 'पयामे आजादी' के सम्पादक मिर्जा बेदारबख्त के बदन पर सूअर की चर्बी मलकर फासी दी गई। यही नही, जिस घर मे भी 'पयामे आजादी' की कोई प्रति मिली, उसके लोगो को फासी दे दी गई। बाद मे हमने गणेशशकर विद्यार्थी जैसे और भी सम्पादक लेखक पैदा किए, जिनका एक पैर सदा जेल के अन्दर रहा। मिर्जा बेदारबख्त ऐसे सम्पादको मे अग्रगण्य थे।

1857 का विद्रोह इसके पहले हुए कई प्रकार के विद्रोहो का उबाल बिन्दु बनकर भभक उठा था। 1764 में दिल्ली के बादशाह बक्सर की लडाई मे हारकर 1766 मे बगाल, बिहार उडीसा की दीवानी सौंपने पर बाध्य हुए थे। तभी से विद्रोह की आग धुधुआती, भीतर भीतर धधकती रही। पहाडी कबीले भी विद्रोह करते रहे। कोल किसानो ने 1831 32 म विद्रोह किया क्योकि उनकी जमीन बाहरी सिखों और मुसलमानो को दी गई। 1836 के करीब राजमहल की पहाडियो मे सन्ताल विद्रोह हुए। यह विद्रोह चक्र बिसाई के नेतृत्व मे हुआ। वर्षों तक यह वीर लडता रहा। 1828 मे अहोम राजवश के गोमधर कोवार ने विद्रोह की घोषणा की। उन्हे सात साल की सजा हुई पर 1830 म फिर विद्रोह हुआ। 1829 मे तीरत सिंह के नेतृत्व मे खासी विद्रोह हुए। हारे हुए तीरत सिंह से कहा गया कि तुम हमारी अधीनता स्वीकार कर राज्य करो पर उसने उत्तर दिया, 'पराधीन राजा से स्वाधीन व्यक्ति अच्छा।' वह 1834 मे प्रवास मे मरे। नेपाल के साथ भी लडाइया हुईं। दक्षिण मे तिरवाकुर दरबार के साथ झगडे चले।

1818 मे पेशवा की पराजय के बाद रामोशी विद्रोह हुए। 1844 मे गडकरी

विद्रोह हुआ। इसी प्रकार मुसलमानों के कुछ विद्रोह हुए जो वलीउल्ला आंदोलन नाम से ज्ञात है।

1764 में पहला सिपाही विद्रोह हुआ। 240 व्यक्ति तोपों से बांधकर उड़ा दिए गए। 1824 में वेल्लोर में एक सिपाही विद्रोह हुआ था।

यहां हमने कुछ ही विद्रोह गिनाए हैं पर ये सारे विद्रोह स्थानीय, सीमित अस्पष्ट उद्देश्ययुक्त विद्रोह थे। इस कारण ये चिनगारियां फूंक मारकर बुझा दी गई थीं। 1857 का विद्रोह कुचल दिए जाने के बाद कुछ समय के लिए विद्रोह भावना दब गई परन्तु वह नष्ट नहीं हुई और फल्गु नदी की तरह जमीन के भीतर-भीतर बहती रही।

हिन्दू मेला

1861 में जातीय गौरव सम्पादनी सभा नामसे एक संस्था मेदिनीपुर में स्थापित हुई। श्री राजनारायण वसु ने इसकी स्थापना की थी। यही सभा 6 साल बाद प्रसिद्ध हिन्दू मेला में परिणत हो गई। इस कार्य में नवगोपाल मित्र तथा गणेन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें बड़ी मदद दी। 1866 में चैत्र मास के अन्त में पहले-पहल यह मेला हुआ। मेले के अवसर पर ही राष्ट्रीय शिल्पकला की पहली प्रदर्शनी हुई। कसरत, छुरे और तलवार के खेल दिखलाए गए। इस अवसर पर 'नेशन' और 'नेशनल' शब्द का बहुत प्रयोग हुआ। मेले के संगठनकर्ताओं के मन पर इटली में चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव था। इन्हीं दिनों जर्मनी का एकीकरण भी हो रहा था। मातृभाषा के प्रति प्रबल अनुराग का भी यहीं से जन्म होता है। गुड मार्निंग आदि सम्भाषण की जगह पर 'सुप्रभात' आदि शब्द इस्तमाल किए जाने लगे। सभा के सदस्यों में जो लोग बातचीत में अंग्रेजी शब्द इस्तेमाल करते थे, उन्हें प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के लिए एक पैसा जुर्माना देना पड़ता था।

इस सम्बन्ध में और एक द्रष्टव्य बात यह है कि यद्यपि इसके कर्ताधर्ता सभी बंगाली थे, पर लोग अखिल भारतीय रूप में सोचते थे। हिन्दू मेला के अधिवेशन में सत्येन्द्रनाथ ठाकुर रचित 'गाओ भारतेर जय' जो गाना गाया जाता था, उसमें भी 'भारत' शब्द था न कि 'बंग'।

मुख्य हिन्दू मेले के अतिरिक्त देहातों में भी अपना अपना हिन्दू मेला होने लगा। रवीन्द्रनाथ ने कई अवसरों पर इस मेले में भाग लिया। 1877 के मेले में उन्होंने एक कविता पढ़ी थी। कविता में प्रमुख बात यही है कि इसमें बराबर 'भारत' शब्द आया है न कि 'बंग'।

हिन्दू मेले के लोग दूर भविष्य में स्वतन्त्रता की झलक भी देखते थे। इसी अवसर पर स्वदेशी का नारा पहले पहल दिया गया, और यह कहा गया कि लोग स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करें।

हिन्दू मेले के नेतागण ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के कड़े आलोचकों में थे। ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन में अधिकतर राजा, जमींदार इत्यादि थे, और वह जमींदार सभा बन गई थी। वे कट्टर राजभक्त भी थे। मनमोहन वसु ने एक बार व्यंग्य करते हुए कहा था कि हिन्दू मेले में जो लोग धन देंगे, वे चाहे कितना धन दें पर रायबहादुर राजा नहीं हो सकते। यही कारण था कि हिन्दू मेले में जो दो राजा थे, वे धीरे धीरे खिसक गए। पर हिन्दू मेले के सामने कोई निर्दिष्ट कार्यक्रम न रहने के कारण वह एक हद तक ही जा सका।

वहाबी

1857 के विद्रोह की असफलता के बाद भी मुस्लिम वहाबी बराबर छिट-पुट रूप में अपना कार्य करते रहे। पटना इन दिनों उनका प्रधान केन्द्र था। 1871 में उनके नेता अमीर खां को 1818 के रेगूलेशन 3 के अनुसार नजरबन्द कर दिया गया। वहाबियों ने इस पर बम्बई के प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर ऐनेस्टी को कलकत्ता लाकर इस नजरबन्दी के विरुद्ध अपील की और यह कहा कि यदि अमीर खां ने कोई अपराध किया है, तो उसका फैसला खुली अदालत में होना चाहिए। मिस्टर ऐनेस्टी ने अपनी पैरवी के दौरान लार्ड मेयो के जमाने में जो ज्यादतियां हुई थीं, उनका उल्लेख किया। उनका यह वक्तृता राजनीतिक थी और वहाबियों ने इसे पुस्तिका के रूप में छपवाकर बटवा दिया। न्यायाधीश नार्मैन के सामने मुकदमा पेश था। मिस्टर ऐनेस्टी की योग्यतापूर्ण वकालत के बावजूद यह मुकदमा खारिज हो गया।

वहाबियों ने इस बात को यों ही ग्रहण नहीं किया और अब्दुल्ला नामक वहाबी ने मिस्टर नारमैन पर छुरे से हमला कर दिया। वह उसी रात मर गए। अब्दुल्ला को इस सम्बन्ध में फांसी हुई, और गोरे उससे इतने नाराज थे कि फांसी के बाद उसकी लाश को कब्र देने की बजाय उसे जला दिया। इसी के तुरन्त बाद 1872 की 8 फरवरी को जब लार्ड मेयो अण्डमन का दौरा करने गए थे, शेरअली नामक एक वहाबी ने उन्हें मार डाला। यह शेरअली खैबर घाटी का रहने वाला था और मामूली इतिहासों में शेरअली को एक मामूली अपराधी के रूप में दिखाया जाता है, पर वह वहाबी थे और उनका उद्देश्य राजनीतिक था। यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में 1857 के बाद आतंकवादी ढंग के आन्दोलन का सूत्रपात अब्दुल्ला और शेरअली ने किया।

आर्यसमाज

उत्तर भारत में इसी समय स्वामी दयानन्द का उदय हुआ। इन्होंने 1875 में बम्बई के गिरगांव मुहल्ले में आर्यसमाज की स्थापना की। स्वामी जी का सुधार कार्य राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ तथा केशवचन्द्र से भिन्न किस्म का था। पहले तीन सज्जनों का मुंह बहुत कुछ यूरोप की ओर था, पर स्वामी दयानन्द ने यूरोप की ओर पीठ कर रखी थी। राममोहन आदि मानते थे कि सभी धर्मों में सत्य है, वे उन धर्मों के सत्यों पर ही जोर देते थे पर स्वामी जी का मत भिन्न था। वह वैदिक धर्म में ही पूर्ण सत्य का प्रकाश मानते थे बाकी सब धर्मों को भ्रान्त समझते थे। उनकी लिखी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' इस बात का प्रमाण है। मुख्यतः वह पुस्तक दूसरे धर्मों के विरोध के उपादान से पुष्ट है और इसमें खण्डन का अंश ही प्रधान है। ईसाई मुस्लिम धर्मों के अतिरिक्त उन्होंने अठारह पुराण, मूर्तिपूजा शैव, शाक्त, वैष्णव सम्प्रदाय का भी खंडन किया। उनके अनुसार वेदों का आदर्श ही भारत का आदर्श था।

आर्यसमाज में यह जो विरोधमूलक उपादान था, यह कोई स्वामी दयानन्द के स्वभाव से उत्पन्न नहीं था, बल्कि इसके गहरे सामाजिक कारण थे। अब तक मुसलमान तथा ईसाई ही अपने धर्म में दूसरों को भर्ती करते थे, पर स्वामी दयानंद ने हिन्दुओं में लुप्त शुद्धि प्रथा को फिर से चलाया जिसके अनुसार अब दूसरे धर्म के लोग भी आर्य समाज में भर्ती किए जाने लगे। दूसरे धर्म के लोग भी अब हिन्दू हो सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे धर्म वालों की तरफ से इसका प्रबल विरोध हुआ परन्तु हिन्दू समाज में उनका बहुत प्रचार हुआ।

स्वामी दयानन्द बहुत व्यावहारिक आदमी थे। इस युग में जैसा रिवाज था, वह बड़े-बड़े पंडितों से शास्त्रार्थ करते थे और इस प्रकार अपने मत का प्रचार करते थे। यद्यपि आर्यसमाज का नारा यह था कि 'वेदों के युग में लौट चलो' फिर भी आर्यसमाजियों ने अंग्रेजी शिक्षा से परहेज नहीं किया और यद्यपि आर्यसमाज ने गुरुकुल खुलवाए, उन्होंने कई बड़े कालेज भी स्थापित किए। स्वामी दयानन्द ने सारे भारत का पर्यटन किया। स्वामी जी ने जिन बातों पर विशेष ध्यान दिया, वह था संस्कृत और हिन्दी का प्रचार, वेदों का अध्ययन, हिन्दू संगठन, शुद्धि, विधवा विवाह, इत्यादि। पुरातनवादी होते हुए भी इन्होंने सुधार के महत्वपूर्ण कार्य किए।

अन्य समाजों का कार्य

इसी युग के लगभग रामकृष्ण परमहंस का भी प्रचार हुआ। वे राममोहन या दयानन्द की तरह विद्वान नहीं थे, पर वे सर्वधर्म समन्वय में विश्वास करते थे और इसको कार्यरूप में बहुत दूर तक ले गए थे। वह बहुत दिनों तक बिलकुल अलग अलग धर्मों के अनुसार चले और अपनी जगह पर बैठे बैठे सरल दृष्टान्तों से अपने मत का प्रचार करते रहे। बाद को स्वामी विवेकानन्द ने इनका पहले भारतवर्ष में और फिर भारत के बाहर भी प्रचार किया।

राममोहन राय के अन्तिम तीन वर्ष मुख्यत इंग्लैंड में व्यतीत हुए, जहां वह अपना राजनतिक-सामाजिक कार्य करते रहे। 1833 में ब्रिस्टल में उनका देहान्त हुआ, उनकी मृत्यु के बाद ब्राह्म समाज के कई भाग हो गए। कवीन्द्र रवीन्द्र के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर सामने आए। महान वक्ता केशवचन्द्र सेन बाद का एक सफल धर्मनेता बने।

1867 में केशवचन्द्र सेन की यात्रा के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज का जन्म हुआ, जिसका उद्देश्य था समाज सुधार। बाद को इसमें एम० जी० रानडे और आर० जी० भंडारकर के आ जाने से चार चांद लग गए। 'सुबोध पत्रिका' नाम से एक पत्र निकाला गया और मजदूरों के लिए रात्रि विद्यालय जारी हुआ। पंडिता रमाबाई के द्वारा स्त्रियों के आंदोलन को बल मिला। उन्होंने आर्य महिला समिति की स्थापना की। रानडे लगातार समाज सुधार में लगे रहे। वह प्रचलित जगन्मिथ्यावाद के विरोधी थे। उन्होंने हर बात में अतीत की ओर देखने की निन्दा की। उन्होंने ओजस्वी व्यंग्य में पुनरुज्जीवनवाद का विरोध किया। कहा—'क्या बारह प्रकार के पुत्र और आठ प्रकार के विवाहों का पुनरुज्जीवन करें जिनमें राक्षस विवाह भी है? क्या हम सती प्रथा को फिर से जीवित करें या फिर नदी में जीवित शिशुओं को तथा आदमियों को फेंकें या जगन्नाथ के रथ के नीचे लोगों को कुचलना जारी करें?" वह आधुनिकता के पक्षधर थे। हिन्दू मुस्लिम मिलन के हामी थे। उन्होंने कहा, अकबर के सारे मुख्य सलाहकार हिन्दू थे तथा इसके विपरीत चलकर औरंगजेब ने अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी।

केशवचन्द्र सेन की ही यात्रा से मद्रास में वेद समाज की स्थापना हुई। इसके नेता थे वी० राजगोपालाचार्लू, पी० सुब्रायलू चेट्टी और तेलगु लेखक न्यायमूर्ति विश्वनाथ मुदालियर। वेद समाज को के० श्रीधरालू नायडू ने चमका दिया। वह कलकत्ता गए और बहुत सी पुस्तकों के अनुवाद किए, पर 1874 में एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई।

इस युग में छोटे मोटे तरीके पर सारे भारतवर्ष में सुधारमूलक आन्दोलन जारी थे। अधिकतर आंदोलनों का राजनीतिक आंदोलनों से कोई विशेष सम्बन्ध न होने पर

भी इनका राजनीति पर बहुत भारी प्रभाव पडा। 1857 के विद्रोह को इस निदयता के साथ दबाया गया था कि भारतवासियो की आत्मा बिलकुल टट चुकी थी। तिस पर गोरे-काले का भेद, आर्थिक शोषण, दुर्भिक्ष, फूट, सामाजिक कुप्रथाओ ने भारतीया को बहुत दुर्बल कर रखा था। ऐसे समय म इन सुधारको ने ही भारतीयो का यह वाणी सुनाई कि नही, तुम ऊपर उठ सकते हो। किसी ने कहा, तुम्हारा धम और सस्कृति औरो के बराबर है, किसी ने कहा, तुम्हारा धम और सस्कृति सबसे ऊची है। विवेकानद और केशवचद्र ने विदेशो मे जाकर यह प्रमाणित कर दिया कि यहा के लोग इतने तुच्छ नही हैं, जितना उन्ह समझा जाता है। दुनिया भी उनसे बहुत कुछ सीख सकती है। इसी युग मे इडोलाजी या भारततत्व का जोर हुआ। राममोहन के समसामयिक महाकवि गेटे जैसे व्यक्ति 'शकुतला' को विश्वसाहित्य की महान कृति बता चुके थे। भारतीय दशन पर शोध जारी थे। सस्कृत भाषा से सब भाषाए निकली, यह भी मत चला था। हम धर्म को मानें या न मानें यह मानना पडेगा कि इन सुधारको ने भारतीयो म एक नई जान फूक दी। पददलित तथा पराधीन भारतवासियो ने इनके मुह से धम के रूप मे ही सही, नवीन युग की नई वाणी सुनी। इन लोगो ने अपने अपने ढग से लोगो का आत्मविश्वास बढाया। उन लोगो ने अपने अपने युग मे बडा काय किया।

ये लोग हिन्दू थे, इसलिए इनकी भाषा हिन्दू प्रतीको से पूण थी। परिणामस्वरूप जो राष्ट्रीयता बनी, उसका रूप बहुत कुछ हिन्दू हो गया।

सर सैयद अहमद

अब तक मुसलमाना के कुछ नेता यह विश्वास करते थे कि मुसलमान राज्य फिर से वापस आ सकता है। इसी आशा के कारण वे अग्रेजी शिक्षा से अलग रहे थे, पर अब मध्यवित्त श्रेणी के कुछ मुसलमानो मे इस ज्ञान का उन्मेष हुआ कि हिन्दू बहुत आग बढे जा रहे हैं, मुसलमान पिछडे हुए हैं, इसलिए उन्हे भी अग्रेजी शिक्षा अपनानी चाहिए। इस विचार को लेकर बगाल मे नेशनल मोहमेडन एसोसियेशन की स्थापना हुई। इन लोगो को वहाबियो की तरह विद्रोह के माग मे विश्वास नही था। ये वैध आन्दोलन के पक्षपाती थे।

पर उत्तर भारत मे ही इस आदोलन ने पूरा जोर पकडा और सेनानिवत सरकारी नौकर सर सैयद अहमद खा के नेतत्व मे 1874 की 24 मई को अलीगढ कालेज की स्थापना हुई। उनके सलाहकार थे एक अग्रेज अध्यापक बैंक। वही से पढे लिखे मुसलमानो का सगठित प्रयास शुरू होता है। ये अजीमुल्ला या बेदारबख्त के माग पर नहीं चले। ये अब्दुल्ला या शेर अली से भी दूर थे।

अन्य सस्थाए

उस युग के नेताओ मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का स्थान प्रमुख है। वह पहले सिविल सर्विस मे थे। एक छोटी तकनीकी गलती के कारण वह उससे निकाले गए। इसके विरुद्ध अपना मुकदमा लडने वह इग्लैंड गए थे। वह अग्रेजी के बहुत अच्छे वक्ता थे। जून 1875 म इग्लैंड से लौटने के बाद वह छात्र सगठन के साथ साथ इस काय मे लगे कि कैसे एक अखिल भारतीय सस्था बने। आनन्दमोहन बोस और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मिलकर 26 जुलाई, 1876 को इडियन एसोसिएशन की स्थापना की। यह एक बहुत ही मजे की बात है कि इटली के एकीकरण से अनुप्रेरित होकर ही इन लोगो ने अखिल भारतीय आधार पर सोचा कि जो नई सस्था बने, वह अखिल भारतीय आदोलन का केन्द्र

हो। मेजिनी के विचारो से अनुप्राणित होकर संयुक्त भारत की धारणा, या कम से कम समूचे भारत को एक राजनीतिक मच पर लाने की कामना बगाल के सब नेताओ के मन मे समा चुकी थी। तद्नुसार इस नई सस्था का नाम 'इण्डियन एसोसियेशन' रखा गया।

इसे सब धर्मों के नागरिको का सहयोग मिला। रेवरेण्ड के० एन० बैनर्जी के बाद कालीचरण बैनर्जी अपने ज़माने के सबसे बडे भारतीय ईसाई नेता थे। बाद को ये इण्डियन एसोसियेशन के सभापति हुए। इन्होने इस एसोसियेशन के निर्माण का यह कहकर विरोध किया कि इस प्रकार की एक एसोसियेशन इण्डियन लीग के नाम मे कुछ महीने पहले स्थापित हो चुकी है। सुरेन्द्रनाथ ने उनके तर्कों का उत्तर दिया और सभा ने उनकी बात मानकर सस्था को जन्म दिया। इण्डियन लीग ने भी अच्छा काम किया था। 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के शिशिरकुमार घोष, 'रईस एण्ड रैयत' के डाक्टर शभुचन्द्र मुकर्जी और मोतीलाल घोष उस सस्था के प्राण थे। पर अब इसे खत्म करके इसके प्रमुख सदस्य इण्डियन एसोसियेशन मे शामिल हो गए। सस्था के उद्देश्यो मे जनता को सार्वजनिक आदोलन मे ले जाना प्रमुख था।

वकिमचन्द्र

इन्ही दिनो बगाल मे बकिमचन्द्र का उदय हुआ। वह डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे, और वन्देमातरम मन्त्र के गायक थे। वह 1872 से बग दर्शन' प्रकाशित कर रहे थे, और बराबर पाच साल तक इसे प्रकाशित करते रहे। इस पत्र ने बगाल के पढे लिखे वग मे जान फूक दी और साहित्यिक तथा सास्कृतिक क्षेत्र मे बगाल को सबस अगली कतार मे ला रखने मे मदद दी। पर बकिमचन्द्र अपने युग की उपज थे, इसलिए उन्होने जिस आक्रमणात्मक राष्ट्रीयता का अपने उपन्यासो तथा लेखो मे प्रतिपादन किया, उस पर हिन्दुत्व का पुट था। 'आनन्दमठ' नामक उनके उपन्यास मे वन्देमातरम गाना जिस पृष्ठभूमि मे आया है, वह कट्टर मुसलमानो को पसन्द नही आया। स्मरण रहे कि उसकी रचना 'आनन्द मठ' से कई साल पहले हुई थी और उसे उपन्यास मे बाद को पिरोया गया था। बकिम ने कानून से बचने के लिए 'आनन्द मठ' उस रूप मे लिखा था। अन्य देशो मे भी ऐसा हुआ था—लक्ष्य कोई और था, पर किसी और पर ढालकर बात कही गई।

उस युग मे बहुत से भारतीय ईसाई प्रगतिशील थे। बाद के युग मे उन्होने राजनीतिक आदोलन मे अधिक दिलचस्पी नही ली, पर उस युग मे बहुत से ईसाई प्रगतिशील आदोलन के साथ रहे। इसका कारण शायद यह हो कि उस ज़माने मे लोग प्रगतिशीलता के कारण ही ईसाई होने के लिए बाध्य हुए क्योकि हिन्दू समाज बहुत सकीर्ण था।

सुरेन्द्रनाथ इन दिनो देश भर मे व्याख्यान देते हुए घूमने लगे। विशेषकर छात्रो पर उनका बहुत प्रभाव पडा। जिन विषयो पर उन्होने व्याख्यान दिए, उनको देखने से उस समय की राष्ट्रीयता और भी स्पष्ट होती है। सुरेन्द्रनाथ ने पहला व्याख्यान तो सिख शक्ति के उत्थान पर दिया। दूसरा व्याख्यान श्री चैतन्यदेव विषय पर दिया। इसके बाद कुछ व्याख्यान मेजिनी और नवीन इटली पर दिए। उनके व्याख्यानो के श्रोताओ मे नरेन्द्रनाथ दत्त (बाद के स्वामी विवेकानन्द), विपिनचन्द्र पाल आदि थे। विपिनचन्द्र ने अपनी आत्म कथा मे इस बात का प्रभावशाली वर्णन किया है कि इस ज़माने मे इन व्याख्यानों का युवको के मन पर कैसा प्रभाव पडता था। उन्होने लिखा है

"हम लोगो ने आस्ट्रिया के अधीन इटली के निवासियो तथा अग्रेजो के अधीन भारतवासियो की अवस्था मे बहुत कुछ समता देखी। हमने यह देखा कि कलकत्ते के

बाहर भारतीय और गोरा मे यदि किसी प्रकार का मुकदमा उठ खडा होता है, तो उसमें भारतीयो को न्याय नही मिलता। एक ही सिविल सर्विस के अन्दर भारतीयो और गोरों मे जिस प्रकार भेद था, उसमे हमारे दिलो मे जलन पैदा होती थी। आसाम के चाय बगीचो के कुलियो की दुर्दशा उन दिनो देशी अखबारो मे कुछ-कुछ निकलने लगी थी। 'अमृत बाजार पत्रिका' मे मैजिस्ट्रेटो के जुल्मो की बात अक्सर निकला करती थी। जब इस वातावरण मे हमने मेजिनी के द्वारा परिचालित स्वतन्त्रता संग्राम की बात पढी, तो हमारा मन बडप्पन से भर गया। हम लोग मेजिनी के लेख और नवीन इटली के आदोलन का इतिहास पढने लगे। हम लोग धीरे धीरे इटली की स्वतन्त्रता के आन्दोलन, विशेषकर कारबोनरी संस्था के साथ परिचित हो गए।" (मेजिनी कारबोनरी के साथ सम्बद्ध थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्देश्य से इटली मे जो गुप्त समितिया बनी थी, उन्ही को कारबोनरी कहते थे।)

स्वामी विवेकानन्द बडे भारी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे। उन्होंने कहा था "राज नीति और समाज विज्ञान मे भी जो समस्याए बीस साल पहले तक राष्ट्रीय समझी जाती थी, अब केवल राष्ट्रीय आधार पर उनका समाधान नही हो सकता। अब वे विशाल रूप धारण कर रही हैं। उनका समाधान तभी हो सकता है जब अन्तर्राष्टीय पृष्ठभूमि की विस्ततर पृष्ठभूमि मे उनको देखा जाय। यह युग अन्तर्राष्टीय संगठनो अन्तर्राष्टीय संस्थाओ तथा अन्तर्राष्टीय कानूनो का है, लोग इसी की माग कर रहे हैं।'

स्वामी जी ने बाद को इन विचारो को और भी विस्तृत रूप दिया, यहा तक कि उन्होने अपने को समाजवादी भी घोषित किया। उन्होने कहा "मैं इस कारण समाजवादी नही हू कि मैं समाजवाद को एक सम्पूर्ण पद्धति समझता हू बल्कि इसलिए कि कुछ भी रोटी न मिलने से आधी रोटी मिलना अच्छी बात है। दूसरी जो पद्धतिया थी, उनको मौका दिया जा चुका है और देखा गया है कि उनमे कसर है। इसलिए इस पर अमल किया जाना चाहिए और किसी कारण से नही तो इसलिए कि इसमे नवीनता है।"

उस युग मे मेजिनी और गैरीबाल्डी का भारतीय देशभक्तो पर बडा असर पडा था, यहा तक कि कलकत्ता के ठाकुर खानदान के लोग भी गुप्त समिति बनाने लगे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी आत्मकथा मे इस प्रकार की एक गुप्त समिति का उल्लेख किया है।

इण्डियन एसोसियेशन का कार्य

अब हम फिर इण्डियन एसोसियेशन या भारत सभा के इतिहास पर लौटते हैं। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है इस सभा को अखिल भारतीय दृष्टि से संगठित किया गया था। पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा जस्टिस द्वारकानाथ मित्र बंगाल एसोसियेशन नाम से एक सभा संगठित करना चाहते थे, पर सुरेन्द्रनाथ ने कहा कि नही इस सभा को अखिल भारतीय दृष्टिकोण से संगठित करना चाहिए। यो तो इण्डियन लीग भी अखिल भारतीय दृष्टिकोण रखती थी, पर उसका यह विचार कागज पर ही रह गया, और उसे मौका भी कम मिला। इण्डियन एसोसियेशन की शाखाए भारत मे फैली और सुरेन्द्रनाथ ने जब भी कोई बात उठाई तो सारे भारत का दौरा कर डाला।

मध्यवर्गीय मुद्दे—जिन मुद्दो पर भारतीय नवशिक्षित वर्ग चिन्तित, क्षुब्ध तथा उत्तेजित था, उनमे एक प्रधान मुद्दा यह था कि आई सी एस मे भारतीय लिए जाए, अधिक संख्या मे लिए जाए भारत मे परीक्षा हो इत्यादि।

आन्दोलन के फलस्वरूप 1853 मे यह तय हुआ था कि सिविल सर्विस के लिए

प्रतियोगिता की जाएगी और उम्मीदवारो की उम्र 23 से कम होगी। उम्मीदवारो को परीक्षा म उत्तीण होने के बाद फौरन नौकरी नही दी जाती थी। उन्ह दो साल तक अप्रेंटिस रहना पडता था। 1859 मे इन नियमो म भी परिवतन हुआ। नये नियमो के अनुसार सिविल सर्विस परीक्षार्थी की उम्र घटाकर 22 कर दी गई और अप्रेंटिसी का समय एक साल कर दिया गया। सबसे मजे की बात यह थी कि कहने को तो परीक्षा प्रतियोगितामूलक थी, पर व्यवहार म कुछ एस नियम रखे गए थे जिससे गोरे तथा भारतीय परीक्षार्थी मे इतना प्रभेद हो जाता था कि किसी भी हालत मे भारतीय परीक्षार्थी के लिए गोरे परीक्षार्थी का मुकाबला करना कठिन होता था। गोरे परीक्षार्थी ग्रीक और लैटिन लेकर परीक्षा दते थे और भारतीय परीक्षार्थी सस्कृत या अरबी लेते थे। साधारण बुद्धि की बात तो यही थी कि इन दोनो तरह के विषयो पर एक से नम्बर होते, पर नही, सस्कृत और अरबी मे केवल 375 नम्बर थे और ग्रीक और लैटिन मे 750 नम्बर थे। यह बडी अद्‌भुत व्यवस्था थी।

इस व्यवस्था से पता चलता है कि किस प्रकार ऊपर मे बराबरी का दावा होन पर भी भीतर-भीतर वे भारतीय मनीषा से डरत थे, तभी तो य पेंच उन्होने लगाए। 1859 मे सस्कृत और अरबी का नम्बर बढाकर 500 कर दिया गया परतु फिर भी भारतीयो को बहुत असुविधा रही। 250 नम्बर का फक बहुत होता है। आश्चय नही कि इस बीच जितने भारतीय परीक्षार्थी गए, वे सबके सब असफल रह, केवल सत्येन्द्रनाथ ठाकुर परीक्षा मे कृतकाय रहे। यद्यपि दस साल म एक श्री ठाकुर ही इस परीक्षा वैतरणी को पार कर सके, फिर भी इससे अग्रेजो म इतनी खलबली मची कि नम्बर घटाकर फिर 375 कर दिये गये।

हम जानत हैं कि बाद की दृष्टि से सिविल सर्विस के इस इतिहास का कोई मूल्य नही है, पर साम्राज्यवादी न्याय के नमूने को दिखलाने तथा यह स्पष्ट करने के लिए कि अग्रेजी पढे लिखे भारतीय क्यो अग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध होते जा रहे थे, हमने इसका कुछ ब्योरा यहा दिया है।

इस व्यवहार पर शिक्षित भारतवासियो मे जो असतोष सुलग रहा था उस पर रोकथाम करने के लिए 1870 मे कानून बना कि भारत सरकार को चाहिए कि योग्य भारतीयो को सिविल सर्विस के ओहदो पर नियुक्त कर। इस कानून मे यह भी कहा गया कि सिविल सर्विस के 1/6 पदो पर भारतीयो को नियुक्त किया जाय, पर यह केवल कागजी सब्ज बाग रहा। इसके विपरीत 1876 की 24 फरवरी को सिविल सर्विस के परीक्षार्थियो की उम्र घटाकर 19 कर दी गई, जिससे भारतीयो की असुविधा बढ गई क्योकि माध्यम अग्रेजी था और भारतीयो को अग्रेजो के साथ अग्रेजी के माध्यम से प्रतियोगिता करनी थी।

सरकार कब चाहती थी कि इन पदो पर भारतीयो की नियुक्ति हो ? इन्ही दिनों भारत के बडे लाट लिटन ने एक गुप्त गश्ती पत्र मे लिखा— भारतीयो की यह माग कि सिविल सर्विस मे उन्हे नियुक्त किया जाय, कभी नही मानी जा सकती। इसलिए दो ही रास्ते है, एक तो यह कि उनसे साफ साफ कह दिया जाय कि तुम लोगो को इस पद पर नही लिया जाएगा और दूसरा यह कि उन्हे धोखा दिया जाय, और सब्ज बाग दिखाया जाए। हम लोगो ने दूसरे माग को ही चुना है। एक तो इगलैंड मे जाकर भारतीय परीक्षा दें, और परीक्षार्थियो की उम्र बराबर घटे। इन बातो का उद्देश्य यह है कि इस सम्बन्ध मे जो वाद किए गए हैं, उन्हे तोडा जा रहा है। मैं जो पत्र लिख रहा हू वह गुप्त पत्र है, इसलिए इस बात को कहने मे हज नही कि हमने जिस बात का वादा

किया है वायस्प म उसका पालन नही किया है। इस पर कोई यदि हमसे जवाब तलब करे तो हम कुछ नह नही सकते।"

सुरेन्द्रनाथ के नेतत्व मे बगाल भर म सभाए तो हुई ही, और यह तय हुआ कि समस्त भारतीयो की तरफ से इस सबध मे एक स्मरण-पत्र तयार किया जाय और उसे ब्रिटिश ससद म भेजा जाय।

सुरेन्द्रनाथ ने जनमत तयार करने के लिए सारे भारतवष का दौरा किया, और सब जगह सभाए हुई। उन्होने इस सबध म पजाब, बबई, मद्रास आदि प्रान्तो का भ्रमण किया, और वहा के जन नताओ से भेंट की। यह इलाहाबाद म पडित अयोध्या नाथ, लाहौर में सरदार दयालसिह मजीठिया, लखनऊ म पडित विश्वम्भरनाथ, गहमदाबाद के राना, सुप्रसिद्ध हिंदी कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविन्द रानडे, काशीनाथ त्र्यम्बक तलग आदि सब नेताओ से मिले, और सबने उनके मत का समथन किया।

यह तय हुआ कि स्मरण पत्र लेकर एक भारतीय नता स्वय इगलैड जाय, और ससद के सामने अपनी माग पेश करे। तदनुसार भारत सभा ने बैरिस्टर लालमोहन घोष को इस काम के लिए चुना। लालमोहन ने विलायत जाकर बहुत से स्थानो पर व्याख्यान दिया। उन दिनो जान ब्राइट ब्रिटिश गगन म चमक रहे थे। उन्ही के सभा पतित्व मे ससद भवन म एक सभा हुई, जिसम लालमोहन ने इस सबध मे भारतीयों की माग का स्पष्टीकरण किया।

इस व्याख्यान का इतना असर पडा कि कहा जाता है कि 24 घण्टे के अन्दर ही लाड सलिसबरी ने 1870 म बनाए हुए नियम को कार्यान्वित करने का वचन दिया। सिविल सर्विस को तो ज्यो का त्यो रखा गया, अब स्टच्यूटरी सिविल सर्विस नाम से एक और नया पहली से घटिया सिविल सर्विस का प्रबन्ध किया गया। इस सिविल सर्विस म जिन लोगो को लिया जाने वाला था, उनके अधिकार बहुत कम रखे गए। पहले वाली सिविल सर्विस कविनेन्टड सिविल सर्विस कहलायी। इस दूसरी घटिया सिविल सर्विस के लोगो की तनख्वाह पहल की सिविल सर्विस की दो तिहाई थी। इसके अलावा उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त नही करना था। इस समय आन्दोलन का इतना ही असर हुआ। कहना न होगा कि इससे जनमत सतुष्ट नही हो सका। अब भी आन्दोलन सम्पूर्ण रूप से आवेदन निवदन के दायरे म ही था, पर भारतीय जनमत को बडे पमाने पर सगठित करने की जो चेष्टा की गई, वह एक महत्वपूर्ण कदम था।

1877 का दरबार

1876 मे ब्रिटिश सरकार ने यह तय किया कि महारानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया जाय। तदनुसार 1877 की पहली जनवरी को दिल्ली म एक बहुत बडा शानदार दरबार हुआ, जिसम महारानी की नयी उपाधि घोषित की गई।

इसी के बाद 14 माच, 1878 को वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट के द्वारा अग्रेजी के अलावा सब भाषाओ के पत्रो पर रोक लगा दी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि उस युग के कई प्रसिद्ध बगला अखबार प्रकाशन बन्द कर देने के लिए बाध्य हुए। इस सिलसिले म अमत बाजार पत्रिका का नाम विशेष उल्लेखनीय है, क्योकि उसने करीब करीब रात भर में अपने का एक बगला पत्र से अग्रेजी पत्र मे परिणित कर दिया, और इस प्रकार इस कानून के शिकजों से बच गया। पत्रकारिता के इतिहास मे यह एक अनोखी घटना है।

इसी समय आम्स ऐक्ट यानी अस्त्र कानून पास किया गया, जिसके अनुसार बिना लाइसेंस के बन्दूक, तमचा यहा तक कि तलवार रखने की भी मुमानियत हो गई। यह मुमानियत केवल भारतीयो के ही लिए थी।

फैलता हुआ यह असतोष बढते बढते यहा तक बढता, पर इस बीच 1880 मे इगलैड मे चुनाव हुआ, उसमे कजर्वेटिव पार्टी हार गई और ग्लेडस्टन की पार्टी विजयी हुई। इससे पहले ग्लेडस्टन ने अपने स पहल की सरकार की भारतीय नीति की सार्वजनिक रूप से निन्दा की थी। उन्होने वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट, यहा तक कि आम्स ऐक्ट की भी निन्दा की थी। जब उनकी पार्टी की सरकार बनी और लार्ड लिटन पद-त्याग करके चले गए, तो लाड रिपन आए। उन्होंने आते ही वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट को रद्द कर दिया। यद्यपि आम्स एक्ट जहा का तहा रहा। उनके सबसे बडे कार्यों मे एक यह है कि उन्होने स्थानीय स्वायत्त शासन को आरम्भ किया। इससे पहले नगरपालिकाए तो कही-कही बन चुकी थी, पर इन पर जनता नियत्रण नही था। सुरेन्द्रनाथ बहुत दिनो से आन्दोलन कर रहे थे कि नगरपालिकाओ पर जनता का नियन्त्रण होना चाहिए। लार्ड रिपन ने इस सबध मे एक कानून बनाया जिससे नगरपालिकाओ और जिला बोर्डों पर जनता का नियन्त्रण बहुत कुछ स्वीकार कर लिया गया। लाड रिपन ने बाद मे किसानो के भी कुछ अधिकार बढा दिए।

इलबर्ट बिल

नए कानून से किसानो के सबध मे यह तय हो गया कि यदि किसान 12 साल तक लगातार जमीन को जोत चुका हो तो उसका उस पर हक हो गया, और यह भी तय हुआ कि जमीदार लगान पाने की रसीद दें।

व्यक्तिगत दृष्टि से देखने पर लाड रिपन ने जिस बात मे सबसे बडा साहस दिखाया वह था इलबट बिल। अन्य प्रभेदो के अतिरिक्त अदालतो के सामने भी गोरे और कालो मे भेद किया जाता था। यह बात शिक्षित भारतवासियो को यहा तक कि भारतीय राजकर्मचारियो को बहुत अखरती थी। जिस वर्ष सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने आई सी एस पास किया था उसी वर्ष श्री रमेशचन्द्र दत्त तथा बिहारीलाल गुप्त ने भी पास किया था। बिहारीलाल गुप्त कलकत्ता मे प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट थे। रमेशचन्द्र दत्त राजधानी के बाहर एक जिले के जिला मैजिस्ट्रेट थे। छात्र जीवन के बाद भी रमेश दत्त और बिहारीलाल गुप्त मे सम्बन्ध बना हुआ था। रमेशदत्त ने एक बार बातचीत मे बिहारीलाल गुप्त से कहा कि मुझे यह हक नही है कि मैं किसी गोरे का मुकदमा अपनी अदालत मे ले सकू, पर मेरे नीचे जो गोरे मैजिस्ट्रेट हैं उनको यह अधिकार है। अवश्य ही यह एक बहुत अजीब परिस्थिति थी।

लाड रिपन ने जब इस मामले का अध्ययन किया, तो उन्ह भी यह बात ठीक जची, और उन्होने कानून सचिव सर कोटनी इलबट को यह हिदायत दी कि आप इस सम्बन्ध म मौजूदा कानून मे सुधार कर एक बिल बनावें। यही बिल इलबट बिल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ज्योही भारत के गोरो को यह बात मालम हुई उन्होने इस बिल के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन शुरू कर दिया। 28 फरवरी 1883 को कलकत्ता के टाउन हाल मे बिल के विरोधियो की एक सभा हुई, जिसमे भारतीयो को पानी पी पीकर कोसा गया। वक्ताओ ने केवल भारतीयो को ही नही, उन गोरो को, जिन्होने इस बिल में हाथ बटाया था, यहा तक कि लाड रिपन को भी, हजारो गालिया दी।

मिस्टर बकलैड ने लिखा है कि "कलकत्ते के कुछ गोरो ने यह षड्यन्त्र किया था

कि यदि वायसराय इस कानून पर अडे रहे, तो वे वायसराय भवन के संतरियो को काबू म करके वायसराय को गिरफ्तार कर चादपाल घाट म एक स्टीमर पर बठा देंगे, और उन्ह कमोरिन अन्तरीप मार्ग स इगलैंड भेज देंगे। छोटे लाट तथा अन्य जिम्मेदार अफसरो को इस षडयन्त्र का पता था। गोरो ने एक डिफेंस एसोसियेशन यानी आत्मरक्षा समिति भी बनाई थी बाद को चलकर जो यूरोपीयन एसोसियेशन बनी, वह इसी का विकसित रूप थी।

गोरो के प्रबल आन्दोलन के कारण जिस रूप म कानून का मसविदा बना था, उस रूप म वह पास न हो सका। 28 जनवरी, 1883 को इस रूप मे कानून पास हुआ कि देखने को तो प्रत्येक भारतीय हाकिम को यह हक प्राप्त हुआ कि वह अपनी अदालत मे किसी गोरे के मुकदमे की सुनवाई करे पर गोरे मुलजिम को भी यह अधिकार दिया गया कि वह यह माग कर कि जूरी मे म आधे गोरे हो। चूकि राजधानी के बाहर जूरी के लिए इतने गोरे मिलना आसान नही था इसलिए होता यह था कि मुकदमा दूसरे जिले मे भेज दिया जाता था या उसी जिले के किसी गोरे हाकिम के इजलास म भेजा जाता था। इन कारणो स स्थिति करीब करीब जहा की तहा रही।

यह सत्य है कि इलबर्ट बिल जिस रूप म पास हुआ, उससे भारतीय जनमत को कोई विशेष जीत नही हुई पर एक उदीयमान जाति की प्रगति मे इस प्रकार की हार भी महत्त्व रखती है। सच तो यह है कि इस अवसर पर भारतीय जनमत की विजय होती, तो उससे उनके मन मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सबध म कुछ भ्रम पैदा हो सकते थे।

यह अक्सर कहा जाता है कि भारतीय राष्ट्रीयता म नस्ली उपादान है। अवश्य ही यह बात अच्छी नही है। कोई किसी खास नस्ल म पैदा हुआ है, गोरा है या काला है इसी आधार पर उसको भला या बुरा मान लेना गलत है पर साथ ही इतिहास लेखक का यह भी तो काम है कि वह दिखाए कि यदि किसी के साथ कोई विशेष भावना सयुक्त हो गई तो उसका क्या कारण है। ब्रेनसन जसे दुष्ट अग्रेजो के कारण ही भारतीय राष्ट्रीयता म नस्ली उपादान आए। जिस समय गोरे इलबर्ट बिल के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे उन्होने सार्वजनिक मचो से तथा पत्रो मे यह कहा कि भारतीय तो गुलाम जाति है, वे हमेशा गुलाम रहे हैं, उन्हें भला गोरो के बराबर नागरिक अधिकार कसे दिए जा सकते हैं। एसी युक्तियो की जो प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी वह हुई। औपनिवेशिक देशो म बल्कि जहा भी एक जाति ने दूसरी जाति को पराधीन बनाया है वहा की जातीयता म नस्ली उपादान आ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं तो यहा तक कहता हू कि यदि नेतृत्व अच्छा हो, और वह अतिम लक्ष्य यानी मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के विरोध को न भूले, तो वह इस उपादान का एक हद तक प्रगतिशील उपयोग भी कर सकता है।

इसी युग म एक और घटना हुई, जिससे जनता म बहुत तहलका मचा। एक मुकदमे के सिलसिले म यह प्रश्न उठा कि जिस शालिग्राम शिला पर कसम उठाने की प्रथा अदालतो म है वह पुरानी है अथवा नयी। इस पर कलकत्ता हाईकोर्ट के मिस्टर जस्टिस नारिस ने हुक्म दिया कि बडा बाजार के बटुकनाथ पडित अपनी शालिग्राम शिला को अदालत मे पेश करें, जिससे उसकी शनाख्त की जा सके। इस पर ब्राह्मो पब्लिक ओपिनियन के सम्पादक भुवनमोहन दास ने अपने अखबार के अप्रल 1883 के अक म टीका करते हुए जज की ज्यादती की निन्दा की। उन दिनो सुरेन्द्रनाथ अग्रेजी पत्र 'बगाली' के सम्पादक थे। उन्होने भी 1883 के 28 अप्रल के अक म लिखा "इसी

समय हमारे बीच मे एक जज साहब मौजूद हैं जो यदि जफरी स्क्राग आदि के युग की याद नही दिलाते, तो कम से कम जब से वे हाई कोर्ट म हैं, तब से उनके इतने कारनामे हो चुके है कि लगता है, वह उस मर्यादा की परम्परा को कायम रखने मे असमर्थ हैं, जो देश की सबसे बडी अदालत की अब तक विशेषता रही है।"

स्मरण रहे कि भुवन मोहन दास (देशबन्धु चित्तरजन दास के पिता) तथा सुरेन्द्र नाथ दोनो म से एक भी सनातन धर्मी नही थे, वे मूर्ति पूजा विरोधी थे, फिर भी उन्होंने अपने लेखो म केवल जनमत को प्रतिफलित किया था। गोरो के मुखपत्र 'इगलिशमैन' स यह पता चलता है कि उस जमाने मे जस्टिस नारिस के हिन्दू मूर्ति को अदालत मे ले आए जाने के कारण भारतीय जनमत बहुत क्षुब्ध हुआ। 'इगलिशमैन' की इस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सनातनी न होते हुए भी भुवन मोहनदास तथा सुरेन्द्रनाथ ने इस विषय पर क्यो लिखा था।

सुरेन्द्रनाथ को सजा

जस्टिस नारिस सुरेन्द्रनाथ की इस टिप्पणी को पी नही गए, उन्होने झट से उन पर अदालत की अमर्यादा का मुकदमा चलाया। इस पर पत्र मे सपादकीय तौर पर सुरेन्द्रनाथ ने इस विषय पर अफसोस जाहिर किया, फिर भी फुल बेंच के सामने उन पर मुकदमा चला, और उन्हें दो महीने की सादी कद की सजा दी गई। फुल बेंच के जजो मे जस्टिस रमेशचन्द्र मित्र ने यह राय दी कि चूकि एसे ही एक मामले मे भूतपूर्व जस्टिस पर वामस पीकाक ने केवल जुर्माना ही किया था, इसलिए अभियुक्त पर जुर्माना किया जाय, पर अधिकाश जजो विशेषकर चीफ जस्टिस सर रिचार्ड गार्थ ने सजा देने की ही राय दी।

5 मई, 1883 को सुरेन्द्रनाथ द्वारा अदालत के अपमान का फैसला सुना दिया गया। उस दिन अदालत भवन के सामने छात्रो का एक बडा भारी जुलूस आया था। आशुतोष मुखर्जी छात्रो का नेतृत्व कर रहे थे जो बाद मे चीफ जस्टिस और कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रधान निर्माता हुए। जुलूस मे देशबन्धुदास भी थे। इस अवसर पर एक मजेदार घटना यह हुई कि प्रसिद्ध पहलवान परेशनाथ घोष पुलिस को मदद करने के बहाने पुलिस और छात्रो के बीच म जाकर खडे हो गए, पर उन्होने अपने परो को इस तरह से खोल दिया कि उनकी टागो के नीचे से होकर छात्र हाई कोर्ट के अन्दर घुस गए।

सारे भारत, विशेषकर बगाल म इस घटना से भयकर जोश फैला। श्री आनन्द मोहन बसु ने इडियन एसोसिएशन की कार्यवाही मे लिखा—"इस मौके पर जिस प्रकार अशुभ से शुभ का उदभव हुआ, ऐसा पहले कभी नही हुआ था। इस मामले मे सर्वत्र जितना क्रोध तथा क्षोभ का उद्रेक हुआ, विभिन्न प्रातो के लोगो मे जिस तरह पारस्परिक प्रीति की भावना बढी, जिस तरह एकता का प्रदर्शन हुआ, ऐसा कभी नही हुआ था।"

अखिल भारतीय सगठन की माग

जिस समय सुरेन्द्रनाथ जेल मे ही थे, लोगों ने यह अनुभव किया कि आन्दोलन को ढग से चलाने के लिए एक राष्ट्रीय कोष की आवश्यकता है। 21 जून, 1883 के 'ब्राह्मो पब्लिक ओपिनियन' मे इस सम्बन्ध मे एक लेख भी निकला। इसके साथ यह आवाज उठने लगी कि सही मानो म एक अखिल राष्ट्रीय सगठन होना चाहिए।

सुरेन्द्रनाथ छूटे तो उनको जगह जगह मानपत्र दिए गए, विशेषकर छात्रों ने उनको सिर पर चढा कर स्वागत किया। उन्होने सैकडों सभाओं मे भाषण दिया। इन अवसरों पर वह जब भी लोगों से अपने व्याख्यान मे पूछते कि तुम म से कौन गैरीबाल्डी और मेजिनी होगा, तो इसके उत्तर म सभा के सभी लोग कहते थे—'हम होग, हम होंगे।' किसी बडे सावजनिक नेता के जेल जाने का यह पहला ही अवसर था, इसलिए सुरेन्द्रनाथ का अभूतपूव स्वागत हुआ।

सुरेन्द्रनाथ जेल मे निकलकर जोशीली भाषा मे लोगो मे देश भक्ति का प्रचार तो करत ही रहे, पर साथ ही उन्होने ठोस काम की ओर भी हाथ बढाया। सुरेन्द्रनाथ के लिए यह एक बहुत प्रशसा की बात थी, जिसे उनके किसी जीवनी लेखक ने अच्छी तरह समझ नही पाया कि इडियन एसोसिएशन के होते हुए भी और बगाल के बाहर भी उसका कुछ प्रचार होने पर भी उन्होने महसूस किया कि एसोसिएशन से पूरा काम नही चल सकता। उन्होने यह अनुभव किया कि एक वृहत्तर सस्था की आवश्यकता है। और इसीलिए उन्होने बाहर के नेताओ से पत्र व्यवहार शुरू किया।

यह सही है कि कुछ दूरदर्शी और त्यागी नेता इस दिशा मे क्रियाशील थे, पर इन नेताओ को असली समथन मिल रहा था जनता की गरीबी से, जो करीब करीब जानमारू हो चुकी थी।

भारत की ब्रिटिश लूट किस भयकर ढग से की गई, उसका कुछ ब्योरा यहा दिया जाता है। विलियम डिगबी ने सरकारी आकडो म निजी खातो तथा निर्या। सर प्लसा के आधार पर यह हिसाब लगाया कि पलासी युद्ध (1757) से वाटरलू युद्ध (1815) के बीच भारतीय खजानो से 100 करोड पौंड बरतानवी बैंको म भेजा गया। इसको आधार माना जाय तो प्रतिवष एक करोड बहत्तर लाख पौंड की लूट होती रही। भारत के मत्थे जो खच लगाए गए, उन्हें देखें तो हसी आती है। कम्पनी ने ब्रिटिश साम्राज्य के हाथ अपने अधिकार सौंपे, उसका खच, चीन और अबीसीनिया के साथ युद्ध मे हुए खच, लन्दन के इडिया हाउस का सारा खच, उन जहाजो के खच जो युद्ध म भाग ले और नही ले पाए ये सब भारतीय करदाता के मत्थे मढे गए। 1871 मे दादा भाई नौरोजी ने लन्दन मे कहा कि उस वक्त तक भारत की लूट का परिणाम कम से कम 50 करोड पौंड था और वह एक करोड बीस लाख पौंड की दर पर जारी थी और बढती जा रही थी। कुछ समय बाद कांग्रेस के सस्थापक ऐलन आक्टेवियस ह्यूम ने (जिन्हे सारी गुप्त सरकारी सूचनाए प्राप्त थी) लार्ड नाथब्रुक को चेतावनी दी कि गरीबी इतनी बढ गई है कि लोग जान पर खेल सकते हैं। दादाभाई के अनुसार उस समय औसत भारतीय की दैनिक आमदनी दो पसा थी और उसके पास कुछ चिथडे और लत्ते थे, पेट नही भरता था।

इण्डियन एसोसिएशन के उद्योग से दिसम्बर 1883 मे एक राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स का अधिवेशन तीन दिन तक कलकत्ता के इलबट हाल मे हुआ। राज नए नए सभापति होते थे। पहले दिन बूढे नेता रामतनु लाहिडी ने सभापतित्व किया। दूसरे दिन काली मोहन दास तथा तीसरे दिन अन्नदाचरण खास्तगीर ने सभापतित्व किया। लोगो के मन मे यह विचार था कि बाद को चलकर जो सस्था राष्ट्रीय ससद का रूप लेगी, यह उसी का प्रारूप है। आनन्द मोहन बसु न सभास्थल में यही बात कही। इस अधिवेशन मे इस दिशा की भारतीय मध्यवित्त श्रेणी की सब मागें सामने आ गईं। पहली माग यह रखी गई कि सिविल सर्विस मे भारतीयो को गोरो के साथ बराबरी मिले, दूसरी बात यह तय की गई कि एक राष्ट्रीय फण्ड की स्थापना हो, इनके अतिरिक्त ये मागें भी थीं कि प्रतिनिधि

मूलक धारासभा बने, शिक्षा विशेषकर शिल्प की शिक्षा दी जाय, न्याय विभाग को पृथक किया जाए, तथा हथियार कानून रद्द कर दिया जाय।

ऐसा मालूम होता है कि राष्ट्रीय कान्फ्रेंस को अखिल भारतीय रूप से जबानी समर्थन प्राप्त होने पर भी यह राष्ट्रीय कान्फ्रेंस बहुत कुछ बगाली मध्यवित्त नेताओ तक सीमित रही। सुरेन्द्रनाथ को इससे खुशी नही हुई। वह मई 1884 मे फिर भारत भर का दौरा करने निकले। अब की बार वह उत्तर भारत म सवत्र घूमे। सवत्र उनका स्वागत हुआ। बात यह है कि वह इस बीच बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे और वह बहुत अच्छा बोलने वाले तो थे ही। अब की बार भी उनके भ्रमण का उद्देश्य सिविल सर्विस के सम्बन्ध मे भारतीयो के प्रति किए गए अन्यायो का प्रतिवाद था, पर इसके साथ उन्होने अब की बार अखिल भारतीय राष्ट्रीय सगठन तथा राष्ट्रीय कोप के विषय को भी लोगो के सामने रखा और लोगो को सगठन का महत्व समझाया।

सुरेन्द्रनाथ के इस दौरे का क्या असर हुआ, यह हेनरी काटन लिखित 'न्यू इंडिया' (1885) से ज्ञात होता है। उसमे मिस्टर काटन ने लिखा—

"शिक्षित समाज ही देश का कण्ठ तथा मस्तिष्क है। इस समय शिक्षित बगाली ही पेशावर से चटगाव तक लोगो के जनमत का नियन्त्रण कर रहे हैं। यद्यपि उत्तर पश्चिम प्रान्त के लोग बगालियो के मुकाबले कम शिक्षित हैं, फिर भी वे शिक्षितो के नेतत्व को मानने के लिए उसी प्रकार तैयार हैं जसे बगाली। 25 साल पहले इसका कोई लक्षण नही था। लार्ड लारेंस, माटगोमरी, मैक्लायड आदि कभी यह कल्पना भी नही कर सकते थे कि पजाब पर बगालियो का कोई प्रभाव पडेगा। पर गत वष एक बगाली नेता जिस समय उत्तर भारत का व्याख्यान देते हुए दौरा कर रहा था, उस समय वह किसी वीर की दिग्विजय से कम नही था। इस समय ढाका से मुल्तान तक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नाम मे ही युवको मे जोश आ जाता है।'

1885 मे राष्ट्रीय कान्फ्रेंस का दूसरा अधिवेशन फिर कलकत्ते मे हुआ। अधिवेशन तीन दिन 25, 26, 27 दिसम्बर को होता रहा। अबकी बार यह कान्फ्रेंस कुछ अधिक प्रतिनिधिमूलक थी। इसमे बगाल के बहुत से स्थानो के अलावा आसाम, इलाहाबाद, बनारस, मेरठ, मुजफ्फरपुर, तिरहुत, बरेली, उडीसा आदि से प्रतिनिधि आए थे। दरभगा के महाराजा तथा बम्बई के बी० एन० मांडलिक भी सभा मे उपस्थित थे।

अन्य प्रान्तो मे कार्य

मद्रास मे महाजन सभा (स्थापित 1881) नाम से एक सस्था काम कर रही थी, जिसके नेता 'हिन्दू' के परिचालक जी० सुब्रह्मण्य अय्यर थे। पूना की सावजनिक सभा भी 1872 से तरह तरह के सामाजिक तथा राजनीतिक कार्य कर रही थी। इस सस्था के नेता गणेशदत्त जोशी थे। वह सुरेन्द्रनाथ से मिले थे तथा एक अखिल भारतीय सस्था बनाने के इच्छुक थे। महाराष्ट्र के समाज सुधारक महादेव गोविन्द रानडे इस सभा के नेता थे जो महाराष्ट्र मे बहुत जनप्रिय थे। महाराष्ट्र मे इन दिनो विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तथा नीलकठ जनादन कीतने साहित्य के जरिए प्रचार काय कर रहे थे। विष्णु शास्त्री ने अपने निबन्धो के जरिए महाराष्ट्र मे एक नवीन जीवन का सचार किया। इन लोगों ने यह कहा कि "पश्चिम की जो अच्छी वस्तुए हैं, उन्हे अवश्य ग्रहण किया जाय पर इस कारण अपनी वस्तुओं का नाश न किया जाय। हम इस समय जिस विपत्ति मे पडे हुए हैं, उससे निकलने के लिए हमारी अपनी ही चीजें काम देगी। इस कारण अपनी भाषा, अपने धर्म, अपने इतिहास तथा अपनी परम्परा की रक्षा की जानी

चाहिए।" नीलकठ जनादन कीतने ने ग्राट डफ के मराठी इतिहास सम्बन्धी गलतियों को दिखलाया। 1874 मे विष्णुशास्त्री की निबन्धमाला प्रकाशित हुई। स्मरण रहे कि बंकिमचन्द्र का प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' इसके बाद 1882 के दिसम्बर म प्रकाशित हुआ था।

बम्बई के नेता इस प्रकार बम्बई मे जनवरी 1885 मे बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन स्थापित हुई। बाद को जो लोग कांग्रेस के बडे नेता हुए, उनमे से बदरुद्दीन तयबजी फिरोजशाह मेहता, दीनशा वाचा इस सस्था के सदस्य थे। इसके पहले बम्बई मे 1851 मे बम्बई एसोसिएशन नाम से एक सस्था कायम हुई थी। इसके नेताओं म जगन्नाथ शकर सेठ दादाभाई नौरोजी, मगलदास नत्थूभाई, नौरोजी फरीदूनजी थे। 1850 मे राम बालकृष्ण जयकर, दादोबा पाडुरग तरखड और उनके भाई आत्माराम पाडुरग ने परमहस मडली की स्थापना की, जो ईसाई मत से प्रभावित सवधम समन्वय म विश्वास करते थे, पर ये सामने नहीं आए कि लोग उनसे घृणा न करें।

गोपाल हरि देशमुख या 'लोकहितवादी' को महाराष्ट्र का प्रथम समाज सुधारक कहा गया। वह अग्रेजी शिक्षा की बदौलत बडे पदों पर रहे, यहा तक कि राज्यपाल की परिषद में पहुच गए। उन्होंने 'प्रभाकर' पत्रिका में शतपत्रें (सौ पत्र) लिखा, जिनका विषय समाज सुधार था। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें भी लिखी। एक तरफ उन्होंने आश्वलायन गृह्य सूत्रो पर तथा दूसरी तरफ राजस्थान, गुजरात सौराष्ट्र और श्रीलंका के इतिहास लिखे। वह प्रार्थना समाज से जुडे थे, साथ ही थियोसोफिकल आन्दोलन से भी सम्बद्ध थे। वह लोकतत्र के प्रतिपादक थे। उनका कहना था कि सरकार या शासन जितना कम हो जनता के लिए उतना ही हितकर है। पिछडे देश में सरकार पालक और स्वेच्छाचारी तथा सभ्य राष्ट्र में वह जनता की सेवक होती है। वह पुरोहितवाद, पोगापथ और जातपात के विरोधी थे।

1828 मे महात्मा जोतिबा फुले महान सुधारक हुए। उन्होंने सत्यशोधक समाज के द्वारा जनता की सेवा की। 21 साल की उम्र में जबरदस्त विरोध का सामना कर उन्होंने लडकियों के लिए विद्यालय स्थापित किया। उन्होंने कहा— 'अपनी पुस्तकों की सहायता से हजारो वर्षों स ब्राह्मण जनसाधारण को नीच करार देकर उनका शोषण करते रहे।" शिक्षा के द्वारा जनता को इनकी जकड स मुक्त करने के लिए 1873 के 24 सितम्बर को सत्यशोधक समाज की स्थापना हुई। जब महात्माजी ड्यूक आफ यार्क से मिलने गए, तो उन्होंने उन्ह एक लगोटी भेंट में दी जो भारतीय प्रजा की गरीबी का प्रतीक है।

सारे भारतवर्ष में बहुत से उच्च शिक्षित लोग थियोसाफिकल सोसाइटी के सदस्य थे। थियोसाफिस्टो का हर साल कनवेंशन हुआ करता था। 1884 में मद्रास प्रान्त में इसका जो कनवेंशन हुआ उसके बाद मद्रास के रावबहादुर रघुनाथ राव के घर पर कुछ विशिष्ट व्यक्ति एकत्र हुए। इन लोगो ने सोचा जिस प्रकार दार्शनिक विचारो पर आलोचना करने के लिए हर साल सभा होती है उसी प्रकार भारत की राजनीतिक समस्याओ पर आलोचना करने के लिए एक अखिल भारतीय सभा क्यों न हुआ करे। इस सम्बन्ध में काम करने के लिए आठ व्यक्तियों की एक कमेटी बना दी गई, जिसमे इडियन मिरर के सम्पादक नरेन्द्रनाथ सेन, जानकीनाथ घोषाल, रघुनाथ राव और बाद को मद्रास के चीफ जस्टिस हुए सुब्रह्मण्य अय्यर थे। जनवरी 1885 में इन लोगो ने भारत भर के नेताओ को पत्र लिखे। इस प्रकार मद्रास मे भी लोग इसी दिशा मे सोच रहे थे।

ह्यूम के प्रयत्न

ए० ओ० ह्यूम 1882 तक आई० सी० एस० मे थे और इसके बाद इन्होने पेंशन ले ली थी। 1 मार्च, 1883 को उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातको को सम्बोधित करते हुए एक पत्र लिखा कि विदेशी भारतीयो की मदद कर सकते हैं, पर देश हित के कार्यों म, शासन म तथा अपने अधिकारो को प्राप्त करने मे उन्ह खुद आगे बढकर काम करना पडेगा। यदि 50 शिक्षित भारतीय भी अपने वैयक्तिक स्वार्थों को भूलकर देश सेवा मे लग जाए, तो वे बहुत से सत्काय करने मे समथ हो सकते हैं। और यदि वे इतना भी न कर सकें, तो उन्ह दूसरो का गुलाम होकर रहना पडेगा।"

ह्यूम के विचार भारतीयो की आकाक्षाओ के प्रति उदार थे। पर जैसा कि उस युग मे सभी उदार से उदार गोरे तथा भारतीय भी समझते थे, ह्यूम भी उसी तरह यह समझते थे कि भारत के लिए ब्रिटिश सम्बन्ध अच्छा है क्योकि ब्रिटेन भारतवासियो को ठीक समय पर स्वतत्रता दे देगा। वे सचमुच यह समझते थे कि ब्रिटन भारतवर्ष की भलाई के लिए बढ़ा पर है। इसलिए जब उन्हे मालूम हुआ कि भारतवष विस्फोटक हालत मे है, तो वह कुछ करने के लिए व्याकुल हो उठे। ह्यूम के जीवनी लेखक वेडरबन ने यह साफ लिखा है कि "लार्ड लिटन के वायसराय युग के अतिम दिनो मे 1878 और 1879 के करीब मिस्टर ह्यूम को इस बात का निश्चय हो गया कि बढते हुए असतोष का मुकाबला करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए। देश के विभिन्न भागो से हितैषियो ने उनको लिखा कि सरकार को कितना भारी खतरा है।"

काग्रेस के प्रथम सभापति डब्लू० सी० बोनर्जी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राजनीति की भूमिका' मे लिखा है—

"बहुत से लोगो को यह बात बिलकुल नयी मालूम होगी कि काग्रेस जैसी कि वह बनी है और जैसी कि वह चलती रही है, वह मार्क्विस आफ डफरिन की सष्टि है—उनकी उस समय की सष्टि जब वे भारत क बडे लाट थे। 1884 मे मिस्टर ए० ओ० ह्यूम के मन मे यह विचार आया कि देश के लिए यह बहुत ही अच्छा होगा यदि यहा के प्रमुख राजनीतिज्ञ हर साल इकटठा होकर सामाजिक विषयो पर विचार विमश कर लिया करें तथा आपस मे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करें। वह यह नही चाहत थे कि इन तर्कों मे राजनीति भी जाए। लार्ड डफरिन ने इस मामले में बहुत दिलचस्पी ली, और इस प्रस्ताव पर कुछ दिनो तक विचार करने के बाद उन्होने मिस्टर ह्यूम को बुलवाकर यह कह दिया कि उनकी योजना बहुत सुन्दर है।

मिस्टर बोनर्जी के इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिस्टर ह्यूम भारतीयो के जितने बडे हमदद समझे गए, उनके विचार उतने उदार नहीं थे। वह तो काग्रेस को सामाजिक विषयो पर विचार विनिमय तक ही सीमित रखना चाहत थे। इसमे बढकर इसका और क्या प्रमाण हो सकता है? रहे लार्ड डफरिन, सो वे भी केवल यही चाहते थे कि पीछे पीछे जो षडयन्त्र हुआ करते है, हो सकते है या हो रहे हैं उनकी बजाय खुले आम लोग सरकार की आलोचना करें, जिससे एक तो सरकार को मालूम होता रहे कि लोगो का क्या कहना ह, दूसरा उससे यह नापा जा सके कि लोगो की भावनाओ की गहराई कहा तक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैसे बायलर के फालतू भाप को निकाल देने के लिए सेफ्टी वैल्व होता है, उसी तरह से ह्यूम और लार्ड डफरिन काग्रेस को बनाना चाहत थे। यह कोई कल्पना नही है इस बात का प्रमाण उसी युग के काग्रेस नेताओ के लेखो से ही

मिलते है। वेडरबर्न ने इस शब्द का भी इस्तेमाल किया है। वे लिखते हैं—"A safety valve for the escape of great and growing forces, generated by our own action, was urgently needed and no more officious safety valve than our Congress movement could possibly be devised" यानी हमारे ही कार्यों से उत्पन्न शक्तियो के परिणामो को रोकने के लिए एक सेफ्टी वॅल्व की बडी जरूरत थी और कांग्रेस से बढकर कोई अन्य सेफ्टी वॅल्व नही हो सकता था।

कहा जाता है कि 1883 मे ही ह्यूम ने अपने विचारो को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए इडियन नेशनल यूनियन नाम से एक सस्था कायम की थी।

कांग्रेस के सबध मे गश्ती चिट्ठी

हम पहले ही बता चुके हैं कि सर्वत्र एक अखिल भारतीय सस्था बनाने की दिशा मे लोग सोच रहे थे। अब इसके लिए जमीन तैयार हो चुकी थी। मार्च 1885 मे इस उद्देश्य से एक सभा हुई, और उसने देश भर मे गश्ती चिटठी भेजी। इस गश्ती चिटठी म यह कहा गया कि "1885 के 25 दिसम्बर से 31 दिसम्बर तक दुर्गा पूजा मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन होगा। इस कान्फ्रेंस मे बगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेसी (उस युग मे ब्रिटिश भारत इन्ही तीन प्रेसीडेंसियो मे बटा हुआ था) के अंग्रेजी जानने वाले तमाम प्रमुख राजनीतिज्ञ भाग ले सकेंगे। पहली कान्फ्रेंस पूना मे होगी। यह तय किया गया और पूना की सार्वजनिक सभा के चिपलूणकर, जोशी आदि इसकी स्वागत समिति बनाने वाले थे पर कान्फ्रेंस पूना मे नही हो सकी क्योकि उन दिनो वहा हैजे का प्रकोप था।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे क्या हुआ इस सम्बन्ध मे आलोचना करने से पहले हम इसका उत्तर दें कि कांग्रेस का पहला अधिवेशन बम्बई मे क्यो हुआ। वास्तव म ठीक उसी समय इन्ही उद्देश्यो को लेकर कलकत्ता मे राष्ट्रीय कान्फ्रेंस का अधिवेशन हो रहा था। क्या कारण था कि इधर मिस्टर ह्यूम अपनी अलग खिचडी पका रहे थे, और उधर सुरेन्द्रनाथ अपनी डेढ इट की मजिस्द अलग बना रहे थे? क्या वे एक नही हो सकते थे? किसी भी लेखक ने इस प्रश्न पर सही रोशनी नही डाली है। कहा गया है कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कलकत्ते को ही भारतवर्ष की राष्ट्रीय हलचलो का केन्द्र चाहते थ क्योकि कलकत्ता उन दिनो भारतवर्ष की राजधानी था। पर क्या यही वास्तविक बात थी? हम जब इसकी गहराई मे जाते हैं तो मालूम होता है कि बात इससे कही ज्यादा गूढ थी। मिस्टर ह्यूम नही चाहते थे कि कांग्रेस का जन्म एक ऐसे व्यक्ति की छाया मे हो जो जेल जा चुका था, तथा जिसके विचार तथा नाम से ही अंग्रेज नाराज होते थ। इसी कारण मिस्टर ह्यूम ने कांग्रेस का अधिवेशन सुरेन्द्रनाथ से बचाकर बम्बई मे किया। क्या यह महत्व की बात नही है कि जो व्यक्ति उस समय भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतीक समझा जाता था, वही कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे शामिल नही हुआ? अवश्य ही कलकत्ता राष्ट्रीय सम्मेलन के नेताओ के लिए यह प्रशसा की बात है कि उन्होने कान्फ्रेंस के तीसरे दिन के अधिवेशन मे बम्बई के अधिवेशन को अपनी सहानुभूति का सदेश भेज दिया। प्यारीमोहन मुखोपाध्याय ने राष्ट्रीय कान्फ्रेंस की ओर से बम्बई को यह तार भेजा।

'कलकत्ता सम्मेलन मे उपस्थित प्रतिनिधि बम्बई सम्मेलन के प्रति अपनी शुभेच्छा भेजते हैं।

बाद को सुरेन्द्रनाथ दलबल सहित कांग्रेस म शरीक हो गए, और उसके नेता

भी हुए, यह भी काग्रेस तथा सुरेन्द्रनाथ दोनो के लिए प्रशसा की बात है। यदि इस समय दो समान्तर तथा प्रान्तो के आधार पर स्थापित सस्थाए बनती, तो पता नही इसका देश की एकता तथा भविष्य की राजनीति पर क्या परिणाम होता।

घटनाए जिस प्रकार सुगबुगा रही थी, उसमे एक शून्यता पैदा हो गई थी, जिसे कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बडा हो, भर नही सकता था। कारण यह कि उस समय सार्वजनिक क्षेत्र में तिलक या गाधी की तरह कोई युगपुरुष नही था, जो अपने में सब धर्मों, प्रदेशो भाषाओ को समो लेता और सब लोग एक स्वर से उसके लिए कहते Ecce homo, अर्थात यह है वह आदमी जो हमारी नैया को सकटग्रस्त सागर में खेकर उसे पार ले जा सकता है।

1885 में काग्रेस का जो प्रथम अधिवेशन हुआ, उसमे सारे भारत से नवजीवन की थिरकन स्पदित हुई। भारतीय इतिहास की यह एक विशिष्ट घटना थी। पहली बार राजनैतिक एकता का उद्बोधन किसी देशी या विदेशी राजशक्ति के द्वारा नही, बल्कि मातभूमि की दूरदष्टि सम्पन्न सतानो के द्वारा स्वत स्फूर्त रूप में हुआ था, जो देश के विभिन्न कोनो स आए हुए थे। ऐसे लोग बम्बई में एकत्र हुए और आपस में मत्रणा की कि क्या किया जाए। उन्होने शासको को साहसपूण चुनौती देते हुए कहा कि "भारत अब विदेशियो के इशारो पर अपने भाग्य के साथ खिलवाड नही करेगा, वह अपनी नैया आप खेने में समथ और कटिबद्ध है।"

इस मूल्याकन में सिफ एक बात जोडने की आवश्यकता है। वह यह कि इन नेताओ की दृष्टि में भारत मध्यवित्त पढे लिखे वग तक ही सीमित था। काग्रेस मे महात्मा गाधी के आगमन तक यही दशा रही। काग्रेस के बाहर जैसे बकिमचन्द्र, विवेकानद, रामकृष्ण परमहस, दयानद, किसी न किसी रूप में आम जनता के उत्थान के लिए काय कर रह थे, वह स्थिति अभी यहा नही थी। अनक लेखक अग्रेजो द्वारा भारतीयो के शोषण पर लिख रह थे उस ओर काग्रेस का ध्यान नही था। दीनबन्धु मित्र के नील के खेतहरो के शोषण पर लिखे नाटक का जिक्र यहा किया जा सकता है।

1857 यग के अजीमुल्ला और सम्पादक शहीद वेदार बख्त के बाद दीनबन्धु मित्र को ही प्रगतिशील लेखको का पितामह कहा जा सकता है। बकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ' का नम्बर उसक बाद आता है। 'नीलदपण' और आनन्दमठ' दोनो जब्त हो गए थे।

यह है वह भूमिका जिस पर काग्रेस बनी और खडी हुई तथा आरभ में अग्रेजो के लिए हितकर होते हुए भी शीघ्र ही भारतीय स्वाधीनता के लिए लडे जाने वाले सग्राम का प्रमुख हथियार बनी। साठ वष का समय बहुत ज्यादा नही होता परन्तु लगभग इतने समय में ही वह देश से अग्रेजो को अतिम रूप से निकालकर स्वतन्त्र गणतन्त्र स्थापित करने में सफल हुई।

2

काग्रेस का जन्म   बवई अधिवेशन

जैसा हम बता चुके हैं कि काग्रेस का प्रथम अधिवेशन पूना मे होने वाला था, पर वह वहा न होकर बम्बई म हुआ। सौभाग्य से श्रीमती एनी बेसेन्ट ने काग्रेस के प्रथम अधिवेशन का एक अच्छा विवरण अपनी पुस्तक 'हाउ इडिया फाट फार फ्रीडम' मे लिखा है

"पूना म काग्रेस का प्रथम अधिवेशन नही हो सका, क्योकि ऐन बडे दिन के पहले वहा हैजा फैल गया। कुछ ही लोगो को हैजा हुआ था, पर यह समझा गया कि शायद अब यह महामारी के रूप मे फले, इस कारण अब प्रस्तावित कान्फ्रेंस, जिसका नाम 'काग्रेस हो चुका था वहा से हटाकर बम्बई मे की गई। गोकुलदास तेजपाल सस्कृत कालेज और बोर्डिंग हाउस के मैनेजरो न अपनी सब सुन्दर इमारतो को काग्रेस के काम के लिए दे दिया था और 27 दिसम्बर के सवेरे भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधियो के स्वागत के लिए सब तैयारी पूरी हो चुकी थी। जब हम अपनी दृष्टि इस काग्रेस मे उपस्थित लोगो की ओर डालते हैं, तो हम कितने ही ऐसे लोगो को पाते है जो बाद को चल कर भारतीय स्वतत्रता के युद्ध के इतिहास मे मशहूर हुए। अधिवेशन मे भाग ले रहे लोगो म थे—मद्रास के डिप्टी कलक्टर तथा सुप्रसिद्ध सुधारक दीवान बहादुर आर० रघुनाथ राव, माननीय महादेव गोविन्द रानडे जो उन दिनो विधान परिषद के सदस्य तथा पूना के स्माल काजेज कोर्ट के जज थे और बाद को बम्बई हाईकोर्ट के जज तथा एक बहुत सम्मानित और विश्वस्त नेता हुए, आगरा के लाला बजनाथ, जो बाद म चलकर एक बडे विद्वान तथा लेखक के रूप म प्रसिद्ध हुए, अध्यापक के० सुन्दर रमण और आर० जी० भण्डारकर। प्रतिनिधियो मे हम 'ज्ञानप्रकाश', पूना सार्वजनिक सभा की तिमाही पत्रिका 'मराठा', 'केसरी', 'नव विभाकर' 'इडियन मिरर' 'नसीम', 'हिन्दुस्तानी', 'ट्रिब्यून', 'इडियन यूनियन', दि स्पेक्टेटर', 'इन्दुप्रकाश', 'दि हिन्दू तथा 'दि क्रेसेन्ट' के सपादको को पाते हैं। कितने ही ऐसे नाम आते हैं जो बहुत ही परिचित और सम्मानित हैं। शिमला से मिस्टर ए० ओ० ह्यूम हैं, कलकत्ता से डब्ल्यू० सी० बोनर्जी और नरेन्द्रनाथ सेन हैं पूना से डब्लू० एम० आप्टे और जी० जी० आगरकर हैं, लखनऊ से गगाप्रसाद वर्मा हैं बवई से दादाभाई नौरोजी, के० टी० तेलग, बवई कारपोरेशन के नेता फिरोजशाह मेहता तथा डी०ई० वाचा हैं, मद्रास स महाजन सभा के सभापति पी० रगैया नायडू, एस० सुब्रह्मण्य अय्यर, पी० आनन्दचार्लू, जी० सुब्रह्मण्य अय्यर एम०वीर राघवाचारियर, अनन्तपुर से केशव पिल्ले हैं। ये उन लोगा म से हैं जिन्होने भारतीय स्वतत्रता के लिए आरम्भिक काय किया।

"28 दिसम्बर 1885 को 12 बजे गोकुलदास तेजपाल सस्कृत कालेज के हाल म प्रथम राष्ट्रीय काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन मे सबमे पहले मिस्टर ए० ओ० ह्यूम, माननीय एस० सुब्रह्मण्य अय्यर तथा माननीय के० टी० तेलग की

आवाजें सुनाई पडी क्योकि इन्होने ही काग्रेस के प्रथम सभापति मिस्टर डब्लू० सी० बोनर्जी के नाम का क्रमश प्रस्ताव, समथन तथा अनुमोदन किया। वह बहुत ही पवित्र तथा ऐतिहासिक मुहूत था, जब मातृभूमि के द्वारा इस प्रकार सम्मानित व्यक्तियों की दीघ पंक्ति मे से प्रथम व्यक्ति ने राष्ट्रीय महासभा के प्रथम अधिवेशन के सभापति का आसन ग्रहण किया।

काग्रेस का उद्देश्य

"काग्रेस के महत्वपूण तथा प्रतिनिधि मूलक चरित्र की ओर ध्यान दिलाने के बाद सभापति ने काग्रेस के उद्देश्यो का स्पष्टीकरण इन चार रूपो मे किया—

(1) जो लोग देश के विभिन्न भागो मे देश के लिए काम कर रहे हैं, उनमे पारस्परिक प्रीति तथा परिचय उत्पन्न करना।

(2) सब देश प्रेमियो, यानी ऐसे लोगो मे जो हमारे देश को प्रेम की दृष्टि से देखते हैं, जाति, धम, प्रान्त सम्बन्धी कुसस्कारो को दूर कर सीधा पारस्परिक प्रेम तथा वयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करना और राष्ट्रीय एकता के उन भावो को दृढ करना, जो हमारे श्रद्धेय लार्ड रिपन के चिर स्मरणीय राज्य काल मे उत्पन्न हुए थे।

(3) उस समय के महत्वपूर्ण तथा जरूरी प्रश्नो पर भारतीय शिक्षित वग के परिपक्व मत को अच्छी तरह तक वितक के बाद पता लगाना, और फिर जब यह मालूम हो जाए, तो उसे अधिकार पूण ढग से लिपिबद्ध करना।

(4) अगले बारह महीनो मे जनता के हित के लिए देश के नेताओ को जो कुछ करना है उसकी रूपरेखा बनाना।"

इस काग्रेस मे 72 प्रतिनिधि थे। जो प्रस्ताव पास हुए, वे इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूण है कि करीब करीब गाधी-युग तक काग्रेस इन्ही प्रस्तावो के इर्द गिद घूमती रही। इस कारण हम इन प्रस्तावो को कुछ ब्योरे मे देंगे।

अध्यक्ष बोनर्जी

परतु इसके पहले हम बता दें कि इस अवसर पर जो महानुभाव सभापति चुने गए थे, वह कौन थे। वह कलकत्ता के बहुत बडे बैरिस्टर थे, और बताया जाता है कि एक जमाना था जब वह गोरा बनने मे ही अपनी इतिकत्तव्यता समझते थे। इलबट बिल के आन्दोलन के जमाने मे उनकी आखें खुली, और वह समझ गए कि गोरो और भारतीयो मे जो खाई है वह कभी पाटी नही जा सकती। तब से उनके विचार बदल गए। जब 1884 म लाड रिपन भारतवष से गए, उस समय उनके विदाई समारोह मे भी उन्होने ही नेतृत्व किया था। यहा यह भी बता दिया जाए कि जिस समय लाड रिपन भारतवष से गए, उस समय कलकत्ता और बम्बई के बीच सारे स्टेशनो पर लार्ड रिपन की जय मनाई गई थी। इस विदाई समारोह को देखकर नौकरशाही हैरान रह गई थी, और यह कहा गया था "If it is real what does it mean?" यानी यदि यह वास्तविक है, तो इसका अथ क्या है? मिस्टर बोनर्जी ने इस प्रदशन मे बहुत बडा भाग लिया था।

मिस्टर बोनर्जी बहुत ही यथार्थवादी व्यक्ति थे इसमे सदेह नही, क्योकि उन्होने सभापति की हैसियत से मुह खोलते ही यह कहा कि लोग कह सकते हैं कि हम लोगो ने

अपना चुनाव आप कर लिया, और हम किसी ने नही चुना, पर बात ऐसी नही है। उन्होने कहा "इस कांग्रेस के होने की बात साल भर से सभी प्रान्तो के लोगो को मालूम है और यद्यपि जाब्ते का कोई चुनाव नही हुआ, फिर भी जो व्यक्ति यहा प्रतिनिधि होकर आए हैं, वे विभिन्न सस्थाओ के द्वारा चुनकर भेजे गए हैं।"

अध्यक्ष ने ब्रिटेन तथा भारत के सम्बन्ध बताते हुए कहा 'ब्रिटेन ने भारत की भलाई के लिए बहुत कुछ किया है, और इसके लिए सारा देश उसका कृतज्ञ है। ब्रिटेन ने भारत को शांति दी रेलें दी, और सर्वोपरि उसने पाश्चात्य शिक्षा रूपी महान दान दिया। फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है। लोग शिक्षा तथा अन्य तरीके से जितना समृद्ध होते जा रहे हैं, राजनीतिक मामलो मे उतनी ही अन्तर्दृष्टि बढेगी, और उनमे राजनीतिक प्रगति की उतनी ही इच्छा उत्पन्न होगी।" उन्होने यह भी कहा कि यदि भारतवासी यह चाहते है कि यूरोप मे प्रचलित शासन प्रणाली की तरह उनके यहा भी लोकतांत्रिक शासन कायम हो, तो इससे ब्रिटिश सरकार के प्रति भारतीयो की राजभक्ति मे कोई फर्क नहीं आता।

सम्मेलन के प्रस्ताव

पहला प्रस्ताव—हिन्दू के सपादक जी० सुब्रह्मण्य अय्यर ने पहला प्रस्ताव पेश किया। इस प्रस्ताव मे ब्रिटिश सरकार से यह माग की गई कि भारत पर एक रायल कमीशन बैठाया जाए। उस कमीशन मे भारतीय तथा अंग्रेज दोनो हो, और वह इगलैंड और भारत दोनो जगह गवाहिया लेकर तब किसी निर्णय पर पहुचे। प्रस्तावक ने अपने व्याख्यान मे यह कहा कि 1773, 1793, 1813 और 1853 मे भारत की परिस्थिति पर जाच करने के लिए रायल कमीशन की नियुक्ति हुई थी, पर गत 32 सालो से पार्लियामेंट ने कोई सुध नही ली। इसके फलस्वरूप स्थानीय सरकार और नौकरशाही बहुत मनमानी कर रही है। वक्ता ने यहा तक कहा कि देश किसी किसी मामले मे कम्पनी की अमलदारी से भी पिछड चुका है, और जब से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने शासन सूत्र अपने हाथ मे लिया है, तब से देश की हालत बिगडती ही गई है। इस प्रस्ताव का समर्थन श्री फिरोजशाह मेहता ने किया और अनुमोदन किया नरेन्द्रनाथ सेन ने।

दूसरे प्रस्ताव के प्रस्तावक एस० एच० चिपलूणकर थे। इसमे यह माग की गई कि इण्डिया कौंसिल खतम कर दी जाए। इण्डिया कौंसिल मे पेंशनयाफ्ता अंग्रेज सिविल सर्विस वाले होते थे, ये हमेशा दकियानूसी दृष्टिकोण से भारतीय समस्याओं को देखते थे और उसी के अनुसार ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को सलाह दिया करते थे। भारतीय सरकार के मत्थे अबीसीनिया पर अभियान, लन्दन मे तुर्की सुलतान के स्वागत मिस्र पर अभियान आदि का व्यय मढा गया था, पर इस पर इण्डिया कौंसिल खुश ही थी, मानो ये सब काम भारतीयो की भलाई के लिए हुए थे। पी० आनन्दचालू ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया और श्री जानकीनाथ घोषाल ने अनुमोदन।

तीसरे प्रस्ताव मे लेजिस्लेटिव कौंसिल की त्रुटियो पर रोशनी डाली गई। उस युग मे लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभी सदस्य नामजद होते थे, इसलिए प्रस्ताव मे यह माग की गई कि सदस्य चुने जाए कौंसिल के सदस्यो को प्रश्न पूछने का अधिकार हो, उत्तर पश्चिम प्रात तथा अवध (यू० पी० का यही नाम था) और पजाब मे कौंसिल बनाई जाए और पार्लियामेंट की एक कमेटी हो जो भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के अधिकांश सदस्यो की तरफ से जो प्रस्ताव आए उन पर विचार करे।

इस प्रस्ताव पर नेताओ के भाषण हुए। बात यह है कि 1831 मे जो शासन

सुधार मिले थे, उसके बाद से कोई परिवर्तन नही हुआ था। श्री के० टी० तेलंग ने इस प्रस्ताव को रखते हुए कहा कि हमे नामजदगी नही चाहिए, हम चुनाव चाहते है। "हमे म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट और लोकल बोर्डों मे निर्वाचित सदस्य का अधिकार लार्ड रिपन से मिल चुका है। अब हम यह चाहते हैं कि लेजिस्लेटिव कौंसिल के कम से कम आधे सदस्य चुने हुए हो। श्री तेलग ने नाराजगी जाहिर करते हुए कहा—"भारत मन्त्री भारत के तानाशाह मुगल सम्राट है। उनकी खुशी ही कानून है। इस समय भारत मे जितनी भी कौंसिलें हैं, उन सबका उद्देश्य यह है कि सरकार की तानाशाही को कानूनी जामा पहनाया जाए।" प्रस्ताव पर कई नेताओ के भाषण हुए। एस० सुब्रह्मण्य अय्यर ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि मैं अपने तजुरबे से यह बात कहता हू कि यद्यपि सरकार बहुत तुच्छ मामलो मे गैर सरकारी सदस्यो की कोई कोई छोटी मोटी बात मान लेती है, पर अधिकाश मामलो म उनकी कोई सुनाई नही होती। इसका कारण यह है कि भारतीय सदस्य चुने हुए नही है। श्री दादाभाई नौरोजी ने इस प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा कि यदि सरकार शासन सुधार दे दे, और साथ ही कौंसिल के सदस्यो को यह अधिकार हो जाए कि वे प्रश्न पूछ सके, तो सरकार पर लोगो की नाराजगी बहुत कुछ घट जाएगी। लाला मुरलीधर ने कहा कि चुनाव का होना इसलिए आवश्यक है कि बहुत से लोग जो मिया मिट्ठू बनकर डीग मारते फिरते हैं, उनकी कलई खुल जाएगी और यह मालूम हो जाएगा कि कौन लोग राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं। महादेव गोविन्द रानडे ने कहा कि भारत मन्त्री की कौंसिल मे भी चुने हुए सदस्य हो।

चौथे प्रस्ताव मे माग की गई कि ब्रिटेन तथा भारतवर्ष म सिविल सर्विस की परीक्षा एक साथ ली जाए और परीक्षार्थियो की उम्र 19 से बढाकर 23 कर दी जाए। इस प्रस्ताव को दादाभाई नौरोजी ने रखा। पहले ही बताया गया है कि इस विषय को लेकर शिक्षित भारतीयो म बहुत भारी असन्तोष था। हम पहले यह भी बता चुके है कि सरकार ने स्टेच्यूटरी सिविल सर्विस नाम से जो सिविल सर्विस कायम की थी, उससे शिक्षितो मे असन्तोष घटने की बजाय बढा था। दादाभाई नौरोजी इसी युग मे भारत के सम्बन्ध में आर्थिक आलोचना करके लोगो की आख खोलने मे सहायक हो चुके थे। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होने यह दिखलाया कि अग्रेजो की औसत वार्षिक आमदनी 495 रुपये, फ्रास वालो की 345 रुपये, तुर्की लोगो की 60 रुपये है, पर भारतीयो की वार्षिक आमदनी 27 ही रुपये है, जिनमे से यदि जमीदारो, पूजीपतियों आदि की आय को निकाल दिया जाए, तो आम भारतीयो की सालाना आमदनी 20 रुपया ही होगी। इस हालत मे सिविल सर्विस के गोरो की तनख्वाह, पेंशन, भत्ता आदि मे करोडो रुपयो का देश के बाहर चला जाना बहुत ही अवाछनीय है। इसलिए दादाभाई का यह कहना था कि जब समान योग्यता वाले भारतीय मिल सकते हैं, तो सिविल सर्विस म जितने अधिक भारतीय लिए जाए, उतना ही अच्छा है, क्योकि देश का रुपया देश मे ही तो रहेगा।

प्रस्ताव पर बोलते हुए बगाल से आए 'नव विभाकर' के सम्पादक गिरिजा बाबू ने स्वदेशी की आवाज उठाई। कहना न होगा कि यह व्याख्यान उस युग मे बहुत कुछ अप्रासगिक लगा होगा, फिर भी काग्रेस के अन्दर उठाई हुई स्वदशी तथा बायकाट की पहली आवाज होने के कारण यह व्याख्यान स्मरणीय है। हम पहले ही देख चुके हैं कि हिन्दू मेला मे स्वदेशी की आवाज उठाई ही नही गई थी, बल्कि उसे व्यवहारिक रूप भी दिया गया था। गिरिजा बाबू ने कहा—"हम गरीब हैं, जो चीजें देश मे मिल सकती हैं, उन्हें हम विदेश से अधिक दाम देकर क्यो खरीदें ? हम लोग सिविल सर्विस वालो को

तनख्वाह तथा पेंशन के रूप में जो मोटी रकम देते हैं वह इस देश के बाहर ही खर्च होती है। हम इतने रुपये खर्च करके यह तजुरबा हासिल करते हैं कि वह इस देश के बाहर चला जाता है जहाज पर लद कर विदेश चला जाता है, और हमारे ही विरुद्ध इस्तेमाल होता है।

पांचवें प्रस्ताव में यह कहा गया कि सेना पर खर्च घटाया जाए। इस प्रस्ताव की आवश्यकता इसलिए हुई कि इन दिनों भारत सरकार पर रूस का हौआ चढ़ा हुआ था। उन दिनों अंग्रेज राजनीतिज्ञ इस बात को गम्भीरता के साथ समझते थे कि रूस का जार भारत पर हमला करना चाहता है। लार्ड रिपन ने इसीलिए अफगानिस्तान के साथ एक ऐसा बन्दोबस्त किया था कि अफगानिस्तान उधर से हमला करने वाले से पहला मोर्चा ले, पर रूस का हौआ ब्रिटिश सरकार पर इस प्रकार चढ़ा हुआ था कि सरकार का यह प्रस्ताव था कि 20 लाख पौण्ड खर्च करके दस हजार गोरों और 20 हजार भारतीयों की, कुल 30 हजार सेना बढ़ाई जाए।

प्रस्ताव पर बोलते हुए रंगैया नायडु ने कहा कि इस समय जो भारतीय सेना है, वह राष्ट्रीय सेना नहीं भाड़े का टट्टू है उनमें राष्ट्रीयता की भावना नहीं है। उन्होंने कहा कि भारतीय सेना को इस प्रकार शिक्षित किया जाए कि वह अपने को भारतीय समझे।

श्री वाचा ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि 1856 में भारतीय सेना में 2 54,000 लोग थे 885 में घटकर उनकी संख्या 1,89 000 हो गई है, फिर भी पहले जहां 17 करोड़ रुपये खर्च होते थे अब वहां 26 करोड़ रुपये खर्च हो रहे हैं। श्री वाचा ने इस बीच के इतिहास का विश्लेषण करते हुए कहा कि सरकार ने 1857 के विद्रोह के बाद से यह ढंग रखा कि भारतीय सेना में भारतीय तो घटाए जाएं और गोरों की संख्या बढ़ाई जाए। इस नीति के कारण गोरे सैनिक बढ़ाए गए और उनको चूंकि अधिक तनख्वाह दी जाती है इसलिए सेना घटते हुए भी खर्च बढ़ा है। श्री वाचा ने यह भी कहा कि 1857 के पहले भारतीय सेना भारत में ही काम आती थी, पर उसके बाद से जहां भी साम्राज्य में जरूरत होती है, वहीं यह सेना भेजी जाती है। भेजी जाए यह गलत नहीं, पर उसका सारा खर्च भारतीयों पर क्यों लादा जाए?

छठा प्रस्ताव भी सैनिक व्यय से सम्बन्धित था। इसमें कहा गया था कि यदि सैनिक व्यय बढ़ाना अनिवार्य हो जाए, तो उसका खर्च विदेशी माल पर टैक्स लगाकर तथा लाइसेंसों से रुपये लेकर पूरा किया जाए। प्रस्ताव का आशय यह था कि किसी भी हालत में अब भारतीय करदाता का बोझ बढ़ाया न जाए क्योंकि उसकी हालत यों ही तबाह हो रही है।

सातवें प्रस्ताव में उत्तरी बर्मा को जीतकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का का प्रतिवाद किया गया था। लार्ड डफरिन ने उत्तर बर्मा के राजा थिबो पर इस बहाने से हमला कर दिया था कि थिबो ने फ्रेंच सरकार के साथ कोई गुप्त संधि की है, जो ब्रिटिश स्वार्थों के प्रतिकूल है। कुछ दिनों तक युद्ध होता रहा, पर 1885 के 27 नवम्बर को थिबा ने आत्मसमर्पण कर दिया और राजधानी पर कब्जा कर लिया गया। यहां यह भी बता दें कि जिस समय कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था उस समय भी युद्ध हो रहा था और 1886 की जनवरी को बर्मा का बाकी हिस्सा भी साम्राज्य में मिलाया जाने वाला था। इसी कारण यह प्रस्ताव रखा गया। प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री फिरोजशाह मेहता ने कहा कि यदि अन्त में बर्मा को अधीन किया ही जाना हो, तो उसे भारत के अन्तर्भुक्त न करके एक क्राउन कालोनी बना दिया जाए। ऐसा प्रस्ताव रखने में श्री मेहता

का उद्देश्य था कि इस गुनाह बेलज्जत से भारत को छुटकारा मिले, क्योंकि इसकी बदौलत बर्मा का सारा खर्च, विशेष कर सैनिक खर्च, भारत को देना पडेगा, और इसमे बर्मा की यह भलाई होगी कि क्राउन कालोनी होने के कारण उसे कुछ शासन सुधार यो ही प्राप्त हो जाएगे।

आठवें प्रस्ताव मे कहा गया कि जितने भी प्रस्ताव हुए, वे सब देश को विभिन्न सस्थाओ को भेज दिए जाए और उनसे कहा जाए कि इन प्रस्तावो को सामने रखकर उचित कार्यवाही करें। यह प्रस्ताव भारत के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ को एक सूत्र मे बाधने के लिए आवश्यक था।

नवा प्रस्ताव—इसमे यह कहा गया कि काग्रेस का अगला अधिवेशन 28 दिसम्बर 1886 को कलकत्ते मे हो।

'महारानी की जय' से सभा भग

सब प्रस्तावो के बाद धन्यवाद आदि हुए जिसमे मिस्टर ह्यूम को विशेष धन्यवाद दिया गया। काग्रेस की अपनी रिपोर्ट मे अन्तिम दृश्य का यो वर्णन है– 'मिस्टर ह्यूम को जो धन्यवाद आदि दिए गए थे, उन्हे स्वीकार करने के बाद वे 'चियर्स' दिलाने के लिए उठे, क्योकि यह काम उन्ही के सुपुर्द किया गया था। उन्होने कहा कि Better late than never, यानी देर आयद, दुरुस्त आयद के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए मैं प्रस्ताव करता हू कि केवल तीन बार नही, बल्कि तीन का तिगुना, और हो सके तो उसके भी तिगुने 'चियर्स' इस महामहिमामयी महारानी विक्टोरिया के लिए दिए जाए जो उन सबको प्रिय हैं, और जिनकी वे सन्तान तुल्य है, और जिनके जूतो के फीतो को खोलने के योग्य वे स्वय को नही समझते। इसके बाद वक्ता ने जो मन्तव्य दिए वे स्वत स्फूर्त जयकारो की आधी मे डूब गए, और लोगो से जो चियर्स मागे गए थे, वे बार बार दिए गए।"

इन नेताओ का उद्देश्य चाहे जितना छोटा रहा हो, इतिहास इस बात के लिए हमेशा इनका आभारी रहेगा कि इन लोगो ने एक ऐसी सस्था को जन्म दिया जो बाद मे भारतीय इतिहास का एक युग तक नेतृत्व करने मे सफल रही। इस कारण इन नेताओ के नाम स्वर्णाक्षर मे लिखे जाने योग्य हैं। भारत को एक करने और एक रखने मे यह बहुत बडा साधन सिद्ध हुआ।

काग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे यह तय हुआ था कि काग्रेस सामाजिक विषयो मे सुधार की चेष्टा करेगी, परन्तु अन्दरूनी मतभेद के कारण दूसरे अधिवेशन मे निश्चय यह हुआ कि काग्रेस विशुद्ध राजनीतिक मामलो मे ही आन्दोलन करेगी तथा सामाजिक मामलो म हस्तक्षेप नही करेगी।

काग्रेस की राजनीतिक कार्यशक्ति को कायम रखने के लिए यह आवश्यक था कि वह केवल राजनीतिक प्रश्नो तक ही अपने को सीमित रखे। अवश्य ही सामाजिक मामलो म इस प्रकार तटस्थता मे कुछ असुविधाए भी थी, क्योकि मूलत राजनीतिक प्रगति को सामाजिक प्रगति से अलग करना सम्भव नही था। राजनीति को सामाजिक सुधार से अलग रखने का निर्णय उस स्थिति को देखते हुए अनिवार्य भले ही रहा हो, पर उसमे कुछ उलझनें भी पैदा हुई।

इस अवसर पर हम यह भी देखें कि जिस रूप मे काग्रेस शुरू हुई उसमे धर्म को राजनीति से बिलकुल अलग रखा गया था। बाद के युग मे काग्रेस के विरुद्ध बार-बार यह जो अभियोग लगाया गया कि उसने धर्म और राजनीति को एक कर दिया, हम देखेंगे कि काग्रेस के आदि नेता इसके लिए जिम्मेदार नही थे।

3

पहली कांग्रेस के बाद

हमने पहली कांग्रेस का ब्यौरा विस्तार से दिया। वह इस कारण कि बाद मे लगभग तीन दशक तक जब तक कि महात्मा गाधी ने उसे आपादमस्तक परिवर्तित, परिमार्जित करके एक जगी सस्था नही बना दिया, तब तक वह इन्ही प्रस्तावो के इर्द गिर्द लगभग कोल्हू के बैल की तरह घूमती रही। वह इस कारण कि इस बीच काग्रेस के जो कर्णधार रहे वे आवेदन निवेदन अधिक से अधिक विलायत तक शिष्टमडल ले जाकर ब्रिटिश ससद के सामने हल्लागुल्ला ही कर सकते थे। अवश्य ही इसी युग के दौरान एसे लोग भी भारत मे थे, जो क्रातिकारी तरीके से सोचते थे। तिलक काग्रेस मे थे, पर क्रान्तिकारी सम्पादक और चिन्तक के रूप मे उनका एक पैर काग्रेस के बाहर था। इसी बाहरी पैर के कारण वह तिलक बने और अंग्रेजो के लिए हौवा बन गए जैसा कि उस समय के ऐंग्लो इण्डियन साहित्य मे प्रतिफलित था। इस साहित्य मे तिलक को एन्टी क्राइस्ट याने ईसा विरोधी के रूप मे चित्रित किया गया था।

क्रान्तिकारी धारा

जो लोग आदोलन की इस धारा से अलग रहकर स्वाधीनता के लिए एकान्त मे अलख जगा रहे थे, उनमे से दो का नाम उल्लेखनीय है—(1) वासुदेव बलवन्त फडके और (2) रामसिह कूका। फडके का जन्म कोलाबा (महाराष्ट्र) के एक गाव मे 4 नवम्बर 1845 को हुआ था। 1857 के महाविद्रोह के समय वह सचेत हुए। न्यायमूर्ति रानडे के दो भाषणो (1872) से वह इतने प्रभावित हुए कि उनसे अब चुप बैठना सम्भव नही रहा। उनके रोजनामचे से पता चलता है कि वह अंग्रेजी सरकार द्वारा लूट के कारण उत्पन्न भारतीयो की गरीबी से बहुत पीडित थे। वह पढे लिखे लोगो से निराश थे। उनको लगा कि अनपढ जनता ही कुछ कर धर सकती है। उन्होने जरामयपेशा समझी जाने वाली रामोशी जाति को सगठित किया। धन के लिए डाके डाले। वे एक तरह के राबिनहुड हो गए और दलबल सहित सह्याद्रि पहाडी मे रहने लगे। उनकी गिरफ्तारी के लिए सरकार ने इनाम रख दिया। बहुत दिनो तक अंग्रेजों के लिए आतंक बने रहने के बाद वह गिरफ्तार हुए तो उन पर दफा 121 (राजद्रोह) 124 (राजद्रोही भाषण) और 395 (डकैती) मे मुकदमा चला। 31 अक्टूबर 1880 को फडके आजीवन कालेपानी की सजा भोगते हुए अदन (अरब) जेल से भागे। सत्रह मील भागने के बाद वह गिरफ्तार हुए। फरवरी 1883 मे उनका विदेश मे देहान्त हुआ। न किसी ने जाना, न किसी ने आह भरी।

रामसिह कूका लुधियाना के भणी गाव मे पैदा हुए थे। वह महाराज रणजीत सिंह की सेना मे थे। अंग्रेजो के बढते साम्राज्य को देखकर वह दुखी होकर गृहस्थी छोड

कर अलग हो गए। वह धर्म के जरिए देश का उद्धार करना चाहते थे। वह गोरक्षक भी थे। पहले वह कुछ खुलकर, फिर गुप्त रूप मे अपने शिष्यो को सगठित करने लगे। गोरक्षा पर जोर के कारण उनके शिष्यो ने कुछ बूचड़ो की हत्या कर दी। सरकार को मौका मिल गया। असली उद्देश्य पीछे रह गया। सरकार ने रामसिंह को पकडकर 1818 के रेगुलेशन के तहत बर्मा भेज दिया। वही उनकी मत्यु हो गई। उनके बहुत से शिष्य पहले ही तोप से उडाए और फासी पर चढाए जा चुके थे।

कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन

कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन 1886 म कलकत्ते म हुआ। अम्बिकाचरण मजुमदार ने लिखा है कि "यद्यपि कांग्रेस का जन्म बम्बई म हुआ, पर सारी रस्मो के साथ साथ उसका बप्तिस्मा साम्राज्य की राजधानी कलकत्ते म ही हुआ। अब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कांग्रेस में शरीक हुए। इसके बाद मे वह बराबर कांग्रेस म शरीक होते रहे, 1917 तक उनका यही क्रम जारी रहा। कांग्रेस तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दोनो के हक म यह बहुत अच्छा रहा। पडित मदनमोहन मालवीय पहली बार इस कांग्रेस मे आए। अब की बार जो प्रतिनिधि आए, वे कांग्रेस के अन्तर्गत विभिन्न सस्थाओ से चुनकर आए। ब्रिटिश इण्डियन एसोसियशन के सभापति तथा प्रसिद्ध पुरातात्विक डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र अधिवेशन की स्वागत समिति के सभापति हुए, और श्री दादाभाई नौराजी सभापति हुए।

दादाभाई नौराजी (1825 1917) पारसी पुरोहित परिवार के थे। 1851 मे उन्होंने 'रास्त गोफ्तार' नाम स एक पाक्षिक समाचार पत्र निकाला था। बाद को उन्होंने 1882 म 'वायस आव इडिया' नाम म मासिक भी निकाला था, जो बाद को मालाबारी के पत्र 'इन्डियन स्पेक्टेटर' के अन्तर्भुक्त हो गया। 1855 मे वह व्यापार के सिलसिले मे इगलड गए, 1874 मे बडौदा के महाराजा के दीवान बने, पर रेजीडेन्ट से न पटने क कारण इग्लैंड वापस चले गए और फिर सार्वजनिक सेवा मे लग गए। 1867 मे ही वह लन्दन म इस विषय पर बोल चुके थे कि क्या भारत के लिए ब्रिटिश शासन हितकर है? इसका उत्तर वह ना मे द चुके थे। उनका कहना था ब्रिटिश शासन म गरीबी बढती जा रही है। प्रतिवर्ष 3 या 4 करोड पौंड की रकम भारत से इगलैंड जा रही है। अधिकांश भारतीय भूखो सो जाते हैं, वे दुर्भिक्ष और रोग के शिकार हैं। ऐसे व्यक्ति को कांग्रेस का अध्यक्ष पद देना उचित ही था।

इस अधिवेशन मे पहली बार एक राष्ट्रीय गीत गाया गया। बगाल के प्रसिद्ध कवि हेमचन्द्र ने यह कार्य किया और स्वय गीत गाया। अभी 'वन्दे मातरम' राष्ट्रीय गीत के रूप मे स्वीकृत नही था परन्तु हेमचन्द्र ने जो गीत गाया उसम उन्होने 'वन्दे मातरम' की कुछ पक्तिया को रख दिया। इससे पता चलता है कि हेमचन्द्र नैतिक रूप से समझते थे कि 'वन्दे मातरम' गीत ही राष्ट्रीय गीत का स्थान लेने योग्य है।

पहले कांग्रेस का अधिवेशन ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन के हाल मे होने वाला था, क्योकि समझा गया था कि बम्बई म प्रतिनिधियो की सख्या 72 थी तो यहा अधिक से अधिक 172 होगी, पर प्रतिनिधियो की सख्या 426 पहुच गई, इसलिए टाउन हाल मे अधिवेशन करना पडा। 27 दिसम्बर के अधिवेशन मे स्वय रवीन्द्रनाथ ने भी एक गीत गाया, जिसमे उन्होने एक तरह से भारतीयो की एकजातीयता पर अपना वक्तव्य दिया, पुरातात्विक डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने स्वागत समिति की ओर स बोलते हुए कहा

"यह मेरे जीवन का स्वप्न रहा है कि मेरी जाति की बिखरी हुई इकाइयां किसी दिन एक हो जाएं और केवल व्यक्तियों के रूप में जीने के बजाय हम एक जाति के रूप में जीने में समर्थ हों। हम इस सभा में इसी प्रकार की एकता का प्रारम्भ देख रहे हैं। मैं इस कांग्रेस में भारतवर्ष के अधिक सुखकर तथा सुन्दरतर दिवसों को देख रहा हूं।"

कांग्रेस के अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस के कर्त्तव्यों का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि कांग्रेस केवल ऐसी समस्याओं को लेकर चले, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध सारी जाति से हो और वह सामाजिक सुधार तथा अन्य वर्गीय प्रश्नों को दूसरों के हाथ में छोड़ दे।

अस्त्र कानून का विरोध—इस कांग्रेस में भी प्रतिनिधिमूलक शासन सुधार, सिविल सर्विस में भारतीयों की नियुक्ति, सेना का व्यय आदि विषयों पर प्रस्ताव हुए। इस कांग्रेस में हथियार कानून खत्म कर देने के सम्बन्ध में भी भाषण हुआ। अवध के राजा रामपाल सिंह ने इस विषय में ज़ोरदार भाषण दिया। उन्होंने कहा—

"सरकार ने हमारी जो कुछ भलाई की, उसके लिए हम आभारी हैं। पर सरकार से हमारी जो हानि हुई है, और जिसकी कभी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती, उसके लिए हम आभारी नहीं हो सकते। हमको दबाने के लिए, हमारे अन्दर की युद्धशक्ति को नियमित रूप से विलुप्त करने के लिए, एक योद्धा तथा वीर जाति को मुंशियों की जाति में परिणत करने के लिए हम सरकार के प्रति आभारी नहीं हो सकते। ईश्वर को धन्यवाद है कि अभी हम लोगों की हालत उतनी नहीं बिगड़ी है। भारत में सर्वत्र हममें एस लोग अब भी मौजूद हैं, जो तलवार चलाना जानते हैं, और ज़रूरत पड़ने पर देश की रक्षा के लिए जान लेने के लिए भी तैयार हैं।'

मुसलमानों का अनुपात—इस कांग्रेस में 38 मुसलमान प्रतिनिधि आए थे जिनमें से बम्बई के प्रसिद्ध व्यापारी रहमतुल्ला सयानी, अवध के राजा अली नवाब तथा बिहार के सफरुद्दीन के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे ज्ञात होता है कि काफी मुसलमान कांग्रेस के पक्ष में थे फिर भी कई प्रमुख लोग जैसे नवाब अब्दुल लतीफ, सैयद अमीर अली तथा उनके अनुयायी इस कांग्रेस में शरीक नहीं हुए।

गोरे अखबारों के मन्तव्य—इस कांग्रेस के सम्बन्ध में सरकारी तथा अर्ध-सरकारी पत्रों ने क्या कहा यह दिलचस्प है। 'स्टेटसमैन' ने लिखा "कांग्रेस ऐसे लोगों की सभा है, जिनके लिए हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि सौ साल के हमारे शासन में ऐसे लोग उत्पन्न तो हुए। पर लंदन के 'टाइम्स' ने लिखा "यह तो कुछ असंतुष्ट नौकरी चाहने वालों का मजमा था जो पुआल के बने हैं, और देश से जिन्हें कोई मतलब नहीं जिनमें अनुकरण करने की काफी शक्ति है पर जो सरकार की वास्तविक समस्याओं को कुछ भी नहीं समझते। ये बात बनाने वाले लोग हैं पर ये सार्वजनिक शान्ति के लिए बहुत खतरनाक साबित हो सकते हैं।'

कांग्रेस का तृतीय अधिवेशन

कांग्रेस का तृतीय अधिवेशन मद्रास में बम्बई के प्रसिद्ध मुस्लिम बरिस्टर बदरुद्दीन तयबजी के सभापतित्व में हुआ। इस बार कांग्रेस में 600 से अधिक प्रतिनिधि आए। जनता में काफी जोश था और आम जनता के लिए पहली बार पंडाल का उपयोग हुआ। पंडाल तमिल शब्द है और इसका अर्थ 'मंच' है, पर यहीं से यह पंडाल शब्द अखिल भारतीय हो गया। बंगाल से 80 प्रतिनिधि एक स्टीमर रिजर्व करके मद्रास आए थे। इस बार के सभापति मुसलमान थे, फिर भी कुछ लोगों ने यह चेष्टा की कि मुसल

मान इसमे शरीक न हो। ऐसे लोगो मे नवाब अब्दुल लतीफ का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। इन्होने बाकीपुर मे एक सभा मे भाषण देते हुए कहा कि मुसलमान कांग्रेस मे शरीक न हो। फिर भी पटना के बार एसोसियेशन से मौलवी सफरुद्दीन, अमीर हैदर, तफज्जुल हसन आदि कई मुसलमान चुने गए। बाद को सफरुद्दीन साहब कलकत्ता हाई कोर्ट के जज बने थे।

माधवराव तथा तैयबजी के मन्तव्य—सर टी माधवराव स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। इन्होंने उस युग के नेताओ के दुरंगे विचारो को व्यक्त करते हुए कहा कि "हम विश्वास के साथ अपनो को उस महान जाति तथा महान सरकार के हाथो मे सौंप दें जो ईश्वर की कृपा से आज हमारे भाग्य के नियन्ता हैं। हम विश्वास रखें कि हमारा भविष्य उज्जवल है।" सभापति ने अन्य विषयो के अलावा यह भी कहा, "भारत मे जो विभिन्न सम्प्रदाय हैं, उनके सम्बन्धो मे कोई ऐसी बात नही है जिससे कांग्रेस सरकार को सुधारने की जो कोशिश कर रही है, हमारे सम्प्रदाय के नेता उससे अलग रह।"

कांग्रेस में जनता—इस अधिवेशन की विशेषता यह थी कि इसमे पढ़े-लिखे वर्ग के अतिरिक्त साधारण जनता यहा तक कि मजदूरो ने भी हिस्सा लिया। मद्रास मे कांग्रेस को सफल बनाने के लिए जो चन्दा इकट्ठा किया गया था, उसमे साढे पाच हजार रुपये मजदूर और अन्य गरीब लोगो के द्वारा दिए हुए एक आने से लेकर डेढ रुपये तक के चन्दो से जमा हुआ था। मद्रासियो को मद्रास मे कांग्रेस होने का इतना गर्व था कि रगून सिगापुर, माडले आदि से मद्रासियो ने इस कांग्रेस के लिए चन्दा भेजा था। कोई पाच हजार लोग नेताओ को देखने पडाल के पास इकट्ठे हुए। इस बार के अधिवेशन मे तजावर से तीन बढई कांग्रेस मे प्रतिनिधि के रूप मे आए थे। इनमे से एक ने कांग्रेस की सभा मे भाषण करते हुए बढईयो के दुख दर्दों का उल्लेख किया।

अस्त्र कानून के प्रस्ताव पर ह्यूम परेशान—इस अधिवेशन मे भी अस्त्र कानून को हटा लेने के सम्बन्ध मे विचार हुआ। विपिनचन्द्र पाल तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अस्त्र कानून हटा लिए जाने के सम्बन्ध मे लम्बे भाषण दिए। त्रैलोक्यनाथ मित्र ने सशोधन रखा कि अस्त्र कानून को इस प्रकार सशोधित किया जाय कि स्थानीय तथा नगरपालिका के अधिकारियो से अनुमति लेकर लोग हथियार रख सकें। कहा जाता है कि जिस इस समय प्रस्ताव पर विचार हो रहा था, उस समय मिस्टर ह्यूम बहुत परेशान हो रहे थे, क्योंकि वह डर रहे थे कि कहीं ऐसे प्रस्ताव पास कर कांग्रेस सरकार की कोप-भाजन न हो जाय। ठीक भी था, जब मिस्टर ह्यूम जैसे लोग यह समझते थे कि ब्रिटेन और भारत का गठबन्धन चिरन्तन है, और एक शासित रहेगा और दूसरा उदारचरित शासक, तो उस हालत मे अस्त्र कानून बात की कहा आ सकती थी। अस्त्र कानून हटाने की माग करना ही यह साबित करता था कि माग करनेवाले किसी हालत मे अस्त्र इस्तेमाल करने मे विश्वास करते हैं। इस कारण मिस्टर ह्यूम को ये विचार खतरनाक प्रतीत हुए, पर वह इन्हें रोकने मे असमर्थ थे।

गवर्नर की दावत—कुछ भी हो, अभी कांग्रेस पर सरकार सम्पूर्ण रूप से कुपित नही हुई थी। मद्रास के गवर्नर लार्ड कोनरमारा चाहते थे कि वे अधिवेशन मे शरीक हों पर लार्ड डफरिन ने सलाह दी कि वे अधिवेशन मे जाने की बजाय कांग्रेस के नेताओ को एक चाय पार्टी दें। तदनुसार लार्ड कोनरमारा ने कांग्रेस के प्रतिनिधियो को एक पुरतकल्लुफ दावत दी। गवर्नर का बैंड बजता रहा और कांग्रेस के नेता गवर्नर के मेहमान हुए।

गवर्नर के अतिरिक्त मद्रास के गोरे बैरिस्टर नार्टन ने भी कांग्रेस प्रतिनिधियो

को दावत दी। वह स्वयं भी कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल हुए। इस प्रकार यह अधिवेशन एक सफल अधिवेशन रहा। इसमें भी उन्हीं विषयों पर प्रस्ताव हुए जिन पर पहले अधिवेशनों में हुए थे।

अश्विनीकुमार दत्त का नया तरीका—मद्रास कांग्रेस में पूर्व बंगाल के नेता श्री अश्विनीकुमार दत्त 45 हजार व्यक्तियों के दस्तखत से एक अपील ले आए थे, जिसमें कांग्रेस के नेताओं की शुभकामना करते हुए शासन सुधार की मांग की गई थी। इस प्रकार 45 हजार लोगों के दस्तखत कराना एक नई बात थी। अश्विनीकुमार दत्त ने अपील को पेश करते हुए कहा कि "एक अछूत मेरे निकट आया और उसने कहा कि—महाशय, हमारे अपने लोग ही कानून बनाएंगे, यह कितने आनन्द की बात है।' इसी प्रकार एक गरीब मुसलमान ने मुझे चार आने पैसे दिए और कहा कि मैं इस अपने लोगों के काम में लगाऊं। एक दूसरे किसान ने अपने पड़ोसी से कहा कि देखो, जैसे हम पंचायत चलाते हैं और पंचायत के फैसले को मानते हैं, उसी प्रकार हमारे अपने ही आदमी कानून बनाएंगे, तब हम उन्हें क्यों न मानेंगे? महाशय, आप देख रहे हैं कि जनता किस प्रकार हमें सहायता देने के लिए उत्सुक है।"

इस प्रकार मद्रास कांग्रेस में यह सुन्दर शब्द सुनाई पड़ा—जनता! और सो भी 45 हजार के दस्तखत फिर उसमें अछूत भी और मुसलमान भी। जब कांग्रेस के साथ जनता का कुछ मामूली ही सही, सम्बन्ध होने लगा, तो सरकार के कान खड़े हो गए। गोरे अखबार जिनमें उन दिनों इलाहाबाद का 'पायोनियर' भी था खुल्लम खुल्ला कांग्रेस पर बौछारें करने लगा। उनको इस समय प्रयुक्त हो रहे शब्द 'नेशन' या 'जाति' शब्द पर भी आपत्ति थी। कहां तो कलकत्ता में लार्ड डफरिन ने तथा मद्रास में लार्ड कोनरमारा ने कांग्रेस नेताओं को दावत दी, पर अब 1888 के प्रारम्भ में ही संयुक्त प्रांत (यू० पी०) के गवर्नर सर आकलैंड कालविन ने कांग्रेस के विरुद्ध जेहाद बोल दिया। उन्होंने खिताब देने के लिए बुलाए हुए दरबार में कांग्रेस पर कटाक्ष करते हुए कहा—

"आपको चाहिए कि आप अपना ध्यान अपने कार्यक्षेत्र के उचित दायरे में सीमित रखें न कि बड़ी बड़ी उड़ानों में अपना समय नष्ट करें, जिनको कार्यरूप में परिणत करने के लिए ऐसी सामूहिक क्रिया तथा व्यवहारिक बुद्धि चाहिए जो लम्बे वर्षों तक सार्वजनिक कार्यों को परिश्रम के साथ करने पर ही उत्पन्न हो सकती है।"

चतुर्थ अधिवेशन

चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में होना तय हुआ था। कालविन को जब यह मालूम हुआ कि कांग्रेस इलाहाबाद में होने वाली है तो उसने तरह-तरह के अड़गे लगाए। स्वागत समिति कांग्रेस अधिवेशन खुशरू बाग में करना चाहती थी, पर सरकार राजी नहीं हुई। इसके बाद यह चेष्टा हुई कि किले के पास अधिवेशन हो पर सरकार ने यहां भी बहाने बनाकर अधिवेशन नहीं होने दिया। तब स्वागत समिति के लोगों ने 'पायोनियर' के दफ्तर के पास एक तम्बू गाड़कर अधिवेशन करना चाहा पर इसको यह कह कर टाल दिया गया कि इससे वहां के रहने वालों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। तब स्वागत समिति के पंडित अयोध्यानाथ ने कांग्रेस का अधिवेशन अपनी ही एक हवेली में करने का विचार किया। इस पर भी कुछ गड़बड़ी की गई, पर अन्त में इसी मकान में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ।

कांग्रेस और अल्पसंख्यक—कांग्रेस की शक्ति बढ़ रही थी, यह इस बात से प्रकट है कि इस बार प्रतिनिधियों की संख्या 1248 रही, जिनमें 221 मुसलमान, 220

ईसाई, 6 सिख, 11 जैन और 7 पारसी थे। इस प्रकार कांग्रेस मे आधे के करीब प्रतिनिधि अल्पसख्यक सम्प्रदायो के थे। सर सैयद अहमद के विरोध करने पर भी अवध से बहुत से मुसलमान आए। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'नेशन इन मेकिंग' मे लिखा है कि "हम इस महान राष्ट्रीय काय मे अपने मुसलमान भाइयो का सहयोग प्राप्त करने के लिए सब कुछ कर रहे थे। कभी कभी तो हम मुसलमान प्रतिनिधियो को रेल का किराया देकर लाते थे और उन्हे अन्य सुविधाए देते थे।"

इसी साल जब पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोट निकली, तो उसमे एक गुल खिला। कमीशन ने सिफारिश की कि सिविल सर्विस परीक्षा मे परीक्षार्थियो की उम्र कम से कम 21 और अधिक से अधिक 23 हो। इसके साथ ही कमीशन ने यह सिफारिश की कि स्टच्यूटरी सिविल सर्विस उठा दी जाए, और योग्य कमचारियो को तरक्की देकर नियुक्त किया जाए। यहा तक तो सभी सदस्य एकमत थे पर सिविल सर्विस की परीक्षा एक साथ भारत और इगलैंड मे हो इस बात पर सब सदस्य एक मत न हो सके।

गोरो ने इसके विरुद्ध वोट दिया यह तो समझ में आता है। वे तो सिविल सर्विस को अपनी बपौती बनाना चाहते थे, पर दो मुसलमान सदस्यो ने, जिनमे सर सैयद अहमद भी थे, इस प्रस्ताव का यह कहकर विरोध किया कि भारत मे सिविल सर्विस की परीक्षा होने पर हिन्दू बाजी मार ले जाएगे और मुसलमानो को कुछ नही मिलेगा। कहना न होगा कि यह बहुत ही अजीब तर्क था। इस तक का अभिप्राय यह था कि मुसलमान आ नही सकते, इसलिए हिन्दुओ को भी न आने दिया जाए। सर सैयद अहमद के ये विचार बहुत ही प्रतिक्रियावादी थे और दुर्भाग्य से भारतीय अग्रेजी शिक्षित मुसलमानों के वे ही नेता हुए। उन्होने पेट्रियाटिक एसोसियेशन नाम से एक कांग्रेस विरोधी सभा भी स्थापित की।

सरकार की अकारण घबडाहट—इलाहाबाद कांग्रेस के सभापति मिस्टर जार्ज यूल नामक एक स्काच सज्जन बनाए गए। वे उन दिनो बगाल चेम्बर्स आफ कामर्स के सभापति थे। आश्चय है कि जब इस प्रकार एक जिम्मेदार गोरा कांग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व कर रहा था, तो फिर सर कालविन को उसमे हौआ क्यो दिखाई पडा। इस कांग्रेस मे लेजिस्लेटिव कौंसिल का सुधार, न्याय विभाग का पथकीकरण, पुलिस विभाग मे सुधार, आबकारी मे सुधार, एक हजार से अधिक आमदनी पर ही आयकर, शिक्षा के खच मे वद्धि, औद्योगिक कमीशन की नियुक्ति तथा नमक कर म कमी पर प्रस्ताव पास हुए।

लार्ड डफरिन द्वारा कांग्रेस पर बौछार—उस युग की विचारधारा यह थी कि विलायत की सरकार और विलायत के अग्रेज अच्छे हैं, यदि बुरे हैं, तो यहा के अग्रेज, तदनुसार लोग अब यह आवश्यकता अनुभव कर रहे थे कि विलायत मे प्रचार काय हो। ह्यूम तो इस सम्बन्ध मे विलायत मे आन्दोलन करते ही रहते थे। विलायत म कुछ प्रगतिशील अग्रेज भारतीयो की हमदर्दी म जब तब कुछ कह दिया करते थे। लार्ड डफरिन जब भारतवर्ष से जाने वाले थे, तो उन्होने 30 नवम्बर 1888 को सेंट एन्ड्रूज डिनर के उपलक्ष्य में बोलते हुए कुछ अजीब बातें कही। उन्होने कहा

"कुछ बुद्धिमान राजभक्त और अच्छे विचार वाले लोग एक बडी भारी छलाग इस तरह भरना चाहते है कि उनकी इच्छा है कि भारतवष की सरकार में लोकतान्त्रिक ढगो का प्रयोग किया जाए। वे लोकतान्त्रिक तथा ससदीय ढग भारत में चाहते हैं जिसे इगलैंड ने धीरे धीरे सदियो की तैयारी के बाद सीखा है। वे चाहते हैं कि सरकार लोकतान्त्रिक हो, नौकरशाही उसके अधीन हो और उन्हे राष्ट्र के खजाने पर अधिकार

मिल जाए, और धीरे धीरे ब्रिटिश अधिकारी वर्ग उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हों। इसका अगला कदम यह है कि देश की रक्षा के लिए सिर्फ भारतीय सेना ही रहे और ब्रिटिश सेना आधी कर दी जाए। मैं उनसे कहूगा कि भला कोई बुद्धिमान व्यक्ति क्या यह कल्पना कर सकता है कि ब्रिटिश सरकार, खुर्दबीन से देखे जा सकने योग्य इस अल्प सख्या को उस महान तथा विस्तृत साम्राज्य के भाग्य का नियत्रण करने दे, जिसके लिए सरकार ईश्वर तथा सभ्यता की आज्ञा मे जिम्मेदार है।"

लार्ड डफरिन ने चलते समय काग्रेस पर जो लात जमाई, उससे एक पूरा वाद विवाद उठ खडा हुआ। यह व्याख्यान लन्दन के 'टाइम्स' मे छपा और भारतबन्धु मिस्टर ब्रैडला ने इस विषय पर न्यूकैसल मे एक सभा की। लार्ड डफरिन जिस समय इगलैंड पहुचे, तो ब्रैडला से मिले और उनसे माफी मागी कि उनका यह अभिप्राय नहीं था। उन्होने कहा कि हम नही समझते कि काग्रेस राजद्रोही सस्था है।

इन्ही बातो से प्रभावित होकर काग्रेस के नेताओ ने आवश्यकता समझी कि विलायत मे प्रचार कार्य चालू रहे। तदनुसार 27 जुलाई, 1889 को लदन मे काग्रेस का प्रचार कार्य करने के लिए ब्रिटिश इण्डिया कमेटी की स्थापना हुई। दादाभाई नौरोजी उन दिनों इगलैंड मे ही थे। 1886 मे वे ब्रिटिश ससद के लिए उम्मीदवार खडे हुए थे, पर इसमे सफल नही हो सके थे। उन्होने मिस्टर वेडरबर्न, डब्लू० एस० केन और विलियम डिग्बी के साथ ब्रिटिश इडिया कमेटी को चलाने का भार लिया। बाद को इसी कमेटी की तरफ से 1890 मे 'इण्डिया' नामक मासिक निकलने लगा। यह पत्र जनवरी, 1898 से साप्ताहिक हो गया। असहयोग आन्दोलन के समय जब आत्मबल पर स्वराज्य लेने की बातचीत चली, उस समय 'इडिया' का प्रकाशन यह कहकर बन्द कर दिया गया कि इसकी कोई आवश्यकता नही है क्योकि हमे स्वराज्य जीतना है न कि भीख में पाना है।

काग्रेस का पाचवा अधिवेशन

काग्रेस का पाचवा अधिवेशन 1889 मे फिर बम्बई मे हुआ। अब की बार सर विलियम वेडरबर्न इसके सभापति हुए। सर फिरोजशाह मेहता स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। इस अधिवेशन मे मजे की बात यह हुई कि यह सन 1889 था और इसमे प्रतिनिधि भी 1889 आए थे। बम्बई और सिन्ध से 821 प्रतिनिधि आए थे, वर्तमान बगाल, बिहार, उडीसा आसाम से 165, मद्रास से 336, पजाब से 62, युक्त प्रान्त से 261, मध्य प्रान्त और बरार से 214। इनमे मुसलमान प्रतिनिधियो की सख्या 258 थी। 6 स्त्रिया भी अधिवेशन मे प्रतिनिधि बनकर आई थी। उनके नाम हैं—पडिता रमाबाई, विद्यागौरी नीलकण्ठ, रमाबाई रानडे, श्रीमती निकम्ब, कादम्बिनी गागुली और स्वर्ण कुमारी घोषाल। कादम्बिनी गागुली भारत की प्रथम दो ग्रेजुएटो मे से थी। इस अधिवेशन मे पहली बार गोपालकृष्ण गोखले तथा लोकमान्य तिलक पधारे।

काग्रेस मे चार्ल्स ब्रैडला—इस काग्रेस की सबसे बडी विशेषता यह थी कि चार्ल्स ब्रैडला काग्रेस के अधिवेशन को देखने के लिए आए थे। ब्रैडला ब्रिटिश ससद के सदस्य थे, और ससद में जब भी भारत का प्रश्न आता था, तभी वह भारत का पक्ष लेते थे, यहा तक कि लोग उन्हें 'मेम्बर फार इण्डिया' कहने लगे थे। ब्रैडला अनीश्वरवादी थे। अपने निर्मल चरित्र के कारण लोगो पर उनकी धाक जमी हुई थी। वह बहुत स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। जब वह ससद के सदस्य चुने गए, तो उन्हे नियमानुसार यह कहा गया कि ईश्वर का नाम लेकर शपथ ग्रहण करें, पर उन्होंने ऐसा करने मे इनकार कर दिया। इसके लिए उन्हें कुछ दिनो तक ससद मे बैठने भी नही दिया गया, पर अन्त मे उनके

लिए विशेष नियम बना और उन्हें अपने ही शब्दो मे शपथ ग्रहण करने की स्वतन्त्रता दी गई।

सभापति का भाषण—सर विलियम वेडरबर्न ने ब्रिटिश सरकार की निंदा करते हुए कहा "कम्पनी की अमलदारी में कम्पनी पर जो देख रेख रहती थी, उसके कारण फिर भी भारतीयो की अवस्था अच्छी थी, पर 1858 से जब से सरकार कम्पनी के हाथ से सीधे सम्राज्ञी के हाथ मे गई, तब से भारतीयो के कष्ट और भी बढे हैं। कम्पनी को संसद की परवा रहती थी, पर अब सरकार को किसका डर है ? उदाहरणस्वरूप, लार्ड रिपन ने कृषि बैंक की स्थापना के लिए एक योजना बनाई थी, भारत सचिव के दफ्तर से इसका समर्थन करने की बजाय इस योजना को खत्म कर दिया। मैं पूछता हू कि कृषि बैंक के बगैर किसानो की कैसे उन्नति हो सकती है ? वे तो हमेशा साहूकारो के हाथो मे कठपुतले बने रहेगे। यदि कृषि बैंक न हो, तो यह निश्चित है कि किसानो की फसल किसानो के घर मे नही जाएगी। जर्मनी को देखिए, वहा दो हजार कृषि बैंक काम कर रहे है।" इस प्रकार किसानो की समस्या किसी न किसी रूप में उठी।

लोकमान्य तिलक और गोखले—इस कांग्रेस मे क्या हुआ, यह बताने के पहले हम यह बता दें कि लोकमान्य तिलक तथा गोखले कौन थे। लोकमान्य तिलक स्वभाव से एक ग्रन्थकीट तथा विद्याव्यसनी थे, पर वह स्वार्थी नही थे। वह चाहते थे कि जो शिक्षा उन्हें मिली है, वह देश के अधिक से अधिक लोगो को मिले। उन्होने 'डेक्कन एज्यूकेशन सोसाइटी' नाम से एक शिक्षा संस्था तथा एक स्कूल कायम किया था। यह स्कूल बढते बढते फर्ग्युसन कालेज मे तबदील हो गया। शिक्षाव्रती होने के अतिरिक्त लोकमान्य पत्रकार भी थे। वह सोसाइटी के पत्र 'मराठा' और 'केसरी' मे निरन्तर लिखते रहे। वह जो उचित समझते थे वही लिखते थे। उन्होने 'केसरी' मे बम्बई की एक रियासत की समालोचना कर डाली, जिसके कारण उनको तथा उनके सहयोगी आगरकर को चार महीने की सजा हुई। तिलक संस्कृत तथा गणित के प्रकाण्ड विद्वान थे। वह बाद को 'गीता रहस्य' तथा अन्य गवेषणा की पुस्तकें लिख कर अमर हो गए।

गोखले भी डेकन एज्यूकेशन सोसाइटी के सदस्य थे। वह अर्थशास्त्र के पंडित थे। विचारो मे व उदारवादी थे। बाद के पृष्ठो मे हमे तिलक तथा गोखले से अकसर साबका पडेगा।

अल्पसंख्या का प्रश्न—इस कांग्रेस मे भी शासन सुधार की माग का प्रस्ताव ही मुख्य था। यो तो यह प्रस्ताव पहले की ही तरह था, इसमे कोई विशेषता नही थी, पर एक नई बात जरूर थी। वह यह कि प्रस्ताव मे कहा गया था कि दस लाख मे से एक सदस्य लिया जाय, और पारसी, ईसाई, मुसलमान जो भी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के लोग हो, उनके कम से कम इतने सदस्य लिए जाय कि दस लाख पर एक के हिसाब से उनके सदस्यो की संख्या कम न हो। मि० आइल नार्टन ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। पंडित अयोध्यानाथ ने इसका अनुमोदन किया। मिस्टर ह्यूम की राय मे अल्पसंख्या वाली बात की कोई आवश्यकता नही थी। वह बोले 'भारतीय तो भारतीय हैं, उनमे अल्प संख्या और बहुसंख्या कैसी ?' अवध के मुशी हिदायत रसूल ने संशोधन रखा कि यद्यपि हिन्दुओ की बहुसंख्या है, पर धारासभा मे हिन्दू और मुसलमानो की संख्या बराबर हो, लखनऊ के बैरिस्टर मिस्टर हामिद अली खा ने इस संशोधन का यह कहकर विरोध किया कि इस सम्बन्ध मे हिन्दू और मुसलमानों का कोई प्रश्न नही उठता। इस पर सैयद वाजिद अली ने तैश मे आकर कहा कि धारासभा मे मुसलमानो की संख्या हिन्दुओ की संख्या की तिगुनी हो। सैयद मोहद्दीन अहमद बलखी ने साम्प्रदायिक मनोवृत्तियुक्त संशो-

धर्मों का विरोध करते हुए कहा कि 'हम यहां पर एक सामान्य उद्देश्य लेकर जमा हुए हैं। ऐसे अवसर पर न तो मुसलमान अपने को मुसलमान कह सकते हैं, न हिन्दू अपने को हिन्दू कह सकते हैं—यहां तो हम सब सम्प्रदाय जात पात छोड़कर मात्र भारतीय ही हैं।' हिदायत रसूल का संशोधन गिर गया। मुसलमानों ने भी इसके विरुद्ध वोट दिया।

स्त्रियों को वोट का प्रस्ताव—शासन सुधार के प्रस्ताव के सिलसिले में कादम्बिनी गांगुली के पति द्वारकानाथ गांगुली ने यह संशोधन पेश किया कि स्त्रियों को भी वोट का अधिकार मिले। गांगुली महाशय स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में आन्दोलन करने के सिलसिले में कष्ट उठा चुके थे। वह 'ललनासुहृद' नामक एक स्त्रियों के अधिकार सम्बन्धी पत्र के सम्पादक भी थे। मिस्टर गांगुली का संशोधन पारित नहीं हुआ, बल्कि उन्हें इसे वापस लेना पड़ा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि अभी तक इंगलैंड में भी स्त्रियों को यह अधिकार नहीं मिला था, यद्यपि वहां स्त्रियों की हालत भारतीय स्त्रियों से कहीं अच्छी थी।

इसी अधिवेशन में यह तय हुआ कि कांग्रेसी नेताओं का एक प्रतिनिधि-मण्डल विलायत भेजा जाय। इस प्रतिनिधि मण्डल में ह्यूम, नार्टन, यूल, सुरेन्द्र बनर्जी, आर० एन० मुधोलकर, फिरोजशाह आदि थे। ये 1890 में विलायत गए और पहले इन्होंने दादाभाई नौरोजी के निर्वाचन क्षेत्र फिंसबरी से काम शुरू किया, फिर मण्डल ने विलायत में कई जगह व्याख्यान दिए। चार-पांच महीना घूमकर यह मण्डल विलायत से जुलाई, 1890 के लगभग लौट आया।

पांचवें अधिवेशन के बाद मिस्टर ब्रैडला को एक मानपत्र दिया गया। बहुत से मानपत्र तैयार थे, पर यह तय हुआ कि कांग्रेस का मानपत्र ही पढ़ा जाय और बाकी सब पठित मान लिया जाय।

उन्होंने कांग्रेस की प्रशंसा की और लोगों से कहा कि "लोग ब्रिटिश संसद के पास हजारों लाखों और, हो सके तो करोड़ों के दस्तखत से अर्जी भेजें।" इस प्रकार मिस्टर ब्रैडला कांग्रेस नेताओं को वे ही मार्ग बता गए जिनका वह स्वयं अनुसरण कर रहे थे। उसमें कोई नई बात नहीं थी। मिस्टर ब्रैडला ने लौटकर संसद में भारत सम्बन्धी एक बिल पेश किया, पर इस बिल के पेश होने से पहले ही 30 जनवरी, 1891 को उनका देहांत हो गया।

इस कांग्रेस में अधिक प्रतिनिधि आए थे, इस कारण प्रतिनिधियों की संख्या नियन्त्रित करने के लिए यह तय हुआ कि प्रति दस लाख आबादी पर एक प्रतिनिधि आ सकेगा। इस नियम के कारण अगली कांग्रेस में प्रतिनिधियों की संख्या घट गई। कांग्रेस का कोई जमाना था, जब उसमें कुछ लोगों का किसी तरह आ जाना ही अच्छा समझा जाता था, पर अब कांग्रेस की ताकत और इज्जत बढ़ चुकी थी। स्वाभाविक रूप से अब प्रतिनिधियों की संख्या के नियमन की जरूरत पड़ी। मिस्टर ह्यूम प्रधान मंत्री रहे और इलाहाबाद के पंडित अयोध्या नाथ उनके सहकारी चुने गए। इनको सलाह देने के लिए बंगाल के उमेश बनर्जी, मद्रास के आनन्द चार्लू और बम्बई के फिरोजशाह मेहता को लेकर एक स्टैंडिंग कौंसिल बनी। इसे हम एक तरह से कार्य समिति का प्रारम्भ कह सकते हैं।

कांग्रेस का छठा अधिवेशन

1890 में कलकत्ते में श्री फिरोजशाह मेहता की अध्यक्षता में छठा अधिवेशन

सपन्न हुआ। स्वागत समिति की अध्यक्षता के लिए सर रमेशचन्द्र मित्र को लोगो ने घेरा, अभी अभी वह कलकत्ता हाईकोर्ट की जजी से पेंशन लेकर अलग हुए थे, पर उन्होने बीमारी के आधार पर यह पद अस्वीकार कर दिया। तब कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर मनमोहन घोष स्वागत समिति के सभापति हुए। इस अधिवेशन के लिए नए नियमो के अनुसार एक हजार प्रतिनिधि चुने गए थे, पर इसमे से केवल 700 अधिवेशन मे शरीक हो सके।

सरकारी कर्मचारियों को काग्रेस मे शरीक होने की मुमानियत – इस अधिवेशन पर भी सरकार का कोप स्पष्ट था। अधिवेशन के कुछ दिन पहले ही गोरो के अखबारो मे खबर निकली, फिर सरकार ने यह विज्ञप्ति निकाली कि कोई भी सरकारी कर्मचारी दर्शक की हैसियत से भी काग्रेस के अधिवेशन मे शरीक न हो। इससे तहलका मच गया।

काग्रेस के अधिकारियो ने बगाल के गवनर सर चार्ल्स ईलियट तथा उनके कौंसिलरो के लिए सात कार्ड भेजे थे। ये कार्ड यह कहकर लौटा दिए गए कि गवर्नर महोदय अथवा उनके घर के लोग, इन कार्डों का कोई इस्तेमाल नही कर सकते क्योंकि भारत सरकार ने ऐसी सभाओ मे सरकारी नौकरो के जाने की मुमानियत कर दी है।

इस पर काग्रेस के नेताओ मे बडा जोश फैला, क्योंकि उस युग के काग्रेसी नेता अपने को यदि देशभक्त समझते थे तो साथ ही साथ राजभक्ति मे भी किसी से पीछे समझे जाने के पक्षपाती नही थे। जार्ज यूल ने इस पर भाषण देते हुए कहा—"क्या हम अछूत हैं? क्या हम किसी तरह किसी से कम राजभक्त हैं? इसलिए जब ऐसी हिदायतें दी जाती हैं कि कोई सरकारी कर्मचारी हमसे न मिले, तो हम इसे अपना अपमान समझते है और इसके उत्तर मे हमारा यह कहना है कि इसानियत के गुणो की दृष्टि से हम उनसे किसी प्रकार घटकर नही हैं।"

यही उस युग के नेताओ की भावना थी।

इसके उत्तर मे बडे लाट की तरफ से कहा गया कि बगाल के गवनर गश्ती चिट्ठी का सही मतलब नही समझ सके। यह बताया गया कि काग्रेस आदोलन बिल्कुल वैध है। भारत सरकार यह मानती है कि काग्रेस आन्दोलन का भारत मे वही स्थान है जो यूरोप मे अग्रगामी उदारपथियो का है। अवश्य साथ ही देश मे कनजर्वेटिवो का बहुमत है।

लार्ड डफरिन यहा से विदा होते समय काग्रेस को लात जमा गए थे, उसका उत्तर देते हुए इस अधिवेशन के सभापति श्री फिरोजशाह मेहता ने कहा—"हम पर यह जो अभियोग लगाया गया था कि हम खुर्दबीन मे देखे जाने योग्य अल्पसख्यक है हम उस अभियोग के बाद भी जी रहे हैं। दूसरा अभियोग लगाया गया है कि हम लोग सब छद्म वेशधारी नौकरी चाहने वाले बाबू हैं, हम उससे भी नही मरे। हम पर जो बौछारें की गईं, गालिया दी गइ, हमे गलत दृष्टि से देखा गया, हम उसके बावजूद जीवित है। हम पर राजद्रोही होने का जो अभियोग लगाया गया, हम उसमे भी बरी हो चुके है।"

इस प्रकार सभापति के भाषण मे हम उसी दुरगी नीति को मूर्त पाते हैं जो उस युग की एक हद तक अनिवार्यता था।

अल्पसख्यक सम्प्रदाय और चुनाव— इस काग्रेस मे भी शासन सुधार पर प्रस्ताव आया। पटना के सैयद सफरुद्दीन ने लार्ड क्रास तथा लार्ड सालिसबरी के मन्तव्यो का उत्तर देते हुए कहा कि यह जो कहा गया है कि मुसलमान अल्पसख्यक है और उनको शासन सुधार से हानि होगी, इसका कोई अर्थ नही है। हम दूर क्या जाए, वस्तुस्थिति को

ही लें। हमारे यहा नगरपालिका मे 20 सीटें हैं, पर हिदुओ की बहुसख्या के होते हुए 13 मुस्लिम सदस्य हैं। बम्बई मे हिदुओ की बहुत अधिक सख्या है, फिर भी पा पारसी, तीन गोरे, दो हिदू और दो मुसलमान इसके सदस्य हैं। हमारे देश म अभी त बहुसख्या स कोई असुविधा नही हुई है इसलिए यह प्रश्न उठाना ही नहीं चाहिए।"

विलायत मे कांग्रेस के अधिवेशन का प्रस्ताव—इस अधिवेशन म एक प्रस्ता यह भी आया कि 1892 की काग्रेस विलायत मे हो। ब्रिटिश ससद के सदस्य मिस्टर ने इस सम्बध म लोगो स कहा कि हम विलायत के लोगो की तरफ से यह आश्वा देते हैं कि जब आप विलायत आएगे, तो हम आपका ऐसा स्वागत करेंगे कि आप तबीयत खुश हो जाएगी। पर यह प्रस्ताव माना नही गया। स्पष्ट ही सब लागों विलायत जाना सभव नही था। पर प्रस्ताव का आशय स्पष्ट था।

कुछ अय प्रस्ताव—इस काग्रेस के अय प्रस्तावो मे नमक कर के विरुद्ध तथा बगाल के अतिरिक्त अय स्थानो म इस्तमरारी बदोबस्त चालू करने के सम्बध म भी प्रस्ताव पास हुए। काग्रेस ने मादक द्रव्यो पर नियत्रण के सम्बध पर भी एक प्रस्ता पास किया।

काग्रेस का सातवा अधिवेशन

काग्रेस का सातवा अधिवशन नागपुर मे मद्रास के आनद चालू के सभापतित्व में हुआ। छठे अधिवेशन के बाद कहा जाता है कि मिस्टर ह्यूम इगलड गए थे और उन्होंने इस बात की जी-तोड कोशिश की थी कि काग्रेस का अगला अधिवेशन लदन म हो। कुछ लोग इस प्रस्ताव को अव्यवहारिक समझते थे पर मिस्टर ह्यूम इस बात पर अ गए थे कि उन्होने लिख भेजा था कि 'यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकृत नही हुआ तो मेरा त्याग पत्र ले लिया जाए।" जो हो, यह प्रस्ताव कायरूप मे परिणत नही हुआ और नागपुर मे काग्रेस होना तय हुआ। मिस्टर नारायण स्वामी स्वागत समिति के सभापति हुए।

यद्यपि मिस्टर ह्यूम ने काग्रेस से अलग हो जाने की धमकी दी थी पर वह इस अधिवेशन म आए और उन्होने काग्रेस के सूत्र को अपने हाथो मे ले लिया। यह समझ में नही आता कि वह लदन म काग्रेस का अधिवेशन करने के इतने पक्षपाती क्यो थे। शाय वह अपने ढग स यह समझते थे कि लदन म अधिवेशन होने पर ब्रिटिश सरकार पर अधिक असर पडेगा। भारत मे आते ही मिस्टर ह्यूम ने काग्रेस के नेताओ को एक गश्ती चिटठी इस आशय की लिखी की सातवी काग्रेस मे किसी नए प्रस्ताव की जरूरत नहीं है बल्कि पुराने प्रस्तावो पर नए तरीके से ठप्पा लगाकर काम को आगे बढाया जाए। ऐसी गश्ती चिटठी भेजने मे उनका आशय कदाचित यह था कि ब्रिटिश ससद पर असर डाला जाए कि वे ही प्रस्ताव बराबर आते हैं इसलिए माग मान ली जाए।

सैनिक व्यय पर प्रस्ताव—इस काग्रेस म लोकमान्य तिलक ने बढे हुए सनिक व्यय के सम्बध मे एक प्रस्ताव रखा, जिसमे उन्होंने यह कहा कि भविष्य मे सभव आक्र मणो के नाम पर सैनिक व्यय बढाते जाने का कोई अथ नही। इसके स्थान पर भारतीय ताकि आत्मरक्षा म समथ हो सकें इसलिए एक तो अस्त्र कानून के बरतने मे जो कडाई तथा पक्षपात से काम लिया जाता है, उसे दूर किया जाए, युद्ध विद्या सीखने के लिए सनिक कालेज खोले जाए इत्यादि काय किए जाने चाहिए। अली अहमद भीम जी ने लोकमाय का समर्थन करते हुए यह बताया कि भारत सब से गरीब देश है, पर यही का सैनिक व्यय सबसे अधिक है। काग्रेस नेताओ का इस विषय मे शकित होना स्वाभाविक था। 1864 से 1885 तक सनिक व्यय मे 5 करोड रुपए बढे थे, पर 1885 से 1891

तक 54 करोड रुपए व्यय बढ़ा। भारत सरकार यह सब रूस के डर से कर रही थी। लोगो को शका थी कि भारत रक्षा के नाम पर सरकार भावी युद्ध की तैयारी कर रही है और वह भी भारतीयो के नाम पर।

काग्रेस के अन्य प्रस्ताव—इस बार के अधिवेशन मे जगल कर के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास हुआ। पहले के जमानो मे जगलात बहुत कुछ ग्राम सप्रत्ति समझी जाती थी। फिर जगल कर का प्रत्यक्ष फल यह हुआ था कि अकेले मद्रास म ही एक साल के अन्दर 3 लाख गायें मर गईं। इस प्रकार काग्रेस ने यह एक प्रस्ताव ऐसा रखा जिसके सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि वह शहरी मध्यवित्त वग से सम्बन्धित नही था। इसी अधिवेशन म एक प्रस्ताव सरकार की इस चेष्टा के विरुद्ध भी पास हुआ कि सरकार जन शिक्षा के बहाने उच्च शिक्षा को सीमित कर रही है। हम पहले ही दिखा चुके हैं कि तरह तरह का दावा करने पर भी कम्पनी से लेकर ब्रिटिश सरकार तक के कमचारी सभी भारतीयो की उच्च शिक्षा के विरोधी थे। सरकार से यह भी अनुरोध किया गया कि शिल्प कला की शिक्षा तथा आम शिक्षा की तरक्की के लिए एक कमीशन बैठाए कि कैसे भारत की उन्नति हो सकती है।

काग्रेस का आठवा अधिवेशन

1892 मे काग्रेस का आठवा अधिवेशन इलाहाबाद म हुआ। लोग चाहते तो यह थे कि अब की बार दादा भाई नौरोजी काग्रेस के सभापतित्व के पद को सुशोभित करें, पर वह पार्लियामेंट के चुनाव के झगडे से फुरसत न पा सके, इस कारण उमेशचन्द्र बौनर्जी सभापति बनाए गए। दादाभाइ नौरोजी इस बीच ब्रिटिश ससद के सदस्य चुन लिए गए थे, उनको अपने प्रतिद्वन्द्वी से तीन वोट ज्यादा मिले थे। उनके प्रतिद्वन्द्वी ने अर्जी दी थी कि मतदान पत्रो की फिर मे परीक्षा हो। इसी कारण दादाभाई को विलायत मे रुकना पडा। कुछ भी हो, दादाभाई के चुने जाने पर काग्रेस के नेताओ मे बडी खुशी थी और सभापति ने इसको अपने अभिभाषण मे व्यक्त किया। इसमे सदेह नही कि उन दिनो की दृष्टि मे वह एक बहुत ही भारी सम्मान था, साथ ही यह घटना भारतीयो का मनोबल बढानेवाली थी।

1892 का इडियन कौंसिल्स ऐक्ट—इस बीच 1892 का इडियन कौंसिल्स ऐक्ट पारित हो चुका था। इसम कोई ऐसी बात नही थी, फिर भी पुराने कानून से यह कुछ अच्छा था। ब्रडला न ब्रिटिश ससद के सामने जो कानून रखा था, प्रस्तावक की मृत्यु के साथ साथ वह खत्म हो चुका था। पर चतुर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह समझते थे कि भारतीय जनमत को सतुष्ट करने के लिए कुछ न कुछ दिखाया करना चाहिए तदनुसार लाड क्रास ने एक प्रस्ताव हाउस आफ लाडस म रखा था। इस प्रस्ताव मे भारतीय लेजिस्लेटिव कौसिल के सदस्यो की सख्या 12 से 16 कर दी गइ। चुनाव का सिद्धान्त लागू नही हुआ, पर यह कहा गया कि नामजदगी करत समय नगरपालिकाओ और जिला बोर्डों की राय ली जाएगी। इस कानून मे प्रत्येक प्रान्त की भारतीय कौसिल म एक गैर सरकारी भारतीय लेने की व्यवस्था थी। प्रान्तीय कौंसिलो के भी सदस्यो की सख्या बढा दी गई। पहले बम्बई और मद्रास मे 8 ही सदस्य होते थे, अब इसमे 20 उत्तर पश्चिमी प्रान्त मे 15 तथा पजाब मे 9 सदस्य कर दिए गए। नगरपालिकाओ, जिला बोर्डों चेम्बर आफ कामर्सों तथा विश्वविद्यालयो के भी कुछ अधिकार बढा दिए गए। लेजिस्लेटिव कौसिल के अधिकार भी कुछ बढाए गए, और सदस्यो को यह अधिकार मिला कि व प्रश्न पूछ सकते हैं। लोकतत्र की दृष्टि मे देखने पर यह विधेयक बिलकुल निकम्मा

था, क्योंकि न तो इसमें जनता *या जनता के किसी हिस्से द्वारा चुनाव ही था*, और जो कौंसिलें इस प्रकार बनने वाली थीं, उनमें सरकारी सदस्यों की ही बहुसंख्या रहनी था। लार्ड क्रास का यही विधेयक पारित हुआ।

हाउस आफ कामन्स में भारतीय उपसचिव मिस्टर कर्जन (बाद को लार्ड कर्जन) ने यह बिल पेश किया। ब्रैडला द्वारा प्रस्तावित विधेयक के साथ तुलना करने से स्पष्ट होता है कि यह विधेयक कितना प्रतिक्रियावादी था। ब्रैडला का विधेयक भी लोकतांत्रिक दृष्टि से बहुत त्रुटिपूर्ण था, फिर भी उसमें यह प्रस्ताव था कि जो कौंसिल बने, चाहे केंद्रीय या प्रांतीय, उसके आधे सदस्य भारतीयों के द्वारा चुने हुए हों, एक चौथाई सरकार द्वारा नामजद हों, और एक चौथाई सरकारी सदस्य हों।

ऐक्ट पर कांग्रेस का प्रस्ताव—कांग्रेस ने इस विधेयक के सम्बन्ध में प्रस्ताव करते हुए कहा कि यद्यपि कांग्रेस राजभक्ति के साथ इस ऐक्ट को ग्रहण करती है, फिर भी प्रधान मंत्री तथा अन्य लोगों की तरफ से यह जो कहा गया है कि इसका उद्देश्य धारा सभाओं में भारतीयों का वास्तविक प्रतिनिधित्व देना है, सो यह कानून ऐसी कोई बात नहीं करता। फिर भी कांग्रेस यह उम्मीद रखती है कि ऐक्ट के जो नियम वगैरह बनाए जा रहे हैं, वे मिस्टर ग्लैडस्टोन की घोषणा के अनुसार होंगे और उनसे जनता के प्रति न्याय करने की चेष्टा की जाएगी।

कौंसिल के मेम्बरों को प्रश्न पूछने का जो अधिकार दिया गया था, वह निरर्थक इसलिए था कि प्रश्न का जो उत्तर दिया जाता था, वह अन्तिम समझा जाता था। न तो उस उत्तर पर कोई बहस हो सकती थी, और न उसकी जांच हो सकती थी। सदस्यों को बजट की आलोचना करने का अधिकार तो मिला था, पर उस पर वोट देने का अधिकार उन्हें नहीं था। इन सब बातों को देखकर विधान बनाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शरारत भरी प्रतिभा की प्रशंसा करनी पड़ती है, पर यह स्मरण रहे कि यह प्रतिभा संगीन के जोरों पर ही काम कर सकी, नहीं तो उस समय के कांग्रेस के नेता, इनसे पीछे नहीं थे। *यह बुद्धि की लड़ाई नहीं, बल्कि बुद्धि बनाम संगीन की लड़ाई थी।*

कांग्रेस का नवां अधिवेशन

कांग्रेस का नवां अधिवेशन लाहौर में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में 1893 में हुआ। सरदार दयालसिंह मजीठिया स्वागत समिति के प्रधान थे। इस बार प्रतिनिधियों की संख्या 866 थी, जिनमें से पंजाब से ही 481 प्रतिनिधि आए थे। दादाभाई नौरोजी के ब्रिटिश संसद में चुने जाने से छात्र समाज उन पर ऐसा खुश था कि घोड़ा हटाकर छात्रों ने ही सभापति की गाड़ी खींची। उनके संसद में चुने जाने से सदस्यों में *भारतीयों के सम्बन्ध में एक अच्छा खासा आंदोलन खड़ा हो गया था।* दादाभाई नौरोजी लाहौर आने के पहले ही इंडियन संसदीय कमेटी के नाम से एक कमेटी बना चुके थे। इस कमेटी में 154 ब्रिटिश संसद सदस्य शामिल थे। इस कमेटी के आंदोलन के फलस्वरूप बाद को चलकर भारत सचिव के विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव पास हो गया कि भारतवर्ष में भी विलायत के साथ साथ सिविल सर्विस की परीक्षा हुआ करे। इसी कमेटी के प्रभाव के कारण इंडिया कौंसिल ऐक्ट को कार्यरूप में परिणत करने के लिए जो नियम तथा उपनियम बने, वे एक हद तक उदार थे, और विश्वविद्यालय, नगरपालिका, चेम्बर आफ कामर्स, जिला बोर्ड, कारपोरेशन, जमींदार सभा को यह हक मिल गया कि वे सदस्यता के लिए नाम भेजें। अवश्य सम्बन्धित लाट साहब को यह अधिकार रहा कि वे

चाह तो इन सिफारिशो को ठुकराकर अपनी राय के किसी व्यक्ति को कौंसिल मे ले लें, पर अक्सर वे ऐसा नही करते थे। इस प्रकार परोक्ष रूप से चुनाव का कुछ मामूली श्रीगणेश हुआ। कलकत्ता कारपोरेशन ने इसी प्रकार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को कौंसिल मे भेजा था।

दादाभाई का गौरव—इस कारण दादाभाई नौरोजी का सम्मानित होना बहुत ही स्वाभाविक था। उस समय के अग्रेजी पढे लिखे नेताओ की दृष्टि मे ब्रिटिश ससद ही सब अधिकारो को देने वाला कल्पतरू था। जब दादाभाई इसी ससद मे पहुच गए, तो फिर क्या कहना था! उन्होने इसी का फायदा उठाकर वह ससदीय कमेटी बनाई थी।

अधिवेशन के अन्य प्रस्ताव—इस कांग्रेस मे भी शासन सुधार, सिविल सर्विस आदि पर प्रस्ताव हुए। लाला लाजपतराय ने सरकार की शिक्षा नीति की तीव्र आलोचना करते हुए कहा कि "हमने सरकार को धन-जन तथा सब तरीके से मिस्र, अबीसिनिया, तथा अफगानिस्तान मे मदद दी, इसका हमे यह बदला मिल रहा है कि हमारी शिक्षा घटान की तैयारी है।" इडियन मेडिकल सर्विस मे भारतीयो को लिए जान के सम्बन्ध मे भी एक प्रस्ताव पास हुआ। फिनबरी के निर्वाचको को दादाभाई को चुनने के लिए धन्यवाद दिया गया। कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी तथा 'इडिया' नामक पत्र के लिए 60 हजार रुपये की रकम मजूर हुई।

कांग्रेस का दसवा अधिवेशन

कांग्रेस का दसवा अधिवेशन 1894 मे ब्रिटिश ससद के आयरिश सदस्य अल्फ्रेड वेब के सभापतित्व मे हुआ। आयरलैंड भी ब्रिटिश बेडियो से छुटकारा चाह रहा था। इस नाते आयरिश भारतीय दोस्ती स्वाभाविक थी। उस युग मे लोग एक गीत गाते थे जिसकी एक कडी यह थी 'मिस्ल आयरलैंड दबकर फिर उभरना सीख लो।' सभापति ने अपने अभिभाषण मे यह दिखलाया कि भारत सरकार की आमदनी की एक-चौथाई भारत के बाहर खर्च होती है, फिर भारतवर्ष गरीब क्यो न हो। इस साल भी मामूली तरीके से वे ही प्रस्ताव पास हुए। फिर ब्रिटिश कमेटी के लिए 60 हजार रुपया मजूर हुआ।

वस्त्रों पर प्रहार—इस साल कई ऐसी बातें हुईं जिनसे अब यह स्पष्ट होने लगा कि कांग्रेस के पुरानी तरीके के आदोलन से अब आगे बढना बहुत कठिन है। इस बीच भारतवर्ष मे कुछ मिलें खुली थी। 1860 तक भारतवर्ष मे बाहर से यन्त्र मगाने पर इस माने म रोक थी कि इस पर भारी टैक्स लगाया जाता था। 1860 मे यह टैक्स हटा दिया गया और इस प्रकार भारत के औद्योगीकरण का प्रारम्भ हो गया था।

सबसे पहले तो सन की मिलें खुली, फिर कुछ कपडे की मिलें भी खुल गइ। इस प्रकार भारतवर्ष म मिलो की इतनी तरक्की होने लगी कि विलायत के मिल मालिक घबडाए। तदनुसार इस साल भारत सरकार की सिफारिश को भी ठुकरा कर ब्रिटिश सरकार ने यहा के वस्त्रो पर कर लगाया। इस प्रकार भारतवर्ष को लकाशायर की बलिवेदी पर चढा दिया गया। कहना न होगा कि इस नियम से उदीयमान भारतीय वस्त्र-शिल्प को बहुत धक्का पहुचा, पर ब्रिटिश सरकार को इसकी क्या परवा थी। मजे की बात है कि सरकार की यह भेदभरी नीति 1939-45 के द्वितीय महायुद्ध के दौरान भी कायम रही और सरकार ने युद्ध से सम्बद्ध कई बहुत जरूरी उद्योग धधो को भी भारतवर्ष म पनपने की अनुमति नही दी।

भारत में परीक्षा से इनकार—ब्रिटिश सरकार ने जो दूसरा अन्याय किया, वह

सिविल सर्विस के सम्बन्ध म था। ब्रिटिश ससद के अधिकांश सदस्यो की यह राय हो चुकी थी कि सिविल सर्विस की परीक्षा भारत तथा इगलैंड दोनो जगहो पर हो, पर भारत सचिव ने 19 अप्रैल को भारत सरकार को सूचित किया कि यह प्रस्ताव कार्यान्वित नही किया जाएगा। इस सम्बन्ध मे यह ध्यान देने योग्य है कि ब्रिटिश सरकार ने इसके पहले भारत सरकार तथा प्रातीय सरकारो की राय मागी थी। मद्रास सरकार के अतिरिक्त सभी सरकारो ने इसके विरुद्ध राय दी थी। इस प्रकार जो माग मध्यमवर्ग की प्रधान मागो म से थी, वह ठुकरा दी गई, और यह भी ब्रिटिश ससद म प्रचार कार्य के बावजूद।

नए नेतृत्व की आवश्यकता—इस पर होना तो यह चाहिए था कि कांग्रेस के *नेताओ को अपने आदोलन के तरीको पर से विश्वास उठ जाता और वे किसी नई दिशा* मे सोचते। स्पष्ट बात यह थी कि एक विषय के सम्बन्ध म आदोलन करते-करते उसे ब्रिटिश ससद और ब्रिटिश जनता तक पहुचा दिया गया, और वहा के बहुत से ससद सदस्यो की अनुकूल राय भी प्राप्त कर ली गई, फिर भी यह कार्यरूप म न आ सकी और उनकी राय कूडेखान म डाल दी गई। इस पर स्वाभाविक तरीके स नेताओ को आगे सोचना चाहिए था। पर वे आगे सोचने मे असमर्थ थे।

गणपति और शिवाजी उत्सव—इन्ही दिनो अर्थात् 1894 के करीब लोकमान्य तिलक तथा महाराष्ट्र के नौजवान किसी और ही तरीके से सोच रहे थे। 1893 के करीब लोकमान्य तिलक ने गणपति उत्सव तथा बाद को 1897 म शिवाजी उत्सव का प्रवर्तन किया। इस उत्सव के प्रवर्तक धार्मिक आड लेकर क्रातिकारी विचारो का प्रचार करना चाहते थे। यह साफ था कि इस उत्सव के प्रवर्तक तथा नेता केवल अर्जी भेजने या प्रस्तावो मे विश्वास नही करते थे। दुर्भाग्य से इन उत्सवो को एक धार्मिक और शिवाजी उत्सव के विषय म तो यह कहा जा सकता है कि उसे एक मुसलमान विरोधी रूप प्राप्त हुआ, पर मैं समझता हू कि यह रूप बहुत कुछ अनिच्छाकृत था। सच तो यह है कि इसके *अलावा कोई चारा नही था। ये नेता प्रत्यक्ष रूप से अग्रेजो के विरुद्ध कुछ कह नही सकते* थे, इसलिए वे भूतपूर्व मुसलमान शासको के विरुद्ध ढाल-ढालकर अग्रेजो के विरुद्ध क्राति का प्रचार करते थे। हिन्दुओ के विरुद्ध मुसलमानो को भडकाने का अग्रेजो को एक अच्छा मौका मिल गया। लोकमान्य तिलक ने पहले गणपति उत्सव और बाद मे शिवाजी उत्सव का प्रवर्तन किया, यह भी अर्थपूर्ण है। प्रथम उत्सव मे धार्मिक आवरण बहुत अधिक था पर शिवाजी उत्सव मे यह आवरण कम हो गया, यह शुद्ध राजनीतिक था।

चाफेकर की हिन्दू धर्म सरक्षणी सभा—इसी समय लगभग श्री दामोदर चाफेकर तथा उनके भाई श्री बालकृष्ण चाफेकर ने 'हिन्दू धर्म सरक्षिणी सभा' नाम से एक सभा की स्थापना की।

कांग्रेस का ग्यारहवा अधिवेशन

कांग्रेस का ग्यारहवा अधिवेशन 1895 मे पूना मे श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता मे हुआ। यह एक मजे की बात है कि कांग्रेस के जन्म के पहले भारतीय राजनीतिक गगन पर सुरेन्द्रनाथ ही चमक रहे थे, पर कांग्रेस मे शामिल होने के बाद दस साल बीतने पर उन्हे उस सस्था के सभापति होने का मौका मिला। यह कोई आकस्मिक घटना नही है बल्कि इसके पीछे कई कारण थे। एक कारण तो यह था कि कांग्रेस के सस्थापक तथा नेता कांग्रेस को एक राजभक्त सस्था के रूप मे देखना चाहते थे। अधिक स अधिक गोरो को इस बीच मे सभापति बनाने का भी यही उद्देश्य था, पर अब

एक तो जमाना बदल चुका था, और सुरेन्द्रनाथ भी बदल चुके थे। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में जिस नौजवान दल का उदय हो रहा था, उसके सामने श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गरमजोशी बहुत कुछ म्लान हो चली थी। इस कारण काग्रेस के जन्म के समय सुरेन्द्रनाथ तथा अन्य काग्रेसी नेताओं में जो पार्थक्य की रेखा थी, वह बहुत कुछ मिट गई थी। इसी कारण सुरेन्द्रनाथ अब सभापति हुए। सुरेन्द्रनाथ ने सभापति की हैसियत से ढाई घण्टे तक भाषण दिया, और इस प्रकार अपनी व्याख्यान शक्ति के यश को कायम रखा।

तिलक और गोखले इस अधिवेशन के समय उसके पण्डाल में समाज सुधार सम्मेलन के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक तथा गोपालकृष्ण गोखले में झडप हो गई। गोखले यह चाहते थे कि समाज सुधार सम्मेलन यहीं पर हो पर तिलक इसके विरुद्ध थे। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि तिलक राजनीति में उग्रवादी थे, पर सामाजिक मामलों में उनके विचार अपरिवर्तनवादी थे। उन दिनों इस विषय पर देश भर में विवाद चल रहा था कि स्त्रियों की सम्मति की उम्र (age of consent) दस से बढ़ाकर बारह कर दी जाए या नहीं। रानडे तथा बहुत से पुराने नेता बारह साल के पक्ष में थे पर तिलक इसके विरोधी थे और बारह साल के विरुद्ध जो आन्दोलन हुआ, उसका उन्होंने नेतृत्व किया। इस प्रकार हम यहां एक बहुत ही अजीब दृश्य देखते हैं कि जो लोग सामाजिक दृष्टि से प्रगतिशील विचार रखते थे, वे राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हुए तथा दब्बू थे, और जो लोग सामाजिक दृष्टि से अपरिवर्तनवादी थे, वे राजनीतिक दृष्टि से उग्र कार्य प्रणाली के पक्षपाती थे। इसका अवश्यम्भावी नतीजा यह हुआ कि दोनों में से एक भी नेतृत्व यथेष्ट प्रगति न कर सका। इस दृष्टि से देखने पर कहना होगा कि गांधी जी अपने राजनीतिक तथा सामाजिक कार्यों में समान रूप से प्रगतिशील विचार लेकर बाद को आए, तथा इसीलिए उनकी विचारधारा का जो सामंजस्य तथा गति अनिवार्य रूप से प्राप्त हुई, वह इन नेताओं के विचारों को प्राप्त न हो सकी।

बदले हुए सुरेन्द्रनाथ—सभापति के पद से सुरेन्द्रनाथ ने जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने तमाम समस्याओं पर रोशनी डालते हुए अन्त में कहा कि मैं ब्रिटिश सदिच्छा में विश्वास रखता हूं। इस प्रकार उन्होंने सरकार तथा काग्रेस नेताओं के निकट यह स्पष्ट कर दिया कि मैं अब क्रान्तिकारी नहीं हूं।

अधिवेशन के अन्य प्रस्ताव—इस काग्रेस में भी वे ही मामूली प्रस्ताव लाए गए। इन दिनों भारतीय राजस्व का किस तरह व्यय होता था, इस सम्बन्ध में जाच के लिए एक ब्रिटिश ससदीय कमेटी बैठ चुकी थी। इस कमेटी को सुझाव देते हुए एक प्रस्ताव पास हुआ। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर ज्यादती के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पारित हुआ। सरकार द्वारा शिक्षा को सीमित करने की नीति पर एक प्रस्ताव पारित हुआ। सिविल सर्विस के सम्बन्ध में प्रस्ताव हुए। रेल के तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के दुख-दर्दों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव हुआ। अब की बार भी विलायत में काम करने के लिए 60 हजार की रकम मंजूर हुई। इस काग्रेस में पंडित मदन मोहन मालवीय के भाषण की बहुत तारीफ की गई।

काग्रेस का बारहवां अधिवेशन

काग्रेस का बारहवा अधिवेशन 1896 में कलकत्ते में मिस्टर रहमतुल्ला सियानी की अध्यक्षता में हुआ। आप बम्बई के अच्छे वकील तथा पुराने काग्रेसी थे। सभापति ने अपने अभिभाषण में यह प्रमाणित किया कि यह जो कहा जाता है कि मुसलमान काग्रेस में शामिल न हों, यह बिलकुल बेबुनियाद है। उन्होंने इस बात की अपील की कि मन में

कोई शका न रखकर मुसलमान काग्रेस म शरीक हो।

कवीन्द्र द्वारा वन्दे मातरम' गान—इस काग्रेस म कवीन्द्र रवीन्द्र ने स्व
वस्त्र धारण करके 'वन्दे मातरम्' गीत गाया। उनके भाई श्री ज्योतिरिन्द्रनाथ आग
बजा रहे थे, और वह अपनी मस्त आवाज म गा रहे थे। यह पहला अवसर था, जब
काग्रेस के अन्दर वन्दे मातरम् गाना गाया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है
कि कवीन्द्र सगमरमर के मीनारवासी नही थे। बाद को उन्होंने जलियावाला हत्याकाड
के विरोध म 'सर' की उपाधि त्याग दी।

शिक्षा विभाग म भी भेद नीति—अब तक काग्रेस म सिविल सर्विस का ही
रोना रहता था, और पिछले अधिवेशन म आई० एम० एस० म भारतीयो के लिए जाने
का प्रस्ताव किया गया था। पर अब की बार एक नया प्रश्न यह आया कि शिक्षा विभाग
मे भारतीयो और अंग्रेजो म भेदपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इस प्रस्ताव पर बोलते
हुए आनन्दमोहन वसु ने यह दिखलाया कि 1880 से पहले जहा तक बगाल के शिक्षा
विभाग का प्रश्न है किसी प्रकार की रंगभेद नीति नही थी। पर 1880 म भेदमूलक
नीति का सूत्रपात हुआ और भारतीयो का प्रारम्भिक वेतन पाच सौ से घटाकर 330
कर दिया गया, और 1889 म इसे और घटाकर 250 कर दिया गया जब कि गोरो का
500 ही रहा। उन्होंने कहा कि भेदमूलक नीति यहीं पर नही रुकी। अभी 1896 म जो
व्यवस्था हुई है, उसके अनुसार इस विभाग की नौकरियो को अखिल भारतीय और
प्रातीय इन दो भागो म विभक्त किया गया है और तय हुआ है कि अखिल भारतीय
नौकरियो म सिर्फ गोरे ही रहेंगे। वक्ता ने बड़े अफसोस के साथ कहा कि विलायत के
विश्वविद्यालय म शिक्षित होने पर भी भारतीय प्रातीय सर्विस मे ही लिए जाएंगे और
कुछ कालेजो के तो वे प्रिंसिपल भी न हो सकेंगे।

भारत मे दुर्भिक्ष पर प्रस्ताव—इन दिनो भारत भर म दुर्भिक्ष फैल रहा था।
इस सम्बन्ध म सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एक प्रस्ताव रखा जिसम कहा गया कि देश का धन
बहुत अधिक मात्रा म बाहर जा रहा है तथा सिविल और सैनिक विभाग म फिजूल-खर्ची
हो रही है। देश म कोई उद्योग धन्धा नही है, इसी कारण ये दुर्भिक्ष हुआ करते हैं।
1878 म सरकार ने बार बार होने वाले दुर्भिक्षो के कारणो की जाच करने के लिए एक
आयोग बैठाया था। उसने 1880 म अपनी रिपोर्ट देते हुए कहा था कि "भारतवर्ष की
गरीबी तथा फसल की कमी आदि के समय विपत्ति का दुखद कारण यह है कि सारी
जनता खेती पर निर्भर है और दुर्भिक्षो को दूर करने म तब तक कोई विशेष सफलता
नही मिलेगी जब तक लोगो के और धन्धे न हो।' दूसरे शब्दो म आयोग ने (स्मरण रहे
कि यह सरकारी आयोग था) यह कह दिया कि ब्रिटिश सरकार की नीति के ही कारण
यहा दुर्भिक्ष पड़ते हैं क्योंकि उसी ने लोगो के दूसरे धन्धो को नष्ट किया है।

अन्य प्रस्ताव—सरकारी चिकित्सा विभाग म गोरे और कालो म भेदभाव है,
उसके सम्बन्ध म भी प्रस्ताव आया। दक्षिण अफ्रीका पर भी एक प्रस्ताव हुआ। पर
मेश्वर पिल्ले ने इस प्रस्ताव को रखा। दक्षिण अफ्रीका म भारतीयो की कितनी दुर्दशा
थी, यह इसी से व्यक्त होता है कि वहा भारतीयो को स्वतन्त्रता के साथ चलने फिरने की
भी इजाजत नही थी काम करना और व्यापार करने की तो बात ही और है। रात मे वे
घर से नही निकल सकते थे और न वे जहा चाहे रह सकते थे। वे रेल मे किराया देकर
भी पहले तथा दूसरे दर्जे मे सफर नही कर सकते थे। उन्हे होटलो या पार्कों मे जाने की
इजाजत नही थी। भारतीयो पर राह चलते गोरे थूक देते थे तथा उन्हे ट्राम से धकेल देते
थे। नेटाल मे भी भारतीयो के सम्बन्ध म भेदमूलक कानून पास हुआ था।

कांग्रेस में प्रदर्शनी--इस कांग्रेस के साथ एक प्रदर्शनी भी हुई, जिसमें देशी उत्पादन दिखलाए गए। बाद को ऐसी प्रदर्शनियां कांग्रेस अधिवेशनों के लिए अनिवार्य हो गइं।

कांग्रेस का तेरहवां अधिवेशन

कांग्रेस का तेरहवां अधिवेशन 1897 में बरार की राजधानी अमरावती में शंकरन नयर (प्रसिद्ध विधिवेत्ता, लेखक, बाद को सर) की अध्यक्षता में हुआ। इस कांग्रेस में 600 प्रतिनिधि आए। कांग्रेस के प्रस्तावों का सरकार पर कुछ भी असर न पड़ता हो, ऐसी बात नहीं थी। बराबर कांग्रेस की तरफ से यह जो मांग की जा रही थी कि सरकार अपना खर्च घटाए, सो इस बीच ब्रिटिश संसद ने इस सम्बन्ध में जांच करने के लिए लार्ड वेलबी के सभापतित्व में एक आयोग नियुक्त किया था। इस आयोग में दादाभाई नौरोजी भी थे और इसमें चार भारतीयों की गवाही हुई। बम्बई के श्री वाचा, महाराष्ट्र के गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा जी० सुब्रह्मण्य अय्यर ये गवाह थे।

मिस्टर रैंड की हत्या—इस वर्ष कुछ ऐसी घटनाएं हुई थीं, जिनको किसी भी प्रकार कांग्रेस आंदोलन के अंतर्गत नहीं गिना जा सकता, फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में उनका स्थान बहुत ऊंचा है। इस साल की 22 जून का महारानी विक्टोरिया का साठवां राज्याभिषेक दिवस हीरक जयंती के रूप में मनाया जाने वाला था। इसके लिए बड़ी धूमधाम की तैयारी थी। उधर देश भर में दुर्भिक्ष फैल रहा था। लोग तड़प-तड़पकर मर रहे थे। ऐसे समय में बम्बई में ताऊन फैल गया। सरकार ने ताऊन का मुकाबला करने के लिए ताऊन कमेटी की स्थापना की। मिस्टर डब्ल्यू सी रैंड ताऊन आयुक्त के रूप में तैनात हुए। ताऊन के सिलसिले में ताऊन पीड़ितों का एक शिविर भी खोला गया। जब किसी के सम्बन्ध में मालूम हो जाता था कि उसे ताऊन हुआ है, तो उसे राजी से हो या जबर्दस्ती, पकड़कर ताऊन शिविर में भरती किया जाता था। कुछ लोग इससे बचने के लिए अपना रोग ही नहीं बताते थे। इस कारण तलाशी वगैरह होती थी। मिस्टर रैंड ने इस सम्बन्ध में बहुत सख्ती का बर्ताव किया। तलाशी के इस हक का इस्तेमाल राजद्रोही साहित्य ढूंढने के लिए किया जाने लगा, इस पर जनता में आक्रोश फैला और पहले हम जिन चाफेकर बंधुओं का उल्लेख कर चुके हैं, उन्होंने मिस्टर रैंड पर गोली चलाई। इसी सम्बन्ध में लेफ्टिनेंट आयर्स्ट भी मारे गए। बाद को चाफेकर बंधुओं को फांसी हुई।

आम धर-पकड़--हत्या 22 जून की रात को हुई, लोकमान्य तिलक 21 जुलाई को गिरफ्तार हुए। 'प्रबोध' के संपादक भी पकड़े गए। इसके अतिरिक्त 'वैभव' के संपादक विश्वनाथ केलकर तथा बलवंतराव नाटू और रामचन्द्रराव नाटू दो भाई पकड़े गए। तिलक पर यह आरोप लगाया गया कि 12 जून के गणपति उत्सव का उन्होंने केसरी में 15 जून को जो विवरण निकाला था, वह आपत्तिजनक था। इसके अतिरिक्त लोकमान्य पर यह आरोप भी लगाया गया कि उन्होंने शिवाजी उत्सव के मौके पर अफजल खां की हत्या का समर्थन करने के बहाने अंग्रेजों की हत्या का प्रचार किया। अधिकारी वर्ग का यह कहना था कि इन्हीं सब बातों के कारण युवकों का सिर फिर गया।

सजाएं—अच्छे से अच्छे वकील ने लोकमान्य की पैरवी की, पर उन्हें डेढ़ साल की सजा दे दी गई। नाटू बंधुओं को 1899 तक नजरबंद रखा गया। उनकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। इस प्रकार गण्यमान्य लोगों पर प्रहार करने के फलस्वरूप सरकार

अपना रास्ता आप चुन लीजिए।"

अ य प्रस्ताव—राजद्रोह सबधी कानून के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास हुआ। इसके प्रस्तावक जे० मुदालियर ने कहा कि "आज सरकार मे लोगो की सदिच्छा तथा विश्वास के बदले लोगो म सरकार का अविश्वास ही है। अटक से कटक तक सब लोगो का मन सरकार क तरफ मे कडवा हो गया है।"

इन दिनो सीक्रेट प्रेस कमेटी नाम से अखबारो पर जा सेंसर बैठाया गया था, उसकी भी नि दा की गई। सरकार इन दिनो नगरपालिकाओ के अधिकार घटाने की भी चेष्टा कर रही थी, उसके विरुद्ध भी प्रस्ताव पारित हुए। इ ही दिनो दक्षिण अफ्रीका, नेटाल और ट्रासवाल म भारतीयो के प्रति वहा के गोरो का दुर्व्यवहार हद दर्जे तक पहुच गया था। महात्मा गाधी इसी युग मे इन अत्याचारो के विरुद्ध वहा आदोलन चला रहे थे। सचाई तो यह है कि गाधीजी दक्षिण अफ्रीका मे अपने नए अस्त्रो की धार की परीक्षा कर उ ह और पैना और असरदार बना रहे थे। काग्रेस ने वहा के भारतीयो के साथ हमदर्दी का एक प्रस्ताव भी पास किया।

काग्रेस का पन्द्रहवा अधिवेशन

काग्रेस का प द्रहवा अधिवेशन 1899 मे लखनऊ मे श्री रमेशच द्र दत्त के सभापतित्व म हुआ। अमरावती मे जब काग्रेस का धिवेशन हुआ था, उस समय बरार का चीफ कमीशनर एंटोनी मकडोलन नामक एक गोरा था। यही गोरा इस समय सयुक्त प्रा त का गवनर था। अमरावती मे काग्रेस के होने मे इस कोई आपत्ति नही की थी, पर जब लखनऊ मे काग्रेस होने लगी, तो इसन उसे शहर म होने नही दिया, शहर से आठ मील दूर देहात मे काग्रेस हुई। बशीलाल सिंह स्वागत समिति के प्रधान थे।

सभापति का अभिभाषण—मजे की बात यह थी कि सभापति रमेशच द्र सरकारी बडे अफसर होने के साथ ही बगला भाषा मे ऐसे उप यासो के लेखक थे जो देशभक्ति पूर्ण थे। उ हाने दमन नीति की नि दा करते हुए कहा कि यदि राजद्रोह के नाम पर लोगो को बोलने तथा लिखन से रोका गया, तो उसका नतीजा यह होगा कि राजद्रोह और भी जल्दी फलेगा। रमेशचन्द्र ने इस बात का पर्दाफाश किया कि आबादी की वृद्धि के कारण दश मे दुर्भिक्ष नही होते। उ होने साफ शब्दो मे कहा कि भारतीयो को केवल खेती पर निभर करना पडता है, अत्यधिक टैक्स देने पडते हैं तथा इतने भारी सैनिक खच का बोझा उठाना पडता है कि वे गरीब होते जा रहे हैं।

अधिवेशन मे मुसलमान—इस काग्रेस मे 300 मुसलमान प्रतिनिधि उपस्थित थे। काग्रेस के अधिवेशन मे मुसलमान शरीक न हो इस उद्देश्य से 4 दिसम्बर को लखनऊ म राजा अमीर हुसन खा के सभापतित्व मे एक सभा हुई थी। इस पर भी 300 मुसल मान प्रतिनिधि काग्रेस मे आए, यह ध्यान देने योग्य बात है।

नगरपालिकाओं पर प्रहार—इस बीच कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारो पर जो कुठाराघात हुआ था, उस पर भी एक प्रस्ताव पास हुआ। अब तक कारपोरेशन के जितन सदस्य होते थे, उनमे मे दो तिहाई चुने हुए सदस्य होते थे, पर अब उनकी सख्या घटाकर आधी कर दी गई थी, तिस पर चेयरमैन सरकारी आदमी होता था। इस प्रकार कारपोरेशन मे चुने हुए आदमियो की सख्या कम हो गई थी। बम्बई कारपोरेशन के अधिकारो को घटाने के लिए भी एक विधेयक तयार हो रहा था। इस विषय के प्रस्ताव पर बोलते हुए सुरे द्रनाथ ने लाड कजन के शासन की नि दा की। साथ ही उ होंने यह कहा "अपनी शिकायतो को रफा कराने के लिए दो मे से एक उपाय का अवलम्बन

करना पड़ेगा, एक तो सवैधानिक और दूसरा क्रांति। हम लोगो ने अपना रास्ता चुन लिया है, सरकार अपना रास्ता चुन ले। क्या सरकार हम लोगो की मदद करना चाहती है या क्रांति सुलगाना चाहती है ? सवैधानिकता और क्रांति, इनके बीच कोई मध्यम मार्ग नही है। या तो तुम विधानवाद का पक्ष लोगे या क्रांति की पताका लेकर खड़े होगे।"

सरकार की दमन नीति—सरकार ने इन बातो की कोई परवा नही की और अपनी दमन नीति कायम रखी। सरकार को यह बात भी नापसद थी कि भारतीयो को बाहरी जगत की कोई खबर मिले, इसलिए सरकार ने टेलीग्राफिक मेसेजेज बिल नाम से एक कानून का मसविदा पेश किया, जिसके अनुसार सरकार को यह हक दिया गया कि बाहर से तार द्वारा आए हुए समाचारो पर देख रेख रखे। इस देख रेख का मतलब स्पष्ट था। कांग्रेस ने इस कानून का प्रतिवाद करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। इन्ही दिनो सरकार ने शिक्षा सस्थाओ म काम करने वालो पर भी प्रहार किया। यह प्रहार इस रूप मे हुआ कि सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयो के शिक्षको तथा अधिकारियो को हुक्म दिया गया कि वे शिक्षा विभाग के निदेशक की आज्ञा के बिना किसी भी राजनीति काय मे शरीक नही हो सकते। कांग्रेस न इसके विरुद्ध भी प्रस्ताव पास किया।

कांग्रेस का पहला विधान—लखनऊ अधिवेशन के अवसर पर कांग्रेस का पहला विधान बना। यह यो था—

(1) कांग्रेस का उद्देश्य सविधानवादी तरीको से भारतीय साम्राज्य के लोगों के हिता तथा स्वार्थों की पैरवी करना तथा उन्हे आगे बढाना है। (2) राजनीतिक या अन्य सस्थाओ के द्वारा सार्वजनिक सभाओ के जरिए प्रतिनिधि चुने जाएगे। (3) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के 45 सदस्य होगे। इनमे से 40 प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियो के द्वारा और यदि किसी प्रान्त मे प्रातीय कमेटी न हो, तो उस प्रात के प्रतिनिधि, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यो को चुनेंगे। ये सदस्य एक साल के लिए, एक अधिवेशन से दूसरे अधिवेशन तक के लिए चुने जाएगे। (4) कमेटी की साल मे कम से कम तीन बठकें होगी और कमेटी को यह अधिकार होगा कि वह नियम बनाए। (5) प्रान्तीय कांग्रेस कमेटिया प्रातीय कांग्रेस जिला कमेटियो का निर्माण करेंगी। (6) इगलैंड मे एक ब्रिटिश कांग्रेस कमेटी होगी, जिसमे एक सवेतन मत्री भी होगा। इस कमेटी का खच साल मे 5 हजार रुपया होगा, जो विगत स्वागत समिति और आने वाली स्वागत समिति मे आधा-आधा बट जाएगा।

कांग्रेस का सोलहवा अधिवेशन

कांग्रेस का सोलहवा अधिवेशन 1900 मे नारायण गणेश चदावरकर के सभापतित्व मे लाहौर मे हुआ। जिस समय चदावरकर कांग्रेस के सभापति बनकर आए, कहा जाता है कि उसक ऐन पहले ही उनको बम्बई हाईकोट के जज रूप म अपने नियुक्त होने की बात मालूम हुई। इस कारण उनका भाषण बहुत नरम हुआ। इस कांग्रेस मे भी पहली कांग्रेसो के प्रस्तावो की पुनरावृत्ति हुई। मालूम होता है कि इन दिनो भारतीय उद्योग धधो को बढाने की ओर नेताओ का विशेष ध्यान था। इसलिए लाला लाजपत राय ने इस अधिवेशन मे यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस और बातो के अलावा कम से कम आधा दिन शिक्षा तथा उद्योग धधे की आलोचना पर दिया करे। इस उद्देश्य से दो कमेटियां भी बनी।

काग्रेस का सत्रहवा अधिवेशन

काग्रेस का सत्रहवा अधिवेशन 1901 मे कलकत्ते मे सनिक व्यय आदि अनेक विषयो के विशेषज्ञ दीनशा एदलजी वाचा की अध्यक्षता मे हुआ। इस काग्रेस की सबसे बडी विशेषता आज की दृष्टि से यह है कि इसम महात्मा गाधी, उन दिनो के मिस्टर मोहनदास करमचन्द गाधी, उपस्थित थे। 1894 से ही वह अफ्रीका म भारतीयो के अधिकारो के लिए लड रहे थे और इस क्षेत्र मे उन्होने अपने त्याग, तपस्या और सगठन शक्ति के द्वारा सफलता भी प्राप्त की थी। उस समय कोई नही जानता था कि यही मिस्टर गाधी अपने देश का इतना प्यारा होगा, जितना कि कभी कोई भारतीय नही हुआ कि एक पूरे युग तक देश के सारे कार्यों पर इस नाटे से व्यक्ति की छाप रहेगी और इसी के नेतृत्व मे देश को स्वाधीनता प्राप्त होगी।

इस काग्रेस म भी अन्य अधिवेशनो की तरह प्रस्ताव पारित हुए। मिस्टर स्मेडलि नामक एक निमत्रित व्यक्ति ने काग्रेस म भाषण देते हुए लोगो से कहा "आप लोग तरह-तरह के प्रस्तावो म जो मागें पेश करते हैं, वे बहुत ही मामूली हैं, अधिकारी वग इनकी पूर्ति पर आप लोगो को होमरूल न देकर आपको लक्ष्य से और भी दूर हटा रहे हैं। मैं तो यही कहता हू कि आप लोग भारतवष के होमरूल के लिए हर तरीके से चेष्टा कीजिए, ईश्वर आपकी सहायता करेंगे।" इस प्रकार एक बाहरी आदमी ने भी काग्रेस को यह उपदेश दे ही दिया कि काग्रेस होमरूल के लिए लडे, पर अभी काग्रेसी नेता इससे बहुत दूर थे। अभी उनको बहुत सी ठोकरें खानी थी।

काग्रेस का अठारहवा अधिवेशन

काग्रेस का अठारहवा अधिवशन अहमदाबाद शहर म सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के सभापतित्व म 1902 म हुआ। काग्रेस के साथ साथ एक स्वदेशी प्रदशनी भी हुई। बडौदा के गायकवाड ने इसका उदघाटन किया। इस बीच लाड कर्जन भारतीयो की उच्च शिक्षा मे बाधा पहुचाने के लिए जो कुछ कर रहे थे, उनके विरुद्ध सभापति ने अपने अभिभाषण में बहुत कडे मतव्य व्यक्त किए। इसके अतिरिक्त इस काग्रेस म बोलते हुए सुरेन्द्रनाथ ने एक नई बात कही। वह बोले "अभी तक स्वतन्त्रता का झडा बुलन्द नही हुआ। स्वतन्त्रता की दवी बडी ईर्ष्यापरायण है। वह अपनी भक्त मडली से बराबर यह चाहती है कि दीघकाल तक निरन्तर तपश्चरण किया जाय।' कही इसका अर्थ अधिक गहरा न समझा जाए इसलिए उन्होने यह जोड दिया कि "स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से वधानिक सग्राम चलाने के लिए कितना अटट धय, सहनशक्ति तथा स्वाथत्याग की जरूरत है, यह इतिहास से सीखिए।" इस बार भी सदव की तरह मामूली प्रस्ताव रहे। यह स्पष्ट था कि काग्रेस का नतृत्व कुछ करने म असमथ है। वह अपने तरीको के निकम्मेपन को समझते हुए भी उसी माग पर चलने के लिए बाध्य था।

काग्रेस का उन्नीसवा अधिवेशन

काग्रेस का उन्नीसवा अधिवेशन मद्रास मे 1903 मे श्री लालमोहन घोष के सभापतित्व मे हुआ। उन्होने अपने भाषण मे सरकार के प्रतिक्रियावादी कानूनो की भी तीव्र आलोचना की। उन्होने अपने भाषण वग भग की भी सूचना दी कि इस प्रकार का एक षडयन्त्र चल रहा है। इस काग्रेस म अन्य प्रस्तावो के अतिरिक्त आफिशियल

सीक्रेटस ऐक्ट का विरोध किया गया, जिसके अनुसार सरकार की किसी गुप्त कार्यवाही के सम्बंध मे जानकारी हासिल करना या देना दडनीय हो गया।

कांग्रेस का बीसवा अधिवेशन

कांग्रेस का बीसवा अधिवेशन बम्बई म सर हेनरी काटन के सभापतित्व में 1904 मे हुआ। सर हेनरी काटन इलबट बिल के दिनो मे ही भारतीय पक्ष ले चुके थे। वह 1903 तक आसाम के चीफ कमिश्नर थे। इस पद मे उन्होंने यह सिफारिश की थी कि चाय बागान के कुलियो की तनख्वाह बढाई जाय। पर उनका प्रस्ताव इस कारण स्वीकृत नहीं हुआ कि चाय बागानें के मालिको ने लाड कर्जन को पोट लिया। भारतीयों के प्रति सहानुभूति के कारण ही काटन साहब बगाल के लाट नहीं हो सके। काटन ने अपने अभिभाषण म 'ए फेडरेशन आव फ्री सेपेरेट स्टेट्स, दि यूनाइटेड स्टेटस आफ इण्डिया' का नारा दिया। उन्होने प्रस्तावित बग भग पर बोलते हुए कहा कि यदि इतने बडे प्रान्त को एक लाट सभाल नहीं सकता, तो या तो बम्बई और मद्रास की तरह बगाल का शासन सून कौंसिल सहित गवनर को दे दिया जाय या बगलाभाषियो को अलग करके एक प्रान्त बनाया जाय। स्मरण रहे, उन दिनो के बगाल मे बिहार और उडीसा शामिल था। बग भग जिस तरीके से बाद को किया गया, उसमे बगला भाषियो को दो अलग अलग हिस्सो म बाट दिया गया।

अन्य प्रस्ताव—लार्ड कर्जन तो मानो प्रतिक्रियावाद की मूर्ति होकर यहा आए थे। उन्होने विश्वविद्यालय एक्ट बनाकर विश्वविद्यालयो की स्वतत्रता छीन ली। उन्होंने खुल्लमखुल्ला प्रस्ताव रखा कि शासन विभाग को अच्छी तरह चलाने के लिए गोरो की अधिक नियुक्ति होनी चाहिए। कांग्रेस ने इसका भी विरोध किया। उन दिनो हजार से ऊपर तनख्वाह वाले पदो में चौदह फी सदी भारतीय और 500 के पदो में सत्रह फी सदी भारतीय थ। तिस पर भी कजन का यह प्रस्ताव था। लाड कजन ने साम्राज्य बढाने के लिए तिब्बत म एक ब्रिटिश मिशन भी भेजा था। एक प्रस्ताव मे कांग्रेस ने इसके विरुद्ध टीका की। उस युग के कांग्रेस के नेता इस मिशन के अमली अर्थ को समझते थे, यह इससे प्रमाणित है कि श्री वादिया ने इस प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा कि तिब्बत के किसान अपनी स्वतत्रता के लिए बहुत शक्तिशाली शत्रु के विरुद्ध लड रहे हैं। स्पष्ट है कि हमारे नेता अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ से आखें बन्द किए हुए नही थे। इसी कांग्रेस म यह तय हुआ कि कुछ प्रतिनिधि विलायत जाए। लाला लाजपतराय अमेरिका गए, पर उन्होने यह कहा कि भारतीय समस्या भारतीय ही हल करेंगे।

बग-भग और स्वदेशी

बग भग कार्यरूप मे परिणत—बग भग होने वाला है यह बात बहुत दिनो से लोगो को मालूम थी। 1903 तथा 1904 की कांग्रेस मे इस योजना के विरुद्ध प्रस्ताव भी पास हुए थे। पर लाड कजन ने इसकी कोई परवाह नहीं की। 20 जुलाई 1905 को बग भग के प्रस्ताव पर भारत सचिव का ठप्पा लग गया। हम पहले ही बता चुके हैं कि बग भग स यह मतलब नही कि बगाल जसा कि वह था, उसे दो टुकडा मे बाटा गया। राजशाही, ढाका तथा चटगाव को आसाम कहा गया और बाकी हिस्सा यानी प्रेसीडेंसी कमिश्नरी, बदवान कमिश्नरी बिहार उडीसा और छोटा नागपुर मिलकर बगाल नाम स प्रान्त बना। कहना न होगा कि इस प्रकार का विभाजन बिलकुल मनमाना था। इसमें

कोई आधार ही नही था। इस अवसर पर हिंदू और मुसलमानो का यह कहकर लडाने की चेष्टा भी की गई कि इस विभाजन से मुसलमानो को फायदा है क्योकि पूर्व बंग और आसाम मे उन्ही का बोलबाला रहेगा। पहले ढाका के नवाब तथा अन्य कुछ मुसलमानो ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी, पर बाद को वे इसके पक्ष मे हो गए। इस प्रकार से पूर्व बंग और आसाम का नया प्रांत बना, सर बैमफील्ड फूलर उसके गवर्नर हुए, और कहा जाता है कि उन्होने कई जगह खुल्लमखुल्ला लोगो से कहा कि हिंदू और मुसलमान उनकी दो बीवियां हैं, इनमे से मुसलमान बीवी उनको चाहती है। इस प्रकार की युक्ति भद्दी होने पर भी उसका आशय स्पष्ट था।

रवीन्द्रनाथ का रणघोष—बंग-भंग के कारण बंगाल मे जो जोश फैला, वह अभूतपूर्व था। रवीन्द्रनाथ उन दिनो बंकिम चन्द्र के चलाए हुए 'बंगदर्शन' को चला रहे थे। उन्होने उसमे लिखा—"बाहर की कोई बात हममे फूट पैदा कर हमे परस्पर से अलग कर देगी, इसे हम किसी भी प्रकार नही मान सकते। जब बनावटी विच्छेद हमारे बीच मे खडा होगा, तभी हम सचेतन रूप से यह अनुभव करेंगे कि बंगाल के पूर्व तथा पश्चिम को चिरकाल मे एक ही जाह्नवी ने अपने बाहुओ मे बांध रखा है और एक ही ब्रह्मपुत्र ने उनके प्रसारित आलिंगन को ग्रहण किया है। इसी पूर्व तथा पश्चिम बंगाल ने हृदय के दाहिने तथा बाए हिस्से की तरह बंगाल की शिराओ तथा उपशिराओ मे रक्त को चलाया है, तथा जननी के दाहिने तथा बाए स्तन की तरह हमेशा से बंगाली संतान का पालन किया है। प्रतिकूल परिस्थितियां के द्वारा ही हममे शक्ति का उद्बोधन होगा। आज विधाता की रुद्रमूर्ति मे ही हमारा परित्राण है। जड को चेतन करने के लिए एक-मात्र उपाय है, आघात अपमान तथा अभाव। यह वृत्ति आदर या आराम मे नही, आघात से ही विकसित हो सकती है।"

बाद को महात्मा गांधी ने 'हिंद स्वराज्य' या 'इंडियन होम रूल' मे लिखा (स्मरण रहे कि गांधीवादी चिंतन मे इस पुस्तक का वही महत्त्व है जो मार्क्सवादी विचारधारा मे कम्युनिस्ट घोषणापत्र का है)—"वास्तविक जागृति तो बंग भंग से आई। इसके लिए हम लार्ड कर्जन के प्रति आभारी हैं। बंग भंग के समय बंगालियो ने लार्ड कर्जन से तक किया, पर शक्ति की मस्ती मे उन्होने किसी की नही सुनी। बंगभंग समाप्त होगा, बंगाल फिर एक होगा, पर अंग्रेजो की नाव मे जो छेद हो चुका है, वह रहेगा। राष्ट्र बन रहा है। रातारात राष्ट्र नही बनते, राष्ट्र के निर्माण मे वर्षों लग जाते है।" उन्होने और भी लिखा—'अब तक यह समझा जाता रहा कि शिकायतें दूर कराने के लिए हम राजा के दरबार मे जाए और यदि सुनाई नही हुई तो हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाए। पर बंग भंग से लोग समझ गए कि अर्जी के पीछे शक्ति होनी चाहिए और हम कष्ट झेलें। बंगाल से जोश उत्तर मे पंजाब मे तथा कन्याकुमारी तक पहुंचा।"

जापान द्वारा रूस की पराजय का असर—इस प्रकार बंगालियो ने सरकार की इस व्यवस्था को चुपचाप ग्रहण नही किया, इसके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया, रवीन्द्रनाथ की भाषा मे 'विधाता की रुद्रमूर्ति' का आवाहन किया। इन्ही दिनो जापान ने जारशाही रूस पर जो विजय पाई उसका भी असर पढे लिखे भारतीयो के मन पर बहुत अधिक हुआ। प्रायः कई शताब्दियो से पूर्वीय देश पाश्चात्य देशो के हमलो के सामने पीछे हटते चले जा रहे थे, होते होते लोगो के दिमाग मे यह धारणा बद्धमूल हो गई थी कि गोरे अजेय है। जारशाही पर जापान की यह विजय थी, फिर भी इस घटना ने भारत के राष्ट्रीय विचार के लोगो पर इतना प्रभाव डाला, इसका कारण यह था कि इससे गोरो की अजेयता वाली धारणा खतम हो गई। सारे पूर्वी देशो के उन्नीयमान राष्ट्रीय

आदोलनो पर इसका यही असर पडा। गोरे भी हराए जा सकते हैं, यह धारणा लोगों मे फैल गई और इसने लोगो को बल दिया। पूर्व का लगभग प्रत्येक देश किसी न किसी यूरोपीय शक्ति की साम्राज्यवादी इच्छाओ का शिकार था उनमे इस प्रकार का उभार उठना स्वाभाविक था।

बायकाट का नारा—यत्रतत्र सभाए होने लगी, पर कोई यह नही बता पाता था कि कौन सा तरीका इस्तेमाल किया जाय। जहा तक कहने-सुनने की गुजाइश थी वहा तक तो सभी कुछ किया जा चुका था। कांग्रेस ने ही प्रस्ताव पास किए थे। सर हेनरी काटन जैसे सरकार के विश्वासपात्र लोगो ने भी इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी, पर कुछ नही हुआ था। ऐसे समय मे बगाल मे विदेशी वस्तुओ के बायकाट का नारा आया। बस जनता ने इस नारे को उठा लिया। 'बायकाट' शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार हुई कि कैप्टन चार्ल्स कनिंगहम बायकाट, आयरलैण्ड मे एक जमीदार के एजेंट थे। वह किसानो से अधिक लगान माग रहे थे, इस पर किसानो ने लगान देना तो अस्वीकार कर ही दिया उनसे हर तरीके से असहयोग किया। यहा तक कि उनके नौकर उन्हे छोड गए और उन्हे खाद्य भी नही मिला। इस समय विदेशी द्रव्यो के सम्बन्ध मे यही नारा दिया गया। इस नारे के कारण घोर अन्धकारपूर्ण सुरग मे एक ज्योति सी दिखाई पडी।

कृष्णकुमार मित्र ने नारा दिया—इस नारे को पहल पहल असरदार तरीके से प्रसिद्ध नेता कृष्णकुमार मित्र ने दिया। उन्होने अपनी पत्रिका 'सजीवनी' मे लिखा कि सब लोग यह प्रतिज्ञा करें—"हम लोग मातृभूमि का पवित्र नाम स्मरण कर स्वदेश के कल्याण के लिए यह प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि आगे से यदि देशी माल मिलेगा, तो हम विदेशी माल कभी नही खरीदेंगे, ऐसा करने मे यदि हमे कुछ आर्थिक या अन्य तरह की हानि उठानी पडे, तो भी हम उसे सहर्ष उठाएगे। हम लोग केवल खुद ही नहीं करेंगे, बल्कि अपने मित्रों से भी जहा तक हो सके यही करवाएगे। ईश्वर हमारे इस शुभ कार्य में सहायक हो।'

साहित्यिकों द्वारा नारे का समर्थन—सारे बगाल ने इस वाणी को अपना लिया। कवीन्द्र रवीन्द्र तथा अन्य साहित्यकारो ने अपनी कविताओ तथा लेखो के द्वारा इस वाणी का बहुत जोरो के साथ प्रचार किया। कवि रजनीकान्त का गीत—

मायरे देवा मोटा कापड
मायाए तुले नेरे भाई,
दीन दुखिनी मा जे तोदोर
तार वेशी आर साध्य नाई।
इत्यादि।

यानी मा के दिए हुए मोटे वस्त्र को सिर बिछाकर ले लो।
तुम्हारी मा गरीब और दुखी है, इससे ज्यादा उनके वश का नही है।

उन दिनो बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुप्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय ने भी स्वदेशी का नारा दिया। सारे बगाल की मध्यवित्त श्रेणी के नेताओ ने स्वदेशी के मंत्र को अपनाया।

स्वदेशी के गहरे कारण—इन दिनो बायकाट और स्वदेशी का नारा इतना सफल हुआ इसका कारण केवल यही नहीं था कि इस प्रकार जनता का अपने भावों को कार्यरूप मे अनुवाद करने के लिए एक मौका मिल गया, बल्कि इसके और भी सामाजिक आर्थिक गहरे कारण थे। इस समय तक भारतवर्ष मे कुछ स्वदेशी मिलें खुल चुकी थीं, ब्रिटिश सरकार का इनके प्रति क्या रुख था यह वस्त्र शिल्प पर लगी हुई असुविधा

जनक रोका से ही ज्ञात होता है। इसलिए स्वदेशी मिलो तथा उदीयमान देशी पूजीवाद के अपने पर पर खडे होने के लिए स्वदेशी का नारा बहुत ही उपयोगी था। विलायती चीजो के मुकाबले मे स्वदेशी चीजें मुश्किल से ठहर सकती थी, इसी कारण उन्हे भावना के सहारे की आवश्यकता थी।

स्वदेशी और मुसलमान—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कुछ मुसलमान सरकार के बहकावे मे आ गए पर अन्य बहुत से मुसलमानो ने स्वदेशी का नारा अपनाया। ढाका के नवाब सलीमुल्ला के भाई अकातुल्ला, बरिस्टर अब्दुल रसूल, अब्दुल हलीम गजनवी अब्दुल ग्फूर सिद्दीकी, इस्माइल सिराजी, लियाकत हुसैन आदि विशिष्ट मुसलमान नेताओ ने स्वदशी का नारा अपना लिया। यह कोई आश्चय की बात नही है, क्योकि जो कारण बताए गए वे मुसलमानो पर उतनी हद तक लागू न होने पर भी यानी जिन मिलो का उदघाटन हो रहा था उनमे मुसलमान पूजीपतियो की अल्पसख्या होने पर भी वे सामान्य पूजीवाद के प्रभावो से बरी नही हो सकते थे। स्वदेशी से मुसलमान जुलाहा को लाभ होने वाला था। फिर इस नारे से मुसलमानो मे, सुप्त ही सही, अग्रेज विद्वेष पुष्ट होता था।

स्वदेशी के लिए सगठन—विलायती माल के बायकाट तथा स्वदेशी माल को अपनाने के लिए इस युग मे बहुत सी समितिया बन गइ। ऐसी समितिया मे चितरजन दास (बाद के देशब धु दास) के घर मे स्थापित स्वदेशी मडली, मनोरजन गुह ठाकुरता की वत्ति समिति, सुरेशचन्द्र समाजपति का व दे मातरम् सम्प्रदाय तथा भवानीपुर का सतान सम्प्रदाय कलकत्ता की फील्ड एण्ड एकेडेमी क्लब, और बरीसाल की स्वदेश बाधव समिति, ममनसिंह की सुहृत समिति विशेष उल्लेख योग्य है।

राखी बन्धन और अरधन—सरकार की तरफ से यह घोषणा की गई कि 16 अक्टूबर को बग भग कर दिया जाएगा, और उस दिन से दो प्रात अलग अलग काम करने लगेंगे। गत दो-तीन सालो से बगाली यह आन्दोलन करते आ रहे थे कि बग भग न हो, पर यह होकर ही रहा। बगाल का जनमत इस घोषणा से बहुत ही विक्षब्ध हुआ। रवीन्द्रनाथ बग भग आन्दोलन के बिलकुल सामने की कतार म थे। उन्होने यह वक्तव्य दिया कि, सरकार बगलाभाषियो को अलग कर रही है पर हम दिल स अलग नही हो सकते। इसी के प्रदर्शन के लिए उन्होने 16 अक्टूबर के दिन राखी बाधने का नारा दिया। राखी एकता का सूचक था। रवीन्द्रनाथ ने इधर यह नारा दिया और उन दिनो के बगला साहित्य के महारथी श्री रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी ने यह नारा दिया कि लोग उस दिन अरधन व्रत करें यानी बगाल भर मे उस दिन किसी के घर मे चूल्हा न जले और बच्चा तथा रोगियो के अतिरिक्त कोई खाना न खाए। लोगो को यह प्रस्ताव भी पसन्द आया।

अखड बगभवन का प्रस्ताव—इसी तरह सुरेन्द्रनाथ ने यह प्रस्ताव रखा कि कलकत्ते मे पेरिस के 'होटेल द इनवलिड' के नमूने पर एक भवन बने। जिस समय सुरेन्द्रनाथ पेरिस गए थे, उस समय उन्होने देखा था कि होटेल द इनवैलिड भवन मे फ्रास के प्रत्येक डिपाटमट या जिले की मूर्तिया हैं। उन दिनो अलसास लरेन जर्मनी के अधीन था। इसलिए अलसास लरेन की मूर्ति तो वहा पर थी पर वह ढकी हुई रहती थी, इसी के अनुकरण म सुरेन्द्रनाथ का यह प्रस्ताव था कि कलकत्ते म जो भवन बने, उसमे बगाल के प्रत्येक जिले की एक मूर्ति रहे, और जो जिले बगाल से अलग हैं, उनकी मूर्तिया अलसास लरेन के तरीके पर ढकी हुई रहे। सुरेन्द्रनाथ का यह प्रस्ताव भी लोगो को पसद आया।

बंगाल का नारा—16 अक्टूबर को ये तीनों कार्यक्रम पूरे किए गए। आम हड़ताल रही। लोगों के घरों में चूल्हे नहीं जले, और सारा बंगाल उस दिन भूखा रहा। आशय सारा बंगाल से यहां कुछ मुसलमानों को छोड़कर लिया जा रहा है। उस दिन कई तरह की कार्यवाही एक साथ हुई। एक तो राखी बांधी गई।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने राखी के लिए एक गाना बनाया—

बांगलार माटी, बांगलार जल,
बांगलार वायु बांगलार फल,
पुण्य होऊक पुण्य होऊक, हे भगवान
इत्यादि।

यह द्रष्टव्य है कि अब बंगला के कवियों ने भारतवर्ष को छोड़कर फिर बंगाल का नारा दिया। बंगाल के बंकिम और रमेशचन्द्र दत्त ने अपने उपन्यासों तथा डी० एल० राय ने नाटकों में राजस्थान और महाराष्ट्र के मध्ययुगीन वीरों को लेकर अखिल भारतीय देशभक्ति का पाठ पढ़ाया था। फिर भी अब चक्र पीछे को घूमा। क्यों?

चक्र पीछे क्यों घूमा?—यह स्वाभाविक ही था क्योंकि बंग भंग की आफत बंगाल पर ही आई थी, और दूसरे प्रान्तों के लोगों ने भले ही इसके लिए सहानुभूति दिखाई हो, पर बंगालियों ने उन दिनों जिस भावुकता का अनुभव किया उसे दूसरे प्रान्त वाले उस हद तक समझ नहीं सके, उसमें भाग लेने की बात तो दूर रही।

आन्दोलन बंग भंग से आगे निकल गया—यद्यपि इस आन्दोलन की उत्पत्ति बंग भंग से ही हुई थी, और स्वाभाविक रूप से बंग भंग के रद्द हो जाने से ही इसका अन्त होना चाहिए था, पर यह इतने में ही समाप्त नहीं होने वाला था, यह 16 अक्टूबर को जो गाने गाए उन्हीं से ज्ञात होता था। जाति की सुप्त चेतना एक ठोकर से जागी थी, पर वह उस ठोकर के बहुत आगे जाने वाली थी। इस अवसर के लिए रवीन्द्रनाथ के उल्लिखित गीत के अतिरिक्त एक और भी गीत गाया गया। हम उस गीत का अनुवाद देते हैं—

"बन्धन जितना ही कड़ा होगा, उतना ही वह टूटेगा। हम लोगों का बन्धन उतना ही टूट चलेगा। उनकी आंखें जितनी ही लाल पीली होंगी, हम लोगों की आंखें उतनी ही खुलेंगी, उतनी ही खुलेंगी। आज तुम्हें कर्मक्षेत्र में जुट पड़ना है, स्वप्न देखने का समय नहीं है। इस समय वे जितना ही गर्जन-तर्जन करेंगे, हमारी नींद उतनी ही खुलेगी, हमारी नींद उतनी ही खुलेगी।"

यह स्पष्ट है कि यह आन्दोलन अपने जन्म के पहले ही दिन बंग भंग से कहीं आगे बढ़ चुका था। बंग भंग तो चिनगारी थी जिसने जन-आन्दोलन को एक विराट अग्निकांड में परिणत कर दिया।

प्रतिवाद में सभा—उस दिन कलकत्ते में लोगों ने गंगा स्नान किया तथा राखी बांधी। उस दिन दोपहर के बाद सुरेन्द्रनाथ के प्रस्ताव के अनुसार अखंड बंगभवन की स्थापना के उपलक्ष्य में एक सभा हुई। बूढ़े नेता आनन्दमोहन वसु सख्त बीमार थे। थोड़े दिन बाद वह मर भी गए, पर उस दिन इस सभा का सभापतित्व करने के लिए उन्हें आरामकुर्सी पर बिठाकर ले आया गया। 50 हजार जनता इकट्ठी थी। आनन्दमोहन सभास्थल में तो आ गए, पर वह बोल नहीं सके। सुरेन्द्रनाथ ने आनन्दमोहन का व्याख्यान लोगों को पढ़कर सुनाया। रवीन्द्रनाथ सभास्थल पर केवल उपस्थित ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने इस सभा की कार्यवाही में प्रमुख भाग लिया। उस दिन वन्देमातरम् की ध्वनि से आकाश गूंज रहा था और यहीं से यह नारा स्थाई रूप से राष्ट्रीय नारा हो गया।

उस दिन की घोषणा—उस दिन का सकल्प कहा जाय या उसे घोषणा कहा जाय, उसे बूढे आनन्दमोहन बसु ने अपने हाथ से लिखा था। इसे अग्रेजी मे बाद के जस्टिस सर आशुतोष चौधरी ने और बगला मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पढकर सुनाया। यह घोषणा यो थी—

"चूकि सावजनिक विरोध को न मानकर ब्रिटिश ससद ने बग-भग करना उचित समझा है, इसलिए हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि बग भग के कुपरिणामो को नष्ट करने के लिए तथा बगाल की एकता की रक्षा करने के लिए हम लोगा से जो कुछ भी बन पडेगा वह करेंगे। ईश्वर हमारी सहायता करें।"

चर्खा और करघा प्रचार—सध्या समय एक और सभा हुई। इसमे एक लाख से अधिक जनता इकट्ठी थी। यह सभा विशेषकर इसलिए बुलायी गई थी कि स्वदेशी वस्त्र तैयार करने के लिए एक कोष खोला जाय। इस सभा म पचास हजार रुपये एकत्र हुए। बाद को यह रकम सत्तर हजार हो गई। इस रकम से कानवालिस स्ट्रीट पर एक मकान मे चर्खा और करघा विद्यालय स्थापित हुआ। इस विद्यालय म कई सौ चर्खे थे। बाद को गाधीजी के नेतत्व मे काग्रेस ने चर्खा की जो योजना रखी है, वह यहा पहले से ही मौजूद थी।

देशी उद्योग धधों की उन्नति—चर्खा और करघा सफल न रहने पर भी स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप भारत के उदीयमान पूजीवाद को बहुत सहायता मिली। बग लक्ष्मी मिल, कर्ड बार, साबुन, स्टील ट्रक, जूते के कारखाने, बीमा कम्पनिया आदि बहुत से नए उद्योग धधे खुले।

स्वदेशी और स्त्रिया—स्वदेशी के प्रचार मे बगाल की स्त्रियो ने बहुत अच्छा हाथ बटाया। रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी ने 'बग लक्ष्मी की व्रत कथा' म लडकियो के लिए व्रत की प्रतिज्ञाए लिखी—'माता लक्ष्मी, कृपा करो, काचन देकर काच नही खरीदूगी। घर का मिलेगा तो बाहर का नही पहनूगी। दूसरे के द्वार पर भीख नही मागूगी। मोटा वस्त्र पहनूगी, सादा गहना पहनूगी, सादी पोशाक होगी। पडोसी को खिलाकर खाऊगी। मोटा अन्न अक्षय हो, मोटा वस्त्र अक्षय हो, घर की लक्ष्मी घर पर रहे, बाहर न जाए।'

सचमुच स्त्रियो ने ही स्वदशी को सफल किया। कवियो ने बहुत से गाने केवल स्त्रियो को ही सम्बोधित करके गाए।

4

आन्दोलन युग का आरम्भ वग-भग और अनन्तर

काग्रेस का इक्कीसवा अधिवेशन

काग्रेस का इक्कीसवा अधिवेशन बनारस मे 1905 म श्री गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता मे हुआ। सभापति ने अपने अभिभाषण मे स्वाभाविक रूप से वग भग का उल्लेख किया और कहा, 'वग भग क फलस्वरूप बगाल मे जो विराट जागति हुई है, उसका हमार राष्ट्रीय इतिहास मे बहुत बडा स्थान है। ब्रिटिश शासन म यह पहला ही मौका है जब धर्म और जात पात भूल कर बाहर से किसी की सहायता की परवाह न कर बगाली अपनी स्वाभाविक वृत्ति से आगे बढ रहे हैं।"

श्री गोखले ने अपने अभिभाषण से स्वदेशी के नारे का तो समथन किया, पर बायकाट के नारे के सम्बध मे कहा कि इस शब्द के साथ द्वेष तथा हिंसा की भावना रहने के कारण यह ठीक नही है।

श्री गोखले ने इस प्रकार मतव्य देने के बाद भी यह कहा कि बगाल की हालत इतनी खराब हो गई है कि उसमे बायकाट भी सही मालूम होता है।

बग भग का प्रस्ताव—सभापति के अभिभाषण क अतिरिक्त बग भग पर एक प्रस्ताव भी रखा गया। श्री सुरेन्द्रनाथ ने यह प्रस्ताव रखा। उन्हाने अपने भाषण मे बगाल मे जो जो अत्याचार हो रहे थे, उनका उल्लेख किया। सभा, जुलूस, भजन पार्टियों पर रोक, वदेमातरम गाने के लिए मारपीट, बच्चो को सजाए, गुरखो का अत्याचार आदि विषयो का उल्लेख किया। बग भग के कारण बगाल क छात्र-समाज मे बहुत जोरो का आदोलन हुआ।

बहुत स छात्रो को स्कूल से निकाल दिया गया था, कुछ लोगो को बेंत मारे गए थे। गश्ती चिट्ठियो स घबडाने की बजाय कलकत्ते के छात्र समाज ने 'गश्ती चिट्ठी विरोधी सभा' नाम से अपना सगठन कायम किया। इस सभा की तरफ स बडे बाजार की विलायती कपडे की दूकानो पर पिकेटिंग भी हुई। निष्कासित छात्रो को लेकर 9 नवम्बर 1905 को कलकत्ते मे एक सभा हुई, जिसमे राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित करने क लिए सुबोधचद्र ने एक लाख रुपया दान दिया। इसी प्रकार कई और जमीदारो ने बाद मे और भी दान दिए। छात्र-समाज नही दबा था।

पडित मदनमोहन मालवीय ने एक प्रस्ताव म बायकाट का समथन करते हुए बहुत ओजस्वी भाषण दिया। उन्हाने कहा कि ब्रिटिश जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए भारतीयो के हाथ मे एक यही तरीका है। लाला लाजपतराय ने भी स्वदेशी का समथन करते हुए कहा कि देश की गरीबी को दूर करने के लिए यही एक उपाय है।

विलायत में चुनाव—वग भग के अलावा काग्रेस में पहले की तरह बहुत से प्रस्ताव हुए। इस बीच विलायत मे चुनाव हुआ था और उसमे उदार नैतिक दल की जीत

हुई थी। इससे भारतीयो को बडी आशाए थी। जान मार्ले के भारत सचिव हो जाने से इस प्रकार की आशाए और भी पुष्ट हुई थी। मार्ले बग भग के पक्षपाती नही थे, तो भी उन्होने कहा कि वह बात तो हो चुकी है। इससे और भी जोश फला, और लोगो ने स्वदेशी व्रत को दृढता के साथ अपनाया।

बरीसाल सम्मेलन— 1888 मे बगाल मे एक प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ करता था। यह तय हुआ कि 1906 के 14 और 15 अप्रैल का इस सम्मेलन का अधिवेशन बरीसाल म हो। इस कान्फ्रेंस के सभापति बरिस्टर अब्दुल रसूल चुने गए। बरीसाल की उन दिना हालत यह थी कि वहा वन्देमातरम का नारा भी गैरकानूनी था। बरीसाल के बहुत से युवक इस हुक्म को न मानकर जेल जा चुके थे, तथा उन पर मार पड चुकी थी। सरकार को खतरा था कि इस कान्फ्रेंस के अवसर पर वन्देमातरम का नारा अवश्य दिया जाएगा। तदनुसार स्वागत समिति से यह वादा करा लिया गया कि जब प्रतिनिधि बरीसाल पहुचें, तो उनके स्वागत मे वन्देमातरम का नारा न दिया जाय। ऐसा ही हुआ, पर गश्ती चिटठी विरोधी सभा के सदस्य इस शत पर इतने नाराज हुए कि उन्होने स्वागत समिति से सम्बन्ध रखना उचित नही समझा और अलग जाकर ठहर गए। अन्त मे दोनो दला म समझौता हुआ कि कान्फ्रेंस के पहले दिन प्रतिनिधि मिलकर वन्देमातरम् का नारा देंगे और राजा बहादुर की हवेली नामक इमारत म जुलूस बना कर सभा स्थल पर जाएगे।

जुलूस पर लाठिया – जुलूस मे आगे आगे सभापति अब्दुल रसूल तथा उनकी मम पत्नी की गाडी थी। इसके पीछे पीछे नेता पैदल चले। सबसे पीछे गश्ती चिट्ठी विरोधी सभा के सदस्य थे, जो वन्देमातरम का नारा तो नही दे रहे थे, पर वन्देमातरम का बज पहने हुए थे। ज्यो ही गश्ती चिटठी विरोधी सभा के लोग हवेली से निकले, त्यो ही पुलिस ने उन पर लाठियो से हमला कर दिया। अब क्या था, लोग चिल्ला चिल्लाकर वन्देमातरम कहने लगे। ऊपर से लाठिया पडने लगी। बगल मे ही तालाब था, एक तो उसी मे गिर पडा।

सुरेन्द्रनाथ पर जुर्माना— सरकार ने सुरेन्द्रनाथ को 188 दफा के अन्तगत गिरफ्तार कर लिया और 200 रुपया जुर्माना कर दिया। सुरेन्द्रनाथ ने अदालत मे एक कुर्सी पर बठने की चेष्टा की, इस पर अदालत की अमर्यादा करने के अपराध मे उन पर और 200 रुपये जुर्माना हुए। वह जुर्माना देकर चले आए।

अत्याचार की निन्दा—सम्मेलन मे पहला आलोच्य विषय पुलिस का अत्याचार था। जो सज्जन तालाब मे डूबते डूबते बचे थे, उन्होने खडे होकर पुलिस के अत्याचार की कहानी बताई। कई प्रस्तावो मे यही जिक्र रहा। सभापति महोदय ने यह साफ कर दिया कि धम अलग-अलग होने पर भी राजनीतिक आन्दालन मे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब एक हैं। यह द्रष्टव्य है कि सरकार ने सभापति को नही पकडा और सुरेन्द्रनाथ को पकडा, जो उनकी गाडी के पीछे पैदल चल रहे थे। ऐसा करने से सरकार का उद्देश्य स्पष्टत यह था कि एक मुसलमान को गिरफ्तार कर साधारण मुसलमान को तैश न दिलाया जाय। यह नीति बराबर चली।

पुलिस द्वारा सभा भग— अगले दिन जब नेता सम्मेलन की कारवाई के लिए पधारे, तो पुलिस सुपरिन्टेंडेंट सभा स्थल मे आया और मिस्टर रसूल से यह कहा कि या तो वह वादा करें कि सभा मे वन्देमातरम का नारा नही दिया जाएगा, नही तो सभा भग करें। नेता इस प्रकार की अपमानजनक शत को मानने के लिए तैयार नही हुए परिणाम यह हुआ कि सम्मेलन की कारवाई नही हुई और सभा भग कर दी गई।

बगाल मे शिवाजी उत्सव— इस साल बगाल मे बड़ी धूमधाम के साथ शिवाजी उत्सव भी मनाया गया। इस उत्सव के प्रवर्तक लोकमान्य तिलक खापर्डे तथा मुजे को लेकर इस मौके पर बगाल पधारे। उत्सव के साथ साथ एक स्वदेशी मेला भी लगा। जिस समय लोकमान्य तिलक बगाल आए, तो बगालियो ने उनका खूब स्वागत किया, 10 जून को 30 हजार जनता ने लोकमान्य तिलक को लेकर जुलूस निकाला और जाकर गगा स्नान किया। इस मौके पर भवानी पूजा भी हुई। इस प्रकार इस उत्सव म शिवाजी, गगा स्नान भवानी पूजा आदि एसी कई बातें जुड गइ। इन्ही दिनो प्रतापादित्य और सीताराम राय आदि मुगल विरोधी वीरो का उत्सव मनाया गया और उन पर पुस्तक लिखी गइ। श्रीमती सरलादवी ने वीरपूजा का नारा दिया। अखाडे तथा छुरा आदि खेलने का भी प्रारम्भ हुआ। स्पष्ट था कि यह आन्दोलन अब धीरे धीरे उग्रतर होता जा रहा था।

'व देमातरम' और अरविन्द – इन्ही दिनो 'वन्दमातरम्' तथा 'युगान्तर' पत्र प्रकाशित हुए। वन्देमातरम्' पत्र का मोटो 'भारतीयो के लिए भारत' था। इसके सम्पादक मण्डल म विपिनचन्द्र पाल भी थे। बाद को श्री अरविन्द घोष इस पत्र के नियमित लेखक हुए। उन्होने 'वन्देमातरम मे न्यू स्पिरिट' या 'नया मार्ग' शीर्षक से एक लेखमाला लिखी, जिसका जनता पर बहुत भारी असर पडा। इसके कोई 11 साल पहले ही उन्होने 'इन्दुप्रकाश' नामक बम्बई के पत्र मे काग्रेस की उन दिनो की नीति की निन्दा करते हुए एक लेख लिखा था और बताया था कि भिक्षापात्र स कुछ होना जाना नही है।

युगान्तर — 'युगान्तर' पत्र बहुत अधिक चला। इसके सपादक स्वामी विवेकानद के छोटे भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त थ। अन्य लेखको म अरविन्द घोष, उपेन्द्र व दोपाध्याय आदि थ। उन दिनो आजकल की तरह पत्रो की ग्राहक सख्या हजारो नहीं होती थी, फिर भी इस पत्र की ग्राहक सख्या 7 हजार थी, और एक एक पत्र को कितने लोग पढा करते थे। पत्र म पूर्ण स्वतत्रता का प्रचार किया जाता था और कहा जाता था कि क्रातिकारी तरीका से ही देश स्वतत्र हो सकता है। 'युगान्तर' जनता में इतना प्रिय हो गया था कि छपत ही उसकी कापिया लुट जाती थी। पत्रकारिता के इतिहास मे 'युगान्तर' का अमर दान है। रवीन्द्रनाथ भी भडार नामक एक पत्र मे स्वदेशी पर जोर द रहे थे।

राष्ट्रीय शिक्षा परिषद –स्वदेशी आन्दोलन के सिलसिले मे अनिवाय रूप से राष्ट्रीय शिक्षा की बात भी उठी। विशेषकर यह प्रश्न नेताओ के सामने इस कारण आया कि वन्देमातरम् तथा स्वदेशी आन्दोलन मे भाग लेने के कारण बहुत से छात्र अपने विद्यालयो से निकाल दिए गए। कई तो रस्टीकेट कर दिए गए यानी उनके लिए किसी भी स्वीकृत शिक्षा सस्था मे भर्ती होने की मुमानियत हो गई। लोगो को आवश्यकता प्रतीत हुई कि एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना हो। कवीन्द्र रवीन्द्र, गुरुदास वन्दोपाध्याय, हीरेन्द्रनाथ दत्त आदि ने इसका बीडा उठाया। इन्ही लोगो ने भीतर भीतर इसके लिए आन्दोलन किया, और जब आन्दोलन कुछ परिपक्व हो गया, तो कलकत्ता के टाउन हाल म एक सभा बुलाई। डाक्टर रासबिहारी घोष इसके सभापति हुए। इसी सभा म नेशनल कौसिल आफ एज्यूकेशन या राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना हुई। श्री सतीशचन्द मुखोपाध्याय परिषद के अध्यक्ष बनाए गए। 'डान' नामक पत्र के सपादक तथा डान सोसाइटी के सपादक के रूप मे सतीश बाबू पहले ही प्रसिद्ध हो चुके थे।

छात्र समाज पर फुलर का प्रहार असफल– छात्रो पर सरकार का कोप विशेष

रूप से इस कारण हुआ कि उन्ही के कारण आन्दोलन दिन दूना रात चौगुना बढ रहा था। पहले ही बताया जा चुका है कि बगाली छात्रो को आन्दोलन से अलग कर देने के लिए तरह-तरह की गश्ती चिटिठया निकाली गई थी, पर इससे कुछ काम नही हुआ।

उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिकारी वग से यह कहा कि विक्टोरिया स्कूल को स्वीकृत विद्यालय की सूची से निकाल दो। विश्वविद्यालय के अधिकारी फुलर की इस बात पर राजी नही हुए। लाड मिन्टो उन दिनो भारत के वायसराय होने के अतिरिक्त कलकत्ता विश्वविद्यालय के चासलर भी थे। यह मामला उनके निकट फैसले के लिए गया, तो विश्वविद्यालय की ओर से सर आशुतोष ने बडे लाट से मिलकर यह समझा दिया कि विश्वविद्यालय को ऐसे मामले मे नही पडना चाहिए। यह बात लाड मिन्टो की समझ मे आ गई, और उन्होने लाट फुलर को लिख भेजा कि इस मामले का जाने दो। फुलर ने लाड मिन्टो को लिख भेजा कि यदि उसकी माग मानी नही गई, तो वह इस्तीफा द देगा। अब लाड मिन्टो क्या करते, उन्होने मामल की रिपोट भारत सचिव मार्ले को लिख भेजी। मार्ले ने भी बडे लाट का पक्ष लिया। इस कारण फुलर को इस्तीफा देना पडा। इस प्रकार फुलर से बगाल का पिण्ड छूटा।

विषवृक्ष—देश की बिगडती हालत को देखकर ब्रिटिश सरकार स यह प्रस्ताव किया गया था कि भारतीयो को शासन सुधार की एक किश्त दी जाए। इस सिलसिले मे 1906 क अक्तूबर को आगा खा तथा कुछ अन्य मुसलमान वायसराय से मिले, और उनसे कहा कि भविष्य के शासन सुधारो मे मुसलमानो को अलग प्रतिनिधित्व दिया जाए, साथ ही वास्तविक आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाए। लाड मिन्टो ने इनकी बातो को ध्यान स सुना और कहा कि मैं आप लोगो की माकूल मागो को मानूगा। बाद को जो मार्ले मिन्टो सुधार दिए गए, उसमे सचमुच आगा खा की य मागें मान ली गइ। यही से उस विषवक्ष का सूत्रपात होता है, जिसने बाद मे बहुत ही विषमय फल दिए।

मुस्लिम लीग स्थापित—9 नवम्बर 1906 के दिन नवाब सलीमुल्ला खा ने प्रतिष्ठित उच्च श्रेणी के लोगो की सलाह से एक गश्ती चिट्ठी भेजी, जिसमे भारत के मुसलमानो की एक राजनीतिक सस्था सगठित करने की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। इसी उद्देश्य को सामने रखकर अखिल भारतीय मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ्रेंस की सालाना बठक बुलाने के लिए कहा गया। तदनुसार 30 दिसम्बर 1906 को ढाके मे प्रमुख मुसलमानो की एक सभा हुई, और यही नवाब बकारुलमुल्क के सभापतित्व मे अखिल भारतीय मुस्लिम लीग कायम की गई।

लीग के उद्देश्य लीग जिन उद्देश्यो को लेकर स्थापित हुई, वे इस प्रकार थे—

(1) भारतीय मुसलमानो के दिल मे ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादाराना खयालात उत्पन्न करना, और सरकार की कार्रवाइया के बारे मे उत्पन्न गलतफहमियो को रफा करना। (2) मुसलमानो के राजनीतिक हको तथा हितो पर निगरानी रखना, और उनकी आवश्यकताओ तथा इच्छाओ को नम्रता के साथ सरकार के सामने पेश करना। (3) लीग के दूसरे उद्देश्यो को नुकसान पहुचाए बिना भारत के मुसलमानो मे दूसरी जातियो के प्रति सद्भाव रखना।

लीग और कांग्रेस—*इस प्रकार लीग सरकार के प्रति करीब करीब उसी राज-*भक्तिपूर्ण रुख को लेकर चली, जिसे अपनाकर काग्रेस का जन्म हुआ था, पर एक भारी फर्क यह था कि लीग इक्कीस साल बाद उस उद्देश्य को लेकर चली, और दूसरा यह कि लीग एक साम्प्रदायिक सस्था बनकर जन्मी, और उसी रूप म आगे बढी जबकि

काग्रेस जिन मागो को भी रखती थी, उन्हे सारे भारतीयो की दष्टि से रखती थी। द
दृष्टि म दखा पर भी लीग के नेता सामन्तवादी श्रेणी के थे, जबकि काग्रेस नवोत्त
पूजीपति वग तथा पढे लिखे मध्यवित्त लोगो की तरफ से बोलती थी।

बग भग और लीग—लीग का राजनतिक रुख इससे स्पष्ट हो जाएगा कि
प्रस्ताव मे बग भग को मुसलमानो के हक मे अच्छा बताया गया और यह कहा गया
जो लोग इसके विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं, वे मुसलमानो को नुकसान पहुचा रहे है
भारतवर्ष म एक तरह से जन आन्दोलन का सूत्रपात ही बग भग आन्दोलन से होता
इसके उद्देश्य म निश्चित रूप से कोई ऐसी बात नही थी जो मुसलमानो के विरुद्ध थी, अ
लीग ने अपने जीवन का सूत्रपात ही इस आन्दोलन के विरोध से किया। लीग का बरा
यही रवया रहा। इसके बाद को 1908 म प्रस्ताव पास किया कि काग्रेस का बग भ
विरोधी प्रस्ताव स्वीकृत होने योग्य नही।

क्रान्तिकारी षड्यत्र का प्रारभ—1903 म ही बारीन्द्रकुमार घोष ने निमाण
इटली के ढग पर गुप्त समितिया कायम करने की बात और पर बगाल का दौरा क
उन्होने देखा कि अभी परिस्थिति परिपक्व नही हुई है। 1904 म जब बग भग के म
म बगाली बहुत क्षुब्ध हो चके थे उस समय बारीन्द्र ने बगाल का फिर दौरा किया
ज्ञात हुआ कि जमीन पहले म अधिक तयार हो चुकी है। उन्होने इस बार अखाडो
स्थापना मे भाग लिया, साथ ही यह चेष्टा की कि इन अखाडो म लोग राजनीति क
आलोचना करे। इस प्रकार धीरे धीरे अस्त्र शस्त्र भी एकत्र होने लगे और गुप्त स
बन गई। बारीन्द्र ने जिस सगठन का निर्माण किया, वह जब बाद को जाकर पकडा
तो अलीपुर षडयत्र के नाम से मशहूर हुआ। हम यथासमय इसका उल्लेख करेंगे।

काग्रेस का बाईसवा अधिवेशन

काग्रेस का बाईसवा अधिवेशन कलकत्ता म 1906 मे होने वाला था पर ग
और नरम दल मे भीतर ही भीतर सघष चल रहा था। कौन काग्रेस का सभापति
इसे लेकर नरम और गरम दल म मनमुटाव था। गरम दल के नेता लोकमान्य ति
थे। उग्र दल चाहता था कि लोकमान्य तिलक सभापति हो, पर नरम दल इस बात
बचना चाहता था। इन दिनो नरम दल के नेता सुरेन्द्र बनर्जी, गोखले, भूपेन्द्र बसु अ
थे। सच तो यह है कि काग्रेस के सभी पुराने नेता अब नरम दल म थे। नरम दल व
ने देखा कि विवाद अनिवाय है और सख्या म अधिक होने पर भी काग्रेस मे नरम दल
मदद ही रहेगी। इसलिए उन्होने यह चाल चलनी चाही कि 82 साल के वद्ध
दादाभाई नौरोजी को सभापति बनाया जाए तो गरम दलवालो का मह बन्द हो जाएगा,
और यदि वे इस पर भी चुप नही हुए तो उलटे उन्ही की मदद होगी। तदनुसार दादाभाई
सभापति चुने गए। उन दिनो नियम यह था कि स्वागत समिति सभापति चुनती थी और
वह कलकत्ते की थी, जहा उन दिनो नरम भी बहुत कुछ नरम हो रहे थे। इसलिए यदि
चुनाव होता, तो लोकमान्य तिलक ही चुने जाते। पर इस चाल के कारण गरम दलवाले
चुप रह गए।

स्वराज्य के लिए निरुपद्रव आन्दोलन पर जोर—इस काग्रेस के समय बडा जोश
था। बीस हजार जनता अधिवेशन देखने आई, और सोलह सौ से अधिक प्रतिनिधि
बाद को काग्रेस मे गाधीजी ने अहिंसा तथा शान्ति का जो नारा दिया, वह भी काग्रेस के
अन्दर विकास की प्रतिक्रिया के आधार पर उद्भूत हुआ, यह इससे ज्ञात होगा कि अधि
वेशन के सभापति पद से बोलते हुए प्रपितामह दादाभाई ने कहा "आन्दोलन करो,

निरन्तर आन्दोलन करो। लोकतान्त्रिक ब्रिटिश जाति आन्दोलन के सामने जितना सिर झुकाती है, उतना किसी बात के सामने नहीं। पर आन्दोलन सब प्रकार के उपद्रवों से वर्जित हो और लोकतान्त्रिक हो।" दादाभाई ने अपने अभिभाषण में पहले पहल 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया और उसकी व्याख्या करते हुए कहा कि इससे औपनिवेशिक स्वराज्य ही अभीष्ट है।

कांग्रेस के प्रस्ताव—इस कांग्रेस के प्रस्तावों में स्वदेशी युग की पूरी छाप थी, यद्यपि उनकी अन्तर्वस्तु पहले के अधिवेशनों के प्रस्तावों से बहुत भिन्न नहीं थी। स्वराज्य अर्थात् औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग करते हुए यह कहा गया कि इसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए पहले कदम के रूप में फौरन आई० सी० एस० आदि की परीक्षा भारत तथा इंगलैंड दोनों स्थानों पर हो, कौंसिलों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़े, स्थानीय स्वायत्त शासन को विस्तृत किया जाए, इत्यादि। एक प्रस्ताव में स्वदेशी को मंजूर किया गया, दूसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता बतलाई गई। बायकाट के समर्थन में भी एक प्रस्ताव पारित हुआ।

कांग्रेस के विधान में परिवर्तन—इस अधिवेशन में कांग्रेस के विधान में भी कुछ परिवर्तन हुए। अब तक स्वागत समिति बहुमत से सभापति का चुनाव करती थी, पर अब यह नियम हो गया कि सभापति का चुनाव तीन चौथाई वोटों से होना चाहिए। यदि सभापति का चुनाव इस प्रकार न हो सके, तो अखिल भारतीय स्टैंडिंग कमेटी सभापति का चुनाव करेगी। इस विधान में ही हम भविष्य की आंधी की सूचना पा सकते हैं। किसी भी संस्था के विधान में जब परिवर्तन होता है, तो वह किसी कारण से होता है, इस बार क्या कारण था यह स्पष्ट है। नरम दल वाले कांग्रेस को विधान से इस प्रकार बांध रहे थे कि वह उनके हाथ से निकल न जाए।

गरम दल अर्द्ध-रहस्यवादी तथा श्रद्धा धार्मिक- कांग्रेस में इस प्रकार गरम दल तथा नरम दल दो भाग हो जाने से ब्रिटिश सरकार को बड़ा फायदा पहुंचा। उसके लिए अब यह आसान हो गया कि उग्र विचार वालों को दबाए तथा उनका दमन करे। यह न समझा जाए कि उन दिनों के उग्र विचार वाले सब वर्गहीन समाज के ही उपासक थे। उनमें से अधिकांश तो यह जानते ही नहीं थे कि वे क्या चाहते हैं वे श्रद्धा धार्मिक अर्द्ध रहस्यवादी शब्दावली का प्रयोग करते थे, और वस्तुवाद से दूर थे।

अरविन्द इन दिनों के प्रधान गरम नेताओं में से थे। वह राजनीतिक विषयों को ऐसे धार्मिक शब्दों में कहते थे कि उनका मतलब ही नहीं निकलता था। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना तथा देशभक्ति को ईश्वर से उद्भूत एक धर्म करार दिया। वह बोले "राष्ट्रीयता को कोई रोक नहीं सकता क्योंकि ईश्वर ने ही इसे नियन्त्रित किया है। केवल राष्ट्रीय कार्य कर, राष्ट्रीय शिक्षा प्रवर्तित कर या बायकाट का कार्यक्रम अपना कर इस देश का उद्धार संभव नहीं है। स्वदेशी से कुछ आर्थिक लाभ हो सकता है, पर इसकी तड़क भड़क में भूलकर और इसको अपनाने में असली उद्देश्य के नष्ट हो जाने की संभावना बहुत अधिक है। दृश्यमान शक्तियों से स्वदेश की शक्तियां दूसरी तरह की हैं। देशमाता की शक्ति अपनी है। इसकी पुष्टि के लिए न तुम्हारी जरूरत है, न मेरी, दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है।"

विपिनचन्द्र के विचार—अरविन्द की तुलना में विपिनचन्द्र पाल और तिलक के पर जमीन पर अधिक थे। विपिनचन्द्र ने कहा, "कोई किसी को स्वराज्य नहीं दे सकता। यदि आज अंग्रेज मुझसे कहें कि स्वराज्य ले लो, तो मैं उसे ठुकरा दूंगा, क्योंकि जिस चीज को मैं स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता, उसको मैं लेने का अधिकारी भी नहीं हूं। हम

अपनी सारी शक्ति को इस तरह से लगाएंगे, जिससे विरोधी शक्ति को अपने मन पर न सकें। विलायती माल के बायकाट से लेकर सविनय अवज्ञा (Passive Resistance) तक हमारे अस्त्र हैं। हम रचनात्मक काम भी करेंगे। हम देश भर में सरकारी शासन व्यवस्था की तरह व्यवस्था भी सारे देश में प्रतिष्ठित करेंगे।"

यह द्रष्टव्य है कि विपिन बाबू के व्याख्यान में सविनय अवज्ञा तथा समानान्तर सरकार सम्बन्धी विचार भी मौजूद हैं।

तिलक के विचार—इस विषय में सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक के विचार और भी स्पष्ट थे। वह लोकतन्त्र चाहते थे पर हो सके तो ब्रिटिश शासन के अन्दर ही रहना उनका ध्येय था। बाद को लोकमान्य के विचार उग्रतर हुए, पर यहां तो उस समय का जिक्र हो रहा है। नरम दलवालों के विचारों के सम्बन्ध में हम पहले ही बता चुके हैं। गरम नेताओं के विचार अस्पष्ट और शब्दजाल समन्वित होने पर भी, उनमें और नरम नेताओं के विचारों में बहुत फर्क था।

पंजाब में दमन—नरम और गरम दलवालों के इस विरोध से सरकार ने फायदा उठाया। और उग्र विचार के पत्रों का दमन तथा नेताओं की गिरफ्तारी शुरू की। पंजाब के 'इंडियन तथा पंजाबी नामक पत्रों के सम्पादक और प्रकाशक जेल भेज दिए गए। लाला लाजपतराय पंजाब के सर्वप्रधान नेता थे। उन दिनों सरकार ने लगान बढ़ाया था। लालाजी इसके विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे, बस वह 9 मई 1907 को 1818 के रेगुलेशन 3 में नजरबन्द कर माण्डले भेज दिए गए।

बंगाल में दमनचक्र – बंगला 'युगान्तर' के संपादक भूपेन्द्रनाथ दत्त तथा उनके मुद्रक पकड़े गए। मिस्टर किंग्सफोर्ड की अदालत में मुकदमा था। उन्होंने 20 जुलाई को दत्त को एक साल की तथा मुद्रक को दो साल की सजा दी। संपादक को कम तथा मुद्रक को अधिक सजा देने में सरकार का उद्देश्य यह था कि मुद्रक भड़क जाएं तो अखबार छपना मुश्किल हो जाएगा। इस प्रकार भूपेन्द्रनाथ दत्त को सजा देने पर लोग दबने के बजाय और भी उभड़े। कलकत्ते की स्त्रियों ने भूपेन्द्र की माता को एक विराट सभा में अभिनन्दित किया।

'वन्देमातरम' और 'सन्ध्या' पर प्रहार – युगान्तर के अतिरिक्त 'वन्देमातरम' और ब्रह्मबान्धव उपाध्याय के 'सन्ध्या' पत्र पर भी प्रहार हुआ। 'सन्ध्या' बहुत दिनों से उग्र राष्ट्रीय विचारों का प्रचार कर रहा था। दोनों पत्रों के सम्पादक, अरविन्द तथा ब्रह्मबान्धव उपाध्याय पकड़े गए।

विपिनचन्द्र पाल को सजा और छात्र प्रदर्शन —अरविन्द पर मुकदमा चलाया गया। इस प्रकार बिना कारण देश के एक महान नेता पर मुकद्दमा चलाने के लिए जनता में बड़ा क्षोभ फैला। विशेषकर छात्रों ने मुकदमे के फैसले के दिन अदालत के सामने प्रदर्शन किया। इस पर छात्रों और पुलिसवालों में कुछ झगड़ा हो गया। सुशील सेन नामक छात्र इसी सम्बन्ध में पकड़ा गया। मिस्टर किंग्सफोर्ड ने उसे बेंत की सजा दी। विपिनचन्द्र पाल को छह महीने की सजा दी गई।

अरविन्द रिहा, ब्रह्मबान्धव जेल में मरे – विपिनचन्द्र पाल को तो अरविन्द के मुकदमे में गवाही न देने पर छह महीने की सजा दी गई, पर अरविन्द मुकदमे में 23 सितम्बर को छूट गए। ब्रह्मबान्धव उपाध्याय ने अदालत के सामने यह कह दिया था कि मैं ईश्वर के आदेश पर जिस स्वराज्य आन्दोलन को चला रहा हूं उसके लिए मैं सरकार के सामने सफाई देने के लिए तैयार नहीं हूं। उन्होंने यह भी कहा कि मैं संन्यासी हूं इस कारण कोई भी सरकार मुझे कैद नहीं कर सकती। हुआ भी यही वह हवालात में रहते

समय ही मर गए। ब्रह्मबान्धव उपाध्याय ने अदालत से असहयोग किया था। ब्रह्मबान्धव की शहादत उसी परम्परा मे है जिसमे 1857 के युग मे 'पयामे आजादी' के सपादक बेदार बख्त को सुअर की चर्बी मलकर फासी पर चढाया गया था।

सिडीशस मीटिंग्स ऐक्ट—इन अत्याचारो से देश मे आदोलन बढा, घटा नही। सैकडो स्थानो पर सभाए होने लगी, और सरकार की निन्दा की जाने लगी। इन सभाओ म विशेष कर मिस्टर किंग्सफोड की निन्दा की जाती थी क्योकि सभी राजनीतिक मुकदमे उन्ही की अदालत मे हुए थे। सरकार ने जब देखा कि सभाओ का रोग बढता जा रहा है (तानाशाही सरकार के लिए यह रोग ही था), तो 1 नवम्बर 1907 को 'सिडशस मीटिंग्स ऐक्ट' (राजद्रोही सभा कानून) नाम से एक कानून बना दिया गया।

कहना न होगा कि यह कानून नही, इसके द्वारा कानन का गला घोटा गया था। पर यह कोई नई बात नही थी। इससे पहले ही भारत सरकार ने एक आर्डीनेन्स निकाल कर पूव बगाल तथा पजाब की सभाओ पर रोक लगा दी थी, अब इसी को विस्तत करके यह नया कानून बना, जिसके अनुसार सारे भारत मे सभाओ पर रोक लगा दी गई। इस प्रकार गुप्त समितियो के अलावा कोई माग नही रहा।

नागपुर से सूरत—जो आधी 1906 म प्रपितामह दादाभाई नौरोजी को सभापति बनाकर किसी तरह रोक दी गई थी, 1907 मे वह अधिक वेग के साथ दृष्टिगोचर हुई और फिर प्रश्न यानी सभापति के चुनाव के इद गिर्द यह झगडा शुरू हुआ। अब की बार भी गरम लोग लोकमान्य को सभापति बनाना चाहते थे, पर नरम दल के नेता इसके विरुद्ध थे। पहले अधिवेशन नागपुर मे होने वाला था, यहा लोकमान्य को वोट मिल जाते, इस कारण नागपुर मे अधिवेशन स्थल बदल कर सूरत मे कर दिया गया। सूरत मे नरम दल का जोर था।

नरम नेता टस से मस नहीं—इन्ही दिनो लाला लाजपतराय छूट कर आ गए। लोकमान्य तिलक ने नरम दल वालो पर वही चाल चलनी चाही जो पिछली साल वे उन पर चले थे। उन्होने लालाजी का नाम यह समझकर पेश कर दिया कि अपनी कद के कारण वह देश म जनप्रिय हो रहे हैं, नरम दल वाले उनका विरोध थोडे ही करेंगे। पर नरम दल वाले इस चाल मे नही आए। वह अपनी टेक पर अडे रहे। वह प्रसिद्ध विधिवेत्ता और दानी डाक्टर रासबिहारी घोष को सभापति बनाना चाहते थे।

काग्रेस का तेईसवा अधिवेशन

इसी वातावरण मे काग्रेस का तेइसवा अधिवेशन सूरत मे हुआ। सोलह सौ प्रतिनिधि आए थे। नरम लोगो की बहुसख्या थी, उनकी सख्या करीब 900 थी। इस प्रकार नरम नेताओ को अपने वोटो पर काफी भरोसा था। नरम दल वाले केवल अपना सभापति चुनकर ही सतुष्ट नही रहना चाहते थे, वे गत साल के अधिवेशन मे बायकाट आदि का समथन करते हुए जो प्रस्ताव पास हुए थे, उन्ह भी बदल कर पास कराने पर तुले हुए थे। गरम दल को नरम दल के इन मसूबो का पता लग गया, इसलिए सूरत पहुच कर गरम दल ने नरम नेताओ से यह कहा कि यदि वे प्रस्तावो को बदलने का अपना मनसूबा त्याग दें, तो वे उनके सभापति को चुन जाने देंगे। नरम नेताओ की तरफ से गोखले ने यह कहा कि खुले अधिवेशन मे क्या होगा, क्या नही होगा, इस सम्बन्ध मे वह कुछ नही कह सकते।

अधिवेशन मे हुल्लड—इस पर दोनो दलो मे समझौता नही हो सका, और दोनो तरफ से घमासान युद्ध की तयारी होने लगी। जब अधिवेशन शुरू हुआ, और स्वागत

समिति के सभापति अभिभाषण के बाद अधिवेशन के सभापति का नाम प्रस्तावित करने के लिए उठे, तो हुल्लड मच गया। इस पर उस दिन की कार्यवाही स्थगित कर दी गई। यह 27 दिसम्बर की बात है।

काग्रेस मे हुल्लड —28 दिसम्बर को फिर काग्रेस का अधिवेशन हुआ। लोकमान्य तिलक ने पहले ही इस बात की चेष्टा की थी कि मामला सुलझ जाए। आज भी उन्होने यही चेष्टा की। जिस समय सभापति का जुलूस जा रहा था, उस समय लोकमान्य तिलक का एक रुक्का स्वागत समिति के सभापति श्री त्रिभुवनदास मालवीय को दिया गया, जिसमे लोकमान्य ने अनुरोध किया था कि अधिवेशन शुरू होते ही जब सभापति का नाम प्रस्तावित तथा समर्थित हो जाए, तो मैं बैठक स्थगित करने का प्रस्ताव रखूगा। उन्होने रुक्के मे लिखा था कि "मैं झगडा मिटाने के लिए एक रचनात्मक प्रस्ताव रखना चाहूगा, मुझे मौका दिया जाए।" यदि लोकमान्य को यह मौका दिया जाता तो झगडा निपट जाता, कम से कम फिर लोकमान्य सपूर्ण रूप से वैधानिक ढग से चलते पर नरम दल वालो ने उनके रुक्के को बिलकुल हजम कर लिया। लोकमान्य ने फिर एक और रुक्का भेजकर उन्हे याद दिलाया कि मुझे बोलने दिया जाए, पर वहा कौन सुनता था। नरम नेता तो कुछ न सुनने पर तुले हुए थे। तब लोकमान्य उठे, और जाकर बोलने लगे। पर अधिवेशन के सभापति उन्हे बोलने न देने पर तुले थे। इस पर भयकर हुल्लड मचा। उसी हुल्लड के समय एक मराठा चप्पल सुरेन्द्रनाथ को छूता हुआ फीरोज शाह मेहता को लगा। इस पर तो और भी घमासान मच गया। फिर तो कुर्सिया भी चली, और छडिया भी फेंकी गई। उस दिन का अधिवेशन इस प्रकार भग हो गया।

अलग कन्वेशन —इसके बाद नरम प्रतिनिधियो ने अपना अलग कन्वेशन या अधिवेशन किया। मजे की बात है कि लाला लाजपतराय इस कन्वेशन मे शरीक हुए। इस कन्वेशन ने एक उप समिति नियुक्त की कि काग्रेस के लक्ष्य तथा विधान के सम्बन्ध मे अपनी रिपोर्ट पेश करे। बाद को 1908 के 18 तथा 19 अप्रैल को इसी कन्वेशन का इलाहाबाद मे अधिवेशन हुआ और उपसमिति की रिपोर्ट मजूर की गई। इस उप समिति ने क्या विधान बनाया इसके ब्योरे मे जाने की आवश्यकता नही। इतना ही कह देना यथेष्ट होगा कि वैधानिक उपायो से धीरे धीरे औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना काग्रेस का लक्ष्य बताया गया, और यह साफ कह दिया गया कि जो इस लक्ष्य तथा साधन को स्वीकार करते हैं वे ही काग्रेस के प्रतिनिधि हो सकते हैं। इसके बाद से काग्रेस मे बहुत सालो तक केवल नरम दल वालो का बोलबाला रहा।

सूरत मे काग्रेस के अधिवेशन के पहले ही पूर्वी बगाल के अत्याचारी गवर्नर को दो बार मारने की चेष्टा हुई। इसमे एक बार तो गवर्नर की गाडी पटरी से उतर गई और वह बाल बाल बचे। पुलिस रिपोर्ट के अनुसार इस धडाके से पाच फुट चौडा और पाच फुट गहरा गड्ढा हो गया था।

मुजफ्फरपुर हत्याकांड —30 अप्रैल 1908 को मिस्टर किंग्सफोर्ड के धोखे में मुजफ्फरपुर मे श्रीमती केनेडी तथा कुमारी कनेडी मारी गइ। अत्याचारी किंग्सफोर्ड की तैनाती इन दिनो मुजफ्फरपुर मे थी। उसको मारने के लिए खुदीराम तथा प्रफुल्ल चाकी दो युवक कलकत्ता से आए थे। हमला करने के बाद दोनो युवको मे से एक अर्थात् प्रफुल्ल चाकी ने आत्महत्या की, और खुदीराम को 1908 के 11 अगस्त को फासी हुई। उसके कुछ महीने बाद 1908 के 10 नवम्बर को कन्हैयालाल को फासी हुई जिन्होने जेल के अन्दर पिस्तौल मगवाकर मुखबिर को मारा था।

अलीपुर षडयत्र—इसी के बाद 2 जून को पुलिस को मानिकतला म बम के एक

कारखाने का पता लगा। इसके सम्बन्ध मे बारी द्र घोष आदि गिरफ्तार हुए। अरविन्द भी इसी सम्बन्ध मे गिरफ्तार हुए। नरेन्द्र गोस्वामी मुखबिर हो गया, पर वह जेल मे मारा गया। दोनो को फासी हो गई। बाकी लोगो पर जो मुकदमा चला, वह अलीपुर षडयत्र के नाम से मशहूर हुआ। सबको कालेपानी की सजा हुई। इस मुकदमे मे आशुतोष विश्वास सरकारी वकील थे, वे 24 फरवरी सन 1909 को मारे गए। सरकार की ओर से जो डी० एस० पी० यह मुकदमा चला रहा था, वह भी बाद को मारा गया।

चिदम्बरम पिल्लै को काला पानी—यह न समझा जाए कि केवल क्रातिकारियो को लम्बी सजाए दी गई। श्री विपिनचन्द्र पाल जिस समय मद्रास का दौरा करने गए थे, उस समय उनकी अनुप्रेरणा से वहा एक राष्ट्रीय दल का सगठन हुआ। श्री चिदम्बरम पिल्ल तथा उनके साथी श्री सुब्रह्मण्य शिव इस दल का बहुत अच्छा प्रचार कर रहे थे। वम 12 मार्च 1908 को वह धर लिए गए और राजद्रोहात्मक व्याख्यान के अपराध में चिदम्बरम को आजन्म तथा सुब्रह्मण्य को दस साल काले पानी की सजा हुई। यह सजा इतनी अधिक थी कि उन दिनो के भारत सचिव मार्ले ने भी इसके विरुद्ध वायसराय लार्ड मिन्टो को लिखा। मार्ले ने लिखा कि मैं चाहता हू कि शान्ति और सुव्यवस्था कायम रहे, परन्तु इस प्रकार की सजाओ से लोग बम के मार्ग की तरफ बढेंगे न कि पीछे हटेंगे।

दमन का दौरदौरा—मार्ले ने यह पत्र 14 जुलाई को लिखा था पर इसके पहले ही भारत सरकार ने अपनी कठपुतली धारासभा मे 8 जून को ही विस्फोट तथा समाचार पत्र कानून पास कर लिया था। विस्फोटक कानून के अनुसार विस्फोटक रखने की सजा आजन्म काले पानी तक हो गई, और समाचार पत्र कानून मे अखबार बन्द तथा प्रेस जब्त किया जा सकता था। इस कानून के पहले ही बहुत से अखबारो पर रोक लगा कर उन्हे बन्द कर दिया गया था। ऐसे पत्रो मे 'उर्दू ए मुअल्ला' भी था।

लोकमान्य को 6 साल सजा—लोकमान्य तिलक ने खुदीराम के विषय को लेकर 'केसरी' म कई लेख लिखे। इन निबन्धो मे उन्होने, आतकवाद की निन्दा की पर साथ ही सरकारी आतकवाद को भी जारशाही कहकर बुरा भला कहा था। इसी अपराध मे वह 24 जून को गिरफ्तार कर लिए गए, और 22 जुलाई को उन्हें छह साल की सख्त सजा और 1000 रुपया जुर्माना सुना दिया गया। लोकमान्य ने इस सजा के जवाब मे कहा, "जिस पवित्र कार्य को सिद्ध करने का मैंने प्रयत्न किया है उसके हक मे दुख उठाना अच्छा ही रहेगा। शायद ईश्वर की यही इच्छा है।" इस कठोर दण्डादेश से देश भर मे तहलका मच गया।

पत्रों पर प्रहार तथा नेता नजरबन्द—पर इससे उपद्रव रुकने के बजाय बढते ही गए। 11 दिसम्बर को सरकार ने क्रिमिनल ला मे कुछ सशोधन किए। स्पष्टत इनका उद्देश्य क्रान्तिकारियो का दमन था। इन सशोधनो के द्वारा अब सरकार को यह अधिकार हुआ कि वह किसी भी सस्था को केवल सन्देह पर गैर-कानूनी करार दे सकती है। सरकार ने फौरन इस कानून का फायदा उठाकर बरीसाल की स्वदेश-बान्धव समिति, ढाका की अनुशीलन समिति, मयमनसिंह की सुहृत समिति तथा इस प्रकार की अन्य बहुत-सी समितियो को गैर कानूनी घोषित कर दिया। अकेली अनुशीलन समिति की ही ढाके म 500 शाखाए थी। सरकार इतनी घबराई हुई थी कि सभी समितियो पर भी उसे सन्देह हुआ, और उनकी निगरानी होने लगी। इसके अतिरिक्त सरकार ने बगाल के नौ मुख्य नेताओ को नजरबन्द कर लिया।

क्रान्तिवाद की जडें जनता मे—बगाल म इस प्रकार खुली सस्थाओ के दमन तथा नेताओ की गिरफ्तारी का नतीजा यह हुआ कि गुप्त समितियो का उदय हुआ तथा

देश क्रान्तिवाद की ओर बढा। बगाल के क्रान्तिवाद की नींव ऐसी बहुत सी सस्थाओ पर थी, जो खुली तथा कानूनी रहते समय जनता के अन्दर तक बैठी हुई थी, इसी कारण उस सरकारी दमन से दबाया न जा सका। जिस समय राष्ट्रीय शक्तियो पर इस प्रकार साम्राज्यवाद का प्रहार हो चुका था, और लोकमान्य तिलक, अश्विनीकुमार दत्त आदि नेता सीखचो के अन्दर बन्द हो चुके थे, उस समय चाहिए तो यह था कि बची-खुची राष्ट्रीय शक्तिया सयुक्त मोर्चा बनाकर साम्राज्यवाद का मुकाबला करती, पर ऐसा नही हुआ। गरम दल का हाथ आगे बढा हुआ था ही, पर नरम दल के नेता शायद और डर गए, और वे किसी भी प्रकार एकता के लिए तैयार नही थे।

काग्रेस का चौबीसवा अधिवेशन

1908 मे मद्रास मे डाक्टर रासबिहारी घोष के ही सभापतित्व मे विभक्त काग्रेस का 24 वा अधिवेशन हुआ। डाक्टर घोष शायद फिर से सभापति इस कारण बनाए गए कि वह सूरत मे ढग से सभापतित्व कर ही नही पाए थे। डाक्टर घोष ने सरकारी दमन नीति की निन्दा की, साथ ही गरम दल की भी निन्दा की।

महाराष्ट्र में दमन—सरकार की तरफ से शासन सुधार देने की तयारी थी, पर उधर दमन भी जोरो पर था। 9 जून 1909 को गणेश दामोदर सावरकर को 'लघु अभिनव भारत मेला' नामक कविता पुस्तक के कारण आजन्म काले पानी की सजा दी गई। कविताओ के कारण इतनी सजा! सरकार बिलकुल पागल हो रही थी, पर यह कविता पुस्तक तो एक बहाना मात्र था। सरकार किसी और ही कारण से नाराज थी।

सस्कृत के महान विद्वान श्यामजी कृष्ण वर्मा गडबड देखकर उन्ही दिनो लन्दन चले गए थे और बहुत दिनो तक चुप रहे। 1905 से वह फिर से इडिया हामरूल सोसा इटी बनाकर इगलड मे काम करते रहे। वह 'इडियन सोश्यॉलाजिस्ट' नामक पत्र का सपादन भी करते रहे। वह विशेषकर भारत से पढने के लिए आए हुए छात्रो मे काम करते रहे। जब विनायक सावरकर पढने गए, तो वह भी उनके प्रभाव मे आए। सावर कर बन्धु भारत मेला तथा अभिनव भारत सोसाइटी के पहले से ही सस्थापक थे। सर कार ने इन्ही सब बातो के लिए गणेश सावरकर पर यह बदला लिया।

धींगरा को फांसी, विनायक को काला पानी – उधर मदनलाल धींगरा ने 1909 की पहली जुलाई को सर कर्जन वाइली नामक एक अग्रेज को गोली मार दी। सर वाइली भारतीय छात्रो पर खुफिया का काम करते थे। धींगरा को फासी हुई जिसे उन्होने बडी बहादुरी से ग्रहण किया। विनायक के दल ने नासिक के मजिस्ट्रेट जक्सन की भी हत्या की, इस पर विनायक पकड कर लदन से लाए गए, रास्ते मे वह जहाज से कूदकर फ्रास की भूमि मे पहुच गए थे, पर पकडकर फिर अग्रेजों के सुपुर्द कर दिए गए। भारत मे उन पर मुकदमा चला और उन्हे भी आजन्म कालापानी दे दिया गया।

काग्रेस का पच्चीसवा अधिवेशन

1909 मे कांग्रेस का पच्चीसवा अधिवेशन प० मदनमोहन मालवीय के सभा पतित्व मे लाहौर मे हुआ। इस बार केवल 250 प्रतिनिधि आए। पडित जी ने शासन सुधार की कडी निन्दा करते हुए कहा कि यह यथेष्ट नही है। उन्होने अपने भाषण से उपस्थित लोगो पर जादू सा डाल दिया। सैयद हसन इमाम ने साम्प्रदायिक निर्वाचन की निन्दा करते हुए कहा कि यह देश के लिए घातक सिद्ध होगा। काग्रेस ने शासन सुधार

की निन्दा करते हुए चार प्रस्ताव पास किए। इसमे विशेषकर साम्प्रदायिक निर्वाचन तथा मुसलमान वोटरो के साथ अन्यायपूर्ण पक्षपात की निन्दा की गई। साफ कह दिया गया कि सरकार की बहुसख्या होने के कारण यह सारा शासन सुधार तथा उसकी धारा-सभाए निकम्मी हैं। यह तय हुआ कि बग भग के सम्बन्ध मे जनता को कितना क्षोभ है, इसको बताने के लिए श्री सुरेन्द्रनाथ तथा भूपेन्द्रनाथ बसु विलायत जाए और वहा जाकर जनमत जागत करें। कहना न होगा कि देश को जिस बलिष्ठ नेतृत्व की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति नही हो सकी। उधर बगाल मे बराबर क्रातिकारियो का काय जारी रहा। पुलिस भी नए-नए षडयन्त्र चलाने लगी।

मार्ले मिन्टो शासन सुधार— इसी साल मार्ले मिन्टो शासन सुधार कानून दिया गया। इसमे सन्देह नही कि यह पहला शासन सुधार था, जिसमे चुनाव का सिद्धान्त किसी हद तक माना गया था। पर किसी भी क्षेत्र मे चुने हुए सदस्यो की सख्या अधिक नही थी। भारतीय धारासभा के 68 सदस्यो मे 36 सरकारी थे। इसी प्रकार सब प्रातीय धारासभाओ के सम्बन्ध मे नियम बना। वोटर चार हिस्सो मे बाटे गए थे— (1) साधारण, (2) जमीदार, (3) मुसलमान और (4) विशेष स्वार्थ। जमीदार और विशेष स्वार्थ के क्षेत्रो मे हिन्दू वोटर म फर्क रक्खा गया। यदि एक मुसलमान 750 रुपये मालगुजारी देता, तो वह वोटर हो जाता था, पर एक हिन्दू को यह अधिकार तभी मिलता जब वह 7000 रुपये देता। इसके अतिरिक्त एक मुसलमान आयकर देते ही वोटर हो जाता था, पर एक हिन्दू केवल इतने से ही वोटर नही हो सकता था। इस प्रकार हिन्दू मुसलमान झगडे को बढाने का सब तरह से उपाय किया गया। इस सबध मे द्रष्टव्य यह है कि भारत सचिव मार्ले पृथक निर्वाचन के विरोधी थे, पर भारत की ब्रिटिश नौकरशाही इसके पक्ष मे थी। इन्ही लोगो ने साम्प्रदायिकतावादी पढे-लिखे मुसलमानो को भडकाया कि वे पृथक् निर्वाचन की माग पेश करते रहे।

नेताओं की असमर्थता — 25 दिसम्बर 1910 को नया शासन सुधार लागू हुआ। इसमे आश्चय नही कि कांग्रेस के नरम नेताओ ने भी इसे पसद नही किया, पर इसे पसद न करने पर भी वे और किसी तरीके के सम्बन्ध मे सोच नही सकते थे। उनके पास बस एक ही अस्त्र था, भिक्षापात्र और वे भिखमगे के असीम धैय से लैस थे।

इसी प्रकार 1911 की 9 फरवरी को नजरबन्द रिहा कर दिए गए, पर साथ ही सरकार ने उसी दिन सवादपत्रो का गला घोटने के लिए एक प्रेस कानून लागू कर दिया। अब छापाखाना खोलने के लिए 500 रुपये से 2000 रुपये तक की जमानत जरूरी हुई। आपत्तिजनक सामग्री छापने पर 1000 रुपये से 10000 रुपये जुर्माना था। फिर छापाखाने की जब्ती की भी व्यवस्था की गई। इस प्रकार यह स्पष्ट कर दिया गया कि शासन सुधार मजाक मात्र था।

कांग्रेस का छब्बीसवा अधिवेशन

कांग्रेस का छब्बीसवा अधिवेशन 1910 मे इलाहाबाद मे सर विलियम वेडरबन की अध्यक्षता मे हुआ। वेडरबन ने चेष्टा की कि गरम तथा नरम दल मे सधि हो जाए, पर वह सफल नही हुए। इस अधिवेशन मे भी मार्ले मिन्टो सुधार की आलोचना हुई। प्रेस कानून की निन्दा की गई। बाद के इतिहास की दृष्टि से इस कांग्रेस की सबसे बडी घटना यह है कि इन्ही दिनो जिला बोर्ड, नगरपालिका आदि स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ मे भी साम्प्रदायिक निर्वाचन की बातचीत जारी थी, बाद के लीगी नेता मुहम्मदअली जिन्ना ने एक प्रस्ताव मे यह बताया कि ऐसा करना घातक होगा।

दिल्ली दरबार—बंग भंग रद्द—1911 के 12 दिसम्बर को दिल्ली में एक दरबार हुआ। इसमें सम्राट जार्ज पंचम तथा सम्राज्ञी मेरी आई थी। सम्राट ने बंग भंग को रद्द कर दिया पर साथ ही राजधानी कलकत्ते से हटाकर दिल्ली में लाने की घोषणा की गई। इस प्रकार बंग भंग आंदोलन का लक्ष्य तो प्राप्त हो गया, पर इस कारण यह आन्दोलन जिसका सूत्रपात इसी बात को लेकर हुआ था नहीं रुका। अब तो वह आन्दोलन स्वतन्त्रता के लिए आंदोलन में परिणत हो चुका था।

कांग्रेस का सत्ताईसवां अधिवेशन

1911 में कांग्रेस का सत्ताईसवां अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। इस बार मिस्टर रैमजे मक्डोनल्ड सभापति होने वाले थे, पर उनकी पत्नी का देहान्त हो गया, इस कारण वह न आ सके। इसलिए लखनऊ के श्री विशन नारायण दर सभापति हुए। दर साहब ने अपने भाषण में कहा कि अब भारत में थोड़े में सन्तुष्ट हो जाने वालों की जरूरत नहीं है, हमें ऐसे लोगों की जरूरत है जो देश के काम की धुन में अपने को भूल जाएं। उन्होंने बहुत धीरे चलने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए कहा कि इसमें खतरा यह है कि लोग कायर हो जाएंगे। श्री दर विचारों से मध्यममार्गी थे। इस कांग्रेस में भी यथारीति दमन का प्रतिवाद किया गया, और शासन सुधार पर प्रस्ताव पास हुए।

लार्ड हार्डिंग पर बम—दिल्ली में राजधानी को जिन कारणों से लाया गया था उनमें से एक यह भी था कि राजधानी को बंगाल से हटाया जाए क्योंकि बंगाल क्रान्तिकारियों का केन्द्र था। पर दिल्ली में आए अभी साल भर मुश्किल से गुजरा था कि वही रोग वहां भी दिखाई पड़ने लगा। 23 दिसम्बर 1912 को लार्ड हार्डिंग राजाओं के ठाठ से हाथी पर जुलूस में जा रहे थे कि उन पर बम गिरा। हार्डिंग बाल बाल बच गए, पर उनका अंगरक्षक मारा गया। हार्डिंग मूर्छित भर हुए। बम फेंकने वाले पकड़े न जा सके। बाद को कुछ सुराग लगा, और दिल्ली षड्यन्त्र चला। मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी, बालमुकुन्द तथा बसन्तकुमार को फांसी हुई, पर इनके नेता रासबिहारी पुलिस के हाथ नहीं लगे और अन्त तक फरार रहे। बम बसन्तकुमार ने फेंका था। रासबिहारी जापान चले गए।

कांग्रेस का अट्ठाईसवां अधिवेशन

1912 में कांग्रेस का अट्ठाईसवां अधिवेशन श्री आर० एन० मुधोलकर के सभापतित्व में बांकीपुर में हुआ। इस कांग्रेस की स्वागत समिति के अध्यक्ष मजहरूल हक थे। उन्होंने अपने भाषण में बलकान युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति की निन्दा की। इन दिनों भारतीय मुसलमानों में इस कारण बड़ा क्षोभ फैला हुआ था। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ था कि हिन्दू मुसलमानों में जो वैमनस्य पैदा किया गया था अब धारा उसके विरुद्ध जाने लगी।

अफ्रीका में सत्याग्रह—दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर जो अत्याचार हो रहे थे, उनकी निन्दा करते हुए कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया। इस बीच श्री गोखले वहां हो आए थे। उन्होंने अपने निजी तजुरबे से बतलाया कि वहां भारतीयों की कितनी घोर दुर्दशा है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय वहां जेल भी जा चुके थे और तरह-तरह की तकलीफें उठा चुके थे।

1912 में लीग—1912 में लीग की बैठक ढाका में हुई। नवाब सलीमुल्ला खां सभापति थे। नवाब साहब ने अपने भाषण में हिन्दुओं की शरारतों और सरकार की

बेमुरव्वतिया का बडे जोरदार शब्दो मे चित्र खीचा। सरकार को बेमुरव्वत इस कारण कहा गया कि लीग ने बग भग का समर्थन किया था, पर उसमे बिना पूछे ही सरकार ने बग भग रद्द कर दिया।

कांग्रेस का उनतीसवा अधिवेशन

1913 मे काग्रेस का उनतीसवा अधिवेशन नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर की अध्यक्षता म कराची मे हुआ। उन्होने अपने अभिभाषण मे हिन्दू तथा मुसलमानो को एक होने के लिए कहा, क्योकि इसीमे सबकी भलाई थी। सीतारमैया ने तो यहा तक लिखा है कि नवाब बहादुर ने इस अवसर पर जो बीज बोये, वे ही बाद को जाकर लखनऊ पैक्ट म पल्लवित हुए।

गदर पार्टी—क्रान्तिकारी आन्दोलन का वह अध्याय बहुत गौरवशाली रहा, जब अमरिका आदि देशो म अधिक मजदूरी के लोभ और लाभ की दृष्टि से गए हुए, राजनीति स सम्पूर्ण रूप से असम्पृक्त भारतीय विशेषकर पजाबी सिक्ख और हिन्दू एकाएक राजनीति की मुख्य धारा मे छलाग लगा गए। यह द्रष्टव्य है कि इन सीधे साधे लोगो ने अमेरिका म गदर पार्टी का निर्माण किया, जिसमे वह बहुत सरल ढग से धर्मनिरपेक्षता की मजिल तक पहुच गए। उनमे कोई विद्वान नही था, पर वे थे ईमानदार। 1913 म प्रथम महायुद्ध के काल बादल मडराने लगे थे। इसी समय गदर पार्टी की स्थापना हुई। सोहन सिह भकना, गुरुमुखसिह, रुद्रसिह काशीराम आदि दल के नेता थे। लाला हरदयाल न इसम भाग लिया। विद्वान और अच्छे वक्ता होने के कारण वह बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। गदर पार्टी के 8000 आदमी भारत मे क्रान्ति करने आए थे। उनका प्रयास सफल नही हुआ, पर शहीदो और वीरो के रूप म वे जो थाती छोड गए, वह अनाखी रही।

कोमागाटा मारू—बाद को पूर्व एशिया के विख्यात सिख धनी बाबा गुरदित्त सिह ने कामागाटा मारू नामक एक जहाज को किराये पर ले लिया, और भारतीय सिख तथा मुसलमान यात्रियो को लेकर सीधा कनाडा पहुचे। यह 23 मई 1914 की बात है। कनाडा की सरकार ने यात्रियो को उतरने नही दिया। तब दो महीना कनाडा के समुद्र तट पर पडे रहने के बाद यह जहाज वापस हुआ, और 19 सितम्बर को बजबज पहुचा। इस बीच यात्रियो की कायापलट हो चुकी थी। अमेरिका की गदर पार्टी के प्रचार कार्य के कारण जहाज म लोग क्रान्तिकारी हो चुके थे। हर बन्दरगाह पर कुछ क्रान्तिकारी चढते गए। सब चाहने लगे कि देश मे लौटकर क्रान्ति करें। बजबज म जब ये यात्री उतरे तो पुलिस ने उनकी तलाशी लेनी चाही। यात्रियो म कुछ सशस्त्र थे। इस पर लडाई हो गई जिसमे कई व्यक्ति मारे गए। बाबा गुरदित्त सिह तथा 28 अन्य यात्री पुलिस को चकमा देकर भाग गए। बाबाजी सात साल तक फरार रहे और असहयोग के युग म उन्होने पुलिस को आत्मसमर्पण कर दिया।

5

प्रथम महायुद्ध के दौरान

योरोप म लडाई के बादल बहुत दिनो से छा रहे थे। यद्यपि जमन पूजीवाद बाद
क्षेत्र म देर से उतरा था, पर उ नीसवी सदी के अ त तक वह सबसे ज्यादा विकसित
ब्रिटिश पूजीवाद के साथ एक कतार म आ चका था और बीसवी सदी के प्रारम्भ म व
यत्रनिर्माण आदि सबस उ नत उद्योग ध धो म भी ब्रिटिश पूजीवाद को परास्त कर चु
था। अब वह अपने मे इतनी शक्ति का अनुभव कर रहा था कि उसने सीधे यह मा
रखना शुरू कर दिया कि दूसरो की तरह उसके पास भी उपनिवेश होने चाहिए
साथ ही वह नौसेना तथा युद्धपोतो के क्षेत्र मे भी आगे बढने लगा। यह तनातनी बढ
गई, और पहली बार 1905 म फिर 1911 म लडाई के आसार बने। उस समय
इस पर काबू पा लिया गया, परन्तु जुलाई 1914 म लडाई छिड ही गई। आस्ट्रि
हगरी के युवराज फर्डिनेन्ड का सेराजेवो म मारा जाना तो एक उपलक्ष्य मात्र थ
असली कारण पुराने और गहरे थे।

काग्रेस का तीसवा अधिवेशन

इसी वातावरण मे काग्रेस का तीसवा अधिवेशन 1914 मे मद्रास म श्री भूपेन्द्र
नाथ बसु के सभापतित्व म हुआ। उन्होने पुराने ढग के व्याख्यान मे यह कहा कि सरकार
को चाहिए कि भारतीयो को औपनिवेशिक स्वराज्य दे। आश्चर्य है कि महायुद्ध छिड
जाने पर भी काग्रेस के नरम नेताओ ने कोई नया नारा नही दिया, यहा तक कि उन्हें
एकता की जरूरत भी नही महसूस हुई।

नेता परिस्थिति के अयोग्य – काग्रेस के नरम तथा गरम दोनो तरह के नेताओं
ने महायुद्ध के छिडने से अजीब शथिल्य दिखलाया। पुराने वक्तो म चाहे जो कुछ हुआ
हो, पर इस समय इन दोनों दलो म कोई विशेष फक नहीं रह गया था। अब चीजें बहुत
कुछ व्यक्तिगत हो चली थी और उनम कोई तत्त्व नहीं रहा था। परन्तु देश म तथा देश
के बाहर देशभक्तो का एक गिरोह था जो समझता था कि इस समय ब्रिटेन मुसीबत मे
फसा हुआ है इसलिए इसी समय उस पर हमला बोल दिया जाना चाहिए। ये लोग
भारत के क्रातिकारी थे।

क्रातिकारियों का कायक्रम —प्रस्तुत इतिहास मे हम केवल सक्षप म इतना ही
बता सकत हैं कि इन क्रातिकारियो ने किन तरीको से काम किया। इन्होने देश भर म
गुप्त समितिया कायम करने की चेष्टा की, अस्त्र शस्त्रो का सग्रह किया बम के कार
खाने खोले, सेना के साथ सम्बध कायम किया, चन्दा तथा डकतियो के द्वारा धन सग्रह
किया, विदेशो में जाकर ब्रिटेन के शत्रु राष्ट्रो से सम्बध कायम किया, क्रान्तिकारी
साहित्य बाटा—यानी सभी सभव तरीका से क्राति की तयारी की।

रजनी पामदत्त जैसे व्यक्ति भले ही यह कहे कि इनका प्रयत्न बहुत छोटा था,

पर इसका इतिहास सिडिशन कमेटी की रिपोर्ट मे लिखा हुआ है। कैसे इसी रिपोर्ट से रौलट विधेयक और रौलट विधेयक से असहयोग उत्पन्न हुआ, यह बाद को बताया जायगा।

कांग्रेस का इकत्तीसवां अधिवेशन

1916 मे श्री गोखले तथा श्री फीरोजशाह मेहता का देहात हो गया। इस साल इसी वातावरण मे कांग्रेस का इकत्तीसवां अधिवेशन श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह की अध्यक्षता मे बम्बई मे हुआ। अपने व्याख्यान मे उन्होने बतलाया कि भारतवर्ष एक ऐसे रोगी की भांति है जिसके टूटे हुए अंग प्रत्यंग स्प्लिट मे बंधे हुए हैं। दूसरे शब्दो मे, उन्होने अभी भारत को स्वराज्य तथा स्वावलम्बन के अयोग्य माना। अवश्य उन्होने साथ ही मे अब्राहम लिंकन का Government of the people, for the people and by the people—यानी 'जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता की सरकार' का नारा भी दिया। पर यह शब्द मात्र थे इसमे सदेह नही। आश्चर्य नही कि श्री सिंह बाद को बिल्कुल निष्क्रिय हो गए। बाद को यह सज्जन लार्ड बनाकर बिहार उड़ीसा के लाट भी बनाए गए।

बंबई कांग्रेस के प्रस्ताव—बंबई कांग्रेस मे 2259 प्रतिनिधि आए थे। एक प्रस्ताव मे राजभक्ति तथा अन्य प्रस्तावो मे ब्रिटेन के युद्धोद्देश्यो मे श्रद्धा प्रकट की गई। ब्रिटेन की नौ सेना ने इस बीच जो साहसपूर्ण कार्य किए थे, उनकी सराहना की गई। एक प्रस्ताव मे लार्ड हार्डिंग के संबंध मे सरकार से यह प्रार्थना की गई कि उनके वाय सराय होने का समय बढ़ा दिया जाय। कनाडा और दक्षिण अफ्रीका के भारतीय विरोधी कानूनो की निन्दा की गई। शासन सुधार की मांग की गई। बीसवें प्रस्ताव मे सरकार से कहा गया कि सब प्रान्तो मे इस्तमरारी बन्दोबस्त या कम से कम 60 साल के लिए बन्दोबस्त हो।

लीग और कांग्रेस—इस बार बम्बई मे ही लीग का भी अधिवेशन हुआ था। इससे लीग और कांग्रेस मे सद्भाव का मौका उत्पन्न हुआ। कांग्रेस के सभापति तथा प्रतिनिधि अपना सद्भाव व्यक्त करने के लिए लीग के अधिवेशन मे पहुंचे और वहां इनका यथायोग्य स्वागत हुआ। कांग्रेस ने अपने उन्नीसवें प्रस्ताव मे शासन-सुधार की मांग करते हुए यह कहा कि मुस्लिम लीग के नेताओ के परामर्श से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी एक शासन सुधार की योजना तथा शिक्षात्मक और प्रचारात्मक कार्यक्रम की योजना बनाए। इस बीच लीग ने अपने उद्देश्यो मे कुछ परिवर्तन किया था, और अब ब्रिटेन के अधीन आत्मशासन प्राप्त करना उसके उद्देश्यो मे शामिल हो गया था, यद्यपि मुसलमानो मे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति राजभक्ति का प्रचार अब भी उसके उद्देश्यो मे था। यूं तो इस अधिवेशन मे भी कांग्रेस ने पहले ही प्रस्ताव मे राजभक्ति व्यक्त की थी। इस प्रकार लीग और कांग्रेस मे मेल का रास्ता खुल गया था।

गांधीजी चुनाव हारे—इस समय तक गांधीजी भारत आ चुके थे और यहां की राजनीति मे प्रविष्ट होने के लिए कांग्रेस को ही उन्होने चुना था। परंतु बाद के इतिहास की दृष्टि से यह एक बहुत ही दिलचस्प बात है कि गांधीजी 1915 की कांग्रेस की विषय निर्धारिणी समिति मे चुने नही जा सके, इस कारण सभापति श्री सिंह ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके उन्हे इस समिति मे नामित किया। इतिहास भी क्या-क्या परिहास करता है इसका यह एक उदाहरण है।

विधान मे परिवर्तन—इस अधिवेशन मे कांग्रेस के विधान मे कुछ परिवर्तन

किया गया। अब यह नियम हो गया कि कोई भी संस्था जो दो साल से या उससे अधिक समय की है कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुन सकती है, बशर्ते वह कांग्रेस के उद्देश्यों को मानती हो। इस परिवर्तन से गरम दल का कांग्रेस में लौटना आसान हो गया। संभव है गोखले तथा फीरोजशाह की मृत्यु से नरम दलवाले अपने को कुछ कमज़ोर भी पा रहे हों, इस कारण वे कांग्रेस की जिम्मेदारी दूसरों के साथ बटाने को तैयार हो गए।

तिलक का कार्यक्रम— लोकमान्य तिलक समझते थे कि इस समय देश की ओर से एक प्रतिनिधि मंडल इंगलैंड भेजा जाय, तो अच्छा रहे। पर वह कांग्रेस के नेताओं को इस संबंध में राजी नहीं कर सके। अभी कांग्रेस में उनका स्थान नहीं था। हां, नये विधान के अनुसार अगले साल वह कांग्रेस में जा सकते थे। इस बीच उन्होंने अप्रैल में होमरूल लीग का संगठन किया जिसकी बहुत जल्द धूम मच गई। इसके तत्वावधान में तिलक तथा उनके साथियों की विचारधारा का प्रचार होने लगा। यद्यपि लोकमान्य पहले के मुकाबिले में नरम पड चुके थे, फिर भी वह जन सम्पर्क में विश्वास करते थे। उनकी राजनीति केवल भिक्षापात्र की नहीं थी, यद्यपि उसमें भिक्षापात्र का पर्याप्त स्थान था।

श्रीमती बेसेंट—इस बीच श्रीमती एनी बेसेंट भारतीय राजनीति में आ चुकी थीं। श्रेष्ठ विदुषी होने के अलावा वह ऊंचे दर्जे की वक्ता थीं। वह थियोसोफी आन्दोलन की नेत्री थीं। काशी के डा० भगवानदास उनके प्रमुख साथी थे। यद्यपि एनी बेसेन्ट अंग्रेज थीं, पर भारतवर्ष को अपना देश समझती थीं। वह चाहती थीं कि भारतवर्ष को होमरूल दिया जाय। इस उद्देश्य के प्रचार के लिए श्रीमती बेसेंट ने 1914 के 2 जून को ही 'कामनवील' नाम से एक साप्ताहिक तथा 14 जुलाई से 'न्यू इंडिया' नामक पत्र प्रकाशित किया। वह चाहती थीं कि औपनिवेशिक स्वराज्य के ढांचे पर भारतवर्ष को होमरूल मिले। उन्होंने भी 1916 के सितम्बर में होमरूल लीग की स्थापना की।

ब्रिटिश सरकार का प्रहार—ब्रिटिश सरकार को न तो तिलक का कार्यक्रम पसंद था, न बेसेंट का। स्मरण रहे कि दोनों साम्राज्य के अंतर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य के ही समर्थक थे, फिर भी सरकार को ये पसंद इसलिए नहीं थे कि सभाओं तथा लेखों के द्वारा ये जनता तक पहुंच रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने लड़ाई के बहाने 8 मार्च 1915 को 'डिफेंस आव इंडिया ऐक्ट' बना लिया था। इस कानून में 'इंडिया' शब्द फिजूल में ही था। यह कानून साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए था, न कि भारत की रक्षा के लिए। मुहम्मद अली शौकत अली, अबुलकलाम आजाद तथा सैकडों की तादाद में क्रांतिकारी इस ऐक्ट में नजरबंद हो चुके थे। मुहम्मद अली द्वारा सम्पादित 'कामरेड' पत्र भी बंद कर दिया गया था। अब 26 मई 1916 को श्रीमती बेसेंट द्वारा संपादित 'न्यू इंडिया' से दो हजार की जमानत मांगी गई। इस पर भी जब 'न्यू इंडिया' ने अपना लहजा नहीं बदला तो 28 अगस्त को यह रकम जब्त कर ली गई। लोकमान्य पर सरकार ने इससे भी भद्दा हमला किया, और उनसे एक मामूली बदमाश की तरह 40 हजार रुपये की जमानत और मुचलका मांगा गया कि वह नेकचलन रहेंगे। खैरियत यह रही कि बम्बई हाईकोर्ट ने इस हुक्म को मंसूख कर दिया। स्मरण रहे ये सारी जद्दोजेहद कांग्रेस के बाहर हो रही थी।

सम्मिलित योजना—बम्बई कांग्रेस में लीग के साथ मिलकर जिस शासन-सुधार की योजना बनाना तय हुआ था वह 17 नवम्बर 1916 तक बन गई। अक्टूबर महीने में ही इसका खाका बड़े लाट की कौंसिल के 19 चुने हुए सदस्यों के दस्तखत से सरकार के सामने पेश हो चुका था। इसमें यह कहा गया था कि युद्ध के बाद भारतवर्ष को इस आधार पर जिम्मेदार शासन दिया जाय।

काग्रेस का वत्तीसवा अधिवेशन

1916 मे लखनऊ मे काग्रेस का जो बत्तीसवां अधिवेशन श्री अम्बिकाचरण मजूमदार के सभापतित्व मे हुआ, वह बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। सूरत मे गरम दल तथा नरम दल मे जो विछोह हुआ था, वह अब जाकर मिलन मे परिणत हुआ। इसके अतिरिक्त सबस बडी बात थी कि काग्रेसी और मुसलमान नेता एक दिखाई दे रहे थे। गाधीजी अब भारतवर्ष मे बस गए थे, और इस काग्रेस म वह मौजूद थे। इस बार भी गाधीजी को विषय निर्धारिणी समिति मे जाने म दिक्कत पडती, पर लोकमान्य की बुद्धिमानी स वह आ गए। अभी तक गाधीजी दूसरो की दया पर ही काग्रेस मे थे और यह तब जबकि दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो की वे इतनी सेवा कर चुके थे। इससे उस युग के नेता अच्छी रोशनी म नही उभरते।

काग्रेस लीग पैक्ट—लखनऊ काग्रेस की सबस बडी सफलता यह थी कि काग्रेस तथा लीग ने एक सम्मिलित योजना तैयार की। इस योजना मे पृथक निर्वाचन को स्वीकार कर मतो को निम्नलिखित रूप से बाटा गया था।

प्रान्त का नाम	मुसलमान
पजाब	50 फी सदी
सयुक्त प्रान्त	30 " "
बगाल	40 "
बिहार	25 " "
मध्यप्रान्त	15 " '
मद्रास	15 " "
बम्बई	33 3 " "
केन्द्रीय कौंसिल	33 3 " "

सब धारासभाओ के लिए यह माग की गई कि 4/5 सदस्य निर्वाचित हो। हा, यह माग अवश्य रखी गई कि जहा तक हो सके निर्वाचक मडल विस्तत हो। यह मान लिया गया था कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो के अध्यक्ष क्रमश बडे लाट तथा वहा के स्थानीय लाट होगे और उनकी कार्यकारिणी समितियो के केवल आधे सदस्य ही वहा की धारासभा के चुन हुए सदस्यो द्वारा चुने हुए होगे। जिस दृष्टि से भी देखा जाय यह एक बहुत ही नरम माग थी, पर उस समय की सरकार इतना भी मानने के लिए तैयार नही थी।

लखनऊ काग्रेस मे अन्याय प्रस्तावो के साथ नजरबन्दी कानूना के दुष्प्रयोग की निन्दा गई और सरकार से सिफारिश की गई कि इगलड म जिस प्रकार इन कानूनो का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार भारत मे भी किया जाय। इस काग्रेस मे अपनी अधीन सस्थाओ को यह हिदायत दी गई कि वे सभायें कर स्वराज्य की माग के सबध मे जनमत तयार करें। इस अधिवेशन मे 2301 प्रतिनिधि आए।

1917 के प्रारम्भ मे ही इस्लिगटन आयोग की नियुक्ति इस कारण हुई थी कि उच्च पदो पर भारतीयो की नियुक्ति के सबध मे जाच करे, पर इसकी अधिक सख्या ने इसके विपरीत यह लिख दिया कि नही, जो है सो ठीक ही है। आयोग के दो भारतीय सदस्यो ने इसके विरुद्ध अपना मत लिखा। आयोग ने सिविल सर्विस की उम्र घटाकर 19 करने का प्रस्ताव किया।

मान्टेगू का क्रोध—इस प्रकार के भेद भाव के कारण होमरूल आन्दोलन खूब प्रचार हुआ। भारतीय इस बात का अनुभव करने लगे कि होमरूल के बगर भ नहीं। 24 जून 1917 को होमरूल लीग के सभापति भूतपूर्व जस्टिस सर एस० सुब्रह्म ने अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन को एक पत्र लिखा जिसमे भारतीयो के लिए होमर की माग की गई। मान्टेगू साहब उस समय तक भारत सचिव हो चुके थे। उन्होने पत्र का उल्लेख करते हुए कहा कि इस प्रकार का पत्र 'disgraceful and improp अर्थात लज्जाजनक तथा अनुचित है। इस पर श्री अय्यर ने अपनी 'सर' की उपा त्याग दी।

होमरूल लीग पर प्रहार— होमरूल लीग कांग्रेस से कही अधिक उग्र संस्था चकी थी। सरकार को यह पसन्द नही था कि ये नेता इस प्रकार स्वतन्त्रता के साथ घूमे फिरें। विशेषकर छात्र आन्दोलन मे बहुत भाग ले रहे थे। प्रान्तीय शिक्षा विभागों गश्ती चिटिठया निकालकर छात्रो को होमरूल लीग की सभाओ मे भाग लेने से रोका तिलक और विपिनचन्द्र पाल पर यह रोक लगी कि वे दिल्ली और पंजाब मे न घुसें। श्रीमती बेसेन्ट भी कई प्रान्तो मे घुसने से रोक दी गई। इन बंधनो से नेताओ का प्रभाव और भी बढा। अन्त तक ऐसा हुआ कि मद्रास के गवर्नर लार्ड पेन्टलैंड ने धारासभा की बैठक मे श्रीमती बेसेन्ट को बुरा भला कहा। श्रीमती बेसेन्ट इससे दबनेवाली थोड़ी ही थी। उन्होने 'न्यू इंडिया' मे लेख पर लेख लिखकर लार्ड पेन्टलैंड की धज्जियां उड़ा दीं। अब सरकार क्या करती? 16 जून को श्रीमती बेसेन्ट नजरबन्द कर ली गई। इसी के साथ उनके अनुयायी बी० पी० वाडिया और जी० एस० अरुंडेल भी नजरबन्द कर लिए गए।

दमन से आन्दोलन बढ़ा—इन तीन नेताओ की गिरफ्तारी से होमरूल आन्दोलन और बढा। पी० के० तेलंग, ए० रंगास्वामी आयंगर, सी० पी० रामास्वामी आदि नए नेता सामने आए। श्रीमती बेसेन्ट की गिरफ्तारी से क्या परिस्थिति उत्पन्न हुई, यह भारत सचिव मिस्टर मान्टेगू की डायरी से ज्ञात होता है। उन्होंने लिखा है कि "श्रीमती बेसेन्ट को गिरफ्तार करने से वही हालत हुई जो शिवजी ने अपनी स्त्री को 52 टुकड़ों मे काटने के बाद अनुभव किया। उन्होंने पाया कि अब एक की बजाय 52 स्त्रियां हो गई हैं।"

सविनय अवज्ञा की बात—लोकमान्य तिलक ने फौरन श्रीमती बेसेन्ट के मामले को जोरो से उठाया। उन्होने ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को इस बात के लिए मजबूर किया कि वह सरकार के निकट श्रीमती बेसेन्ट आदि की रिहाई की माग करे। यह आन्दोलन यहा तक जोर पकड़ गया कि जिम्मेदार लोगो मे सविनय अवज्ञा की बात चलने लगी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जुलाई अधिवेशन मे भी यह बात चली और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां तथा मुस्लिम लीग की कौंसिल को यह हिदायत दी गई कि वे इस सम्बन्ध मे छह हफ्ते के अन्दर रिपोर्ट दें। बाद को कई प्रान्तीय कमेटियो ने इसकी सिफारिश भी की। लोकमान्य ने यह भी प्रस्ताव रखा कि श्रीमती बेसेन्ट आगामी कांग्रेस की सभानेत्री हो। आन्दोलन के फलस्वरूप श्रीमती बेसेन्ट छूट भी गई। पहले नरम दल के लोग श्रीमती बेसेन्ट को सभानेत्री बनाना नही चाहते थे, यहा तक कि कलकत्ते मे दो स्वागत समितियां भी बनाई गई थी, पर जनमत के सामने नरम दल की कुछ नही चली।

मान्टेगू की घोषणा—सरकार ने इस बीच दो काम किए। एक तो श्रीमती बेसेन्ट को छोड दिया, और दूसरा, अगस्त मे एक घोषणा की। 20 अगस्त को भारत

सचिव मिस्टर माटेगू ने निम्नलिखित घोषणा की

"सम्राट की, ब्रिटिश सरकार की और भारत सरकार की राय भी यही है कि शासन काय के प्रत्येक विभाग मे भारतीयो का अधिकाधिक सहयोग हो तथा समस्त शासन मूलक सस्थाओ का क्रमिक विकास हो, जिससे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तगत भारत म जिम्मेदार सरकार का विकास हो सके। इन दोनो सरकारो ने तय किया है जहा तक तक सभव हो, शीघ्र इस दिशा मे अच्छा कदम उठाया जाय।"

पामदत्त ने 'इडिया टुडे' मे लिखा कि यह घोषणा रूसी क्राति के फलस्वरूप हुई, जो एक मजेदार बात है। सच तो यह है कि भारतीय अभी इसके बारे मे जानते भी नही थे। फिर, अभी तो समाजवादी क्राति हुई भी नही थी। हा, फरवरी क्राति हो चुकी थी।

श्रीमती बेसेंट मे परिवतन—कई प्रान्तो से सविनय अवज्ञा का समथन आया। परन्तु स्वय श्रीमती बेसेन्ट ने, जिनसे लोग यह आशा लगाए हुए थे कि वे छूटकर कोई जोरदार कायक्रम रखेंगी, सविनय अवज्ञा के प्रस्ताव का विरोध किया। कुछ महीनो की नजरबदी ने ही उन्हे बदल दिया था। सच तो यह है, और जैसा कि माटेगू की डायरी से भी ज्ञात होता है, वह किसी प्रकार की प्रतिज्ञा करके छूटी थी। इसके बाद से वह बराबर नरम पडती चली गइ। फिर भी श्रीमती बेसेन्ट ने पहले जो कुछ किया, उसके कारण ही उनका नाम भारत के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखा रहेगा। पर उन्होने जिस भारी काम को उठाया था, वह उसके योग्य साबित न हो सकी।

चम्पारन मे गाधीजी का उदय—इधर श्रीमती बेसेंट का सूर्यास्त हो रहा था, उधर चम्पारन मे गाधीजी नील की खेती करने वाले किसानो की तकलीफो को लेकर लडते हुए गगन पर उभर चुके थे। एक नए सूय का उदय हो रहा था। पहले नील उत्पन्न करना किसानो के लिए बिल्कुल लाभदायक नही था, पर किसान इस लिए गोरे प्लटरो द्वारा मजबूर किए जाते थे। अब जब से वैज्ञानिक तरीके से नील उत्पन्न होने लगा था, नील का उत्पादन प्लटरो के लिए भी लाभदायक नही रह गया था। पर प्लैंटर इस हानि को उठाने के लिए तैयार नही थे। वे किसी न किसी तरह सारी हानि का बोझ किसानो पर डालना चाहते थे। इसके लिए वे जबरदस्ती किसानो से झूठे बाड लिखवाते थे। सरकार इन्हे मदद दे रही थी। पूरी नादिरशाही चल रही थी।

गाधीजी ने इन्ही किसानो के काय को उठा लिया था। वह अप्रैल 1917 म मोतिहारी पहुचकर खोज करने लगे कि किसानो की क्या तकलीफें हैं, तो सरकार ने उन पर दफा 144 लगाकर यह हुक्म दिया कि वे फौरन जिला छोडकर चले जाए। उन्होने ऐसा करने से इकार किया। यही नही, उन्होने महायुद्ध के लिए अग्रेजो की मदद करने के लिए प्राप्त अपना 'कैसर ए हिन्द' मेडल भी लौटा दिया। आन्दोलन बढने पर सरकार ने उनके विरुद्ध दफा 144 का मुकदमा लौटा लिया। इसके बाद उन्होने बीस हजार किसानो के बयान लेकर उनकी माग सरकार के सामने रखी। सरकार एक आयोग बैठाने पर मजबूर हुई, और अन्त तक किसानो की बहुत सी मागें मान ली गई।

इस प्रकार गाधीजी भारतीय राजनीति मे पहले पहल सताए हुए किसानो के मित्र के रूप मे आए। यह आगमन अनोखा था गाधीजी ने जन सपर्क के इसी तरीके को भारतीय राजनीति मे बहत्तर क्षेत्र के लिए प्रयोग करना चाहा। उन्होने कहा कि काग्रेस और लीग ने शासन सुधार की जो योजना बनाई है, उसे केवल अग्रेजी तक सीमित न रखकर देशी भाषाओ मे अनुवाद कर जनता तक पहुचाया जाय। तदनुसार 1917 के अन्त तक दस लाख लोगो के दस्तखत से यह प्रस्ताव रखा गया।

काग्रेस का तैंतीसवा अधिवेशन

1917 मे कलकत्ता म काग्रेम का ततीसवा अधिवशन श्रीमती बसन्ट की अध्यक्षता मे हुआ। इम अधिवेशन म 4967 प्रतिनिधि आए। इस काग्रेस म भी राजभक्ति का प्रस्ताव हुआ। अन्य प्रस्ताव अ याय काग्रेसों की तरह थे। काग्रेस न माटेगू घोषणा का स्वागत किया, पर यह कहा कि कब तक भारतीयो को पूरी जिम्मेदारी दी जाय यह बता दिया जाय। काग्रेस ने कहा कि पहले कदम के रूप म फौरन काग्रेम और लीग ने मिलकर जो योजना बनाई है उसे कार्यान्वित किया जाय। एक प्रस्ताव म आन्ध्र का पथक प्रान्त बनाने की माग की गई। इस काग्रेस की सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस अधिवेशन म झडे का प्रश्न उठा। इसमे पहले ही होमरूम लीग ने तिरगे को अपनाया था। तिरंगे का विचार फ्रास की राज्यक्रान्ति से आया था। महान क्रान्तिकारिणी मिसेज जी कामा 1907 मे स्टुटगार्ट अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन म तिरगा झडा फहरा चुकी थी। कलकत्ता के क्रान्तिकारियो म तिरगा प्रचलित था। काग्रेस ने प्रस्ताव तो मंजूर किया था कि होमरूल लीग के तिरगे झडे की जाच के लिए एक कमेटी बने, और वह कमेटी बन भी गई, पर इस कमेटी की कभी बैठक नही हुई और होमरूल लीग का झडा ही काग्रेस का झडा हो गया। हा, बाद को इसमे चर्खा जोड़ा गया, और केसरिया को जगह लाल रग कर दिया गया।

नरम दल डेढ़ इट की मस्जिद—1917 की काग्रेम अंतिम काग्रेस थी, जिसमें नरम दल वाले मौजूद थे। बाद को अर्थात कलकत्ता काग्रेस के तुरत बाद नरम दल वाले अलग हो गए और उन्होंने नेशनल लिबरल लीग' कायम कर ली। मजे की बात यह है कि नरम दल वालो ने यह जो अलग सस्था कायम की, यह मिस्टर माटेगू के भड़काने पर की थी। माटेगू भडकाते या नही भडकाते, ये लोग एक काग्रेस म रह नही सकते थे क्योकि काग्रेस अब धीरे धीरे जनता की सग्रामकारी सस्था मे परिणत होती जा रही थी। नरम दल वाले यह समझते थे कि वे केवल व्याख्यानो शिष्टमडलो आदि के द्वारा इतिहास की सष्टि कर रहे हैं। वे बेचारे ब्रिटिश कूटनीति की चाल मे आ गए।

श्रीमती बेसेन्ट का सूय डूबा—श्रीमती बसन्ट काग्रेम की प्रथम प्रधान था जिन्होने यह दावा किया कि अधिवशन का सभापति साल भर प्रधान होता है, और इन्होने इस दावे को कार्यरूप म इस अथ म परिणित किया कि वह देश भर मे बराबर दौडती रहीं। परन्तु वह समय के साथ कदम मिलाकर आगे नही बढ सकी। वह कुछ दूर आगे बढकर पीछे हटने सी लगी जसा कि पट्टाभि सीतारमया न लिखा है 1918 के सितम्बर की विशेष काग्रेस मे बेसेन्ट का ही प्रभाव अधिक था, पर 1918 के दिसम्बर म वह हतप्रभ हो चुकी थी।

काग्रेस का विशेष अधिवेशन

29 अगस्त 1918 को काग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बम्बई म हसन इमाम साहब के सभापतित्व मे हुआ। इसमे 3845 प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस काग्रेस के सबध मे यह ख्याल था कि आपस का वैमनस्य बढेगा क्योकि शासन सुधार के प्रस्तावो के सबध में लोगो के मत भिन्न थे। पर अधिवेशन म ऐसी कोई बात दृष्टिगोचर नही हुई। इस काग्रेस न शासन सुधार के सरकारी प्रस्ताव को अनावश्यक और निराशाजनक करार दिया। इस समय तक रौलट कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी थी। काग्रेस ने इसकी निन्दा की।

रौलट कमेटी – यह कमेटी 10 दिसम्बर 1917 को भारत सरकार ने एस०ए०टी० रौलट के सभापतित्व मे भारत म क्रातिकारी आदोलन की जाच के लिए बैठाई गई थी। रौलट कमेटी न एक वृहद रिपोट पेश की। इसकी रिपोट मे वे सभी बातें आ गइ जो पुलिस को मालूम थी। इस कमेटी ने भारतीयो की रही सही स्वतन्त्रता पर पानी फेरकर जारशाही चलानी चाही। इसे पता नही था कि रूस मे इन्ही दिनो जारशाही खत्म की जा रही थी। यद्यपि कुछ लाग भारत के राष्ट्रीय आदोलन को प्रकोष्ठो म बटा देखना और दिखाना चाहते हैं, पर इस कमेटी के माननीय सदस्यो ने लोकमान्य तिलक तथा चाफेकर, विपिनचन्द्र पाल और खुदीराम को एक ही लाठी से हाका है, हमेशा उनको एक ही दृष्टि से देखा है, और उनके लिए एक ही दवा तजवीज की है। उन्होने क्रातिकारियो तथा सविधानवादियो दोनो को एक को दूसरे का पूरक समझा है।

रौलट रिपोट—इस कमेटी की सिफारिशो के अनुसार जिस किसी व्यक्ति को जब चाह नजरबन्द और गिरफ्तार किया जा सकता था, जिस किसीकी तलाशी ली जा सकती थी, जिस किसी से जमानत मागी जा सकती थी। सक्षेप मे, यह सैनिक कानून का ही एक रूप था। भारत रक्षा कानून तो था ही, जिसके बूते पर सरकार ने 1600 व्यक्ति नजरबन्द किए थे, फिर इसके सम्बन्ध म एक तसल्ली यह थी कि यह कानून युद्ध कालीन था, पर रौलट रिपोट तो शातिकाल मे प्रयोग मे आनेवाली था। स्मरण रहे, अभी केवल रिपोट ही प्रकाशित हुई थी, पर लिफाफा देकर मजमून भापा जा सकता था और कहा जा सकता था कि इस रिपोट पर विधेयक कैसा रहेगा।

काग्रेस का चौंतीसवा अधिवेशन

1918 मे दिल्ली मे पडित मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व मे काग्रेस का चौंतीसवा अधिवेशन हुआ। अधिवेशन क पहले ही महायुद्ध का अन्त हो चुका था। इस लडाई म एक लाख भारतीय सनिक मारे गए थे और भारत का 1000 करोड खच बठा था। लडाई खत्म होने पर भारतीय नेता यह समझने लगे कि अब सरकार भारत के साथ किए गए वायदा को पूरा करेगी। इस काग्रेस मे 4865 प्रतिनिधि आए। इस काग्रेस म भी राजभक्ति का प्रस्ताव हुआ तथा युद्ध की सफल समाप्ति पर सरकार को बधाई दी गई।

युद्धकाल मे मित्रपक्ष के नेताओ ने यह वायदा किया था कि युद्धान्त होने पर प्रगतिशील जातियो को आत्मनिणय का अधिकार दिया जाएगा। काग्रेस ने तदनुसार यह माग की कि भारतीयो को प्रगतिशील जाति मानकर उन्हे आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाय। काग्रेस ने शाति कान्फ्रेंस के लिए लोकमान्य तिलक, गाधीजी और मिस्टर हसन को चुना। इस काग्रेस मे प्रिन्स आव वेल्स के भारत आने का स्वागत किया गया।

यहा एक बात यह बता दी जाए कि क्रातिकारियो ने महायुद्ध के चरित्र को समझकर यह तय किया था कि साम्राज्यवादो के आपसी युद्ध का फायदा उठाकर अपने मुक्ति युद्ध को सफल बनाया जाय। इसी उद्देश्य से बर्लिन से कलिफोर्निया तक जहा भी जो था, क्राति प्रयास मे जुट गया। बनारस, मनपुरी, लाहौर मे गिरफ्तारिया हुइ। विदेषत क्रातिकारी छावनियो मे काम कर रह थे। उन्होने जमनो की मदद ली। पिंगले मेरठ छावनी म ही पकडे गए। उन्ह फासी हुई थी। लाहौर से लेकर माण्डले तक जहा भी षडयत्र चला, क्रातिकारियो पर यह अभियोग था कि उन्होने षडयन्त्र किए। मनपुरी के अभियुक्तो पर कई डाको के आरोप लगाए गए थे। इनके नेता पडित गेंदालाल दीक्षित थे।

मुसलमान क्रातिकारी—क्रातिकारी आदोलन मे मुसलमाना ने भी हाथ बटाया,

महायुद्ध म तुर्की ब्रिटेन के शत्रुपक्ष म था, इस कारण भारतीय मुसनमान इस युद्ध म
अग्रेजो के बहुत भक्त तथा अनुगत नही थे। यो तो कई तरह क सरकार विरोधी
कार्यों मे मुसलमान शरीक रहे पर रेशमी चिटिठयो का षडयन्त्र इस सम्बन्ध
विशेष उल्लेखनीय है। सन 1916 मे सरकार को पता लगा कि भारतवर्ष के मुसलम
सरकार को उलटने के लिए एक विराट षडयन्त्र कर रहे है। 1915 के अगस्त म मौल
ओबेदुल्ला सिंधी फतहमुहम्मद और मुहम्मदअली के साथ सरहद पार कर ग
ओबेदुल्ला पहले सिक्ख थे, फिर मुसलमान होकर देवबंद मे मौलवी हो गए थे। य
ओबेदुल्ला ने यह सोचा कि क्यो न फिर से मुस्लिम राज्य कायम किया जाय। बहुत
लोग उनके प्रभाव मे आ गए। यहा तक कि देवबद के सबसे बडे अध्यापक मौलाना मुहम्म
हुसन भी उनके प्रभाव मे आ गए। इस काय के लिए बाहर जाकर मुस्लिम सुलतानो
मदद प्राप्त करना उचित समझा गया। तदनुसार मुहम्मद हुसैन और ओबेदुल्ला गोर
अलग अलग भारत के बाहर पहुचे। ओबेदुल्ला बाहर जाने वाले भारतीय मुसलमानो
प्रचार करते रहे। वह मुस्लिम राष्ट्रो को भडकाते रहे कि वे भारत पर हमला करें, प
इन राष्ट्रो ने उनकी बातो मे कोई दिलचस्पी नही ली।

जर्मनी मे क्रांति के पुजारी सितम्बर 1914 मे एक नौजवान तमिल ने,
जिनका नाम चम्पकरमण पिल्लै था और जो जुरिख मे अन्तर्राष्ट्रीय प्रो इडिया कमेटी
के सभापति थे जुरिख के जमन कौंसल को लिखा कि हम जमनी मे ब्रिटिश विरोधी
साहित्य के प्रकाशन की अनुमति चाहते हैं। अक्टूबर 1914 म वह जुरिख छोडकर बर्लिन
चले गए जहा व जमन परराष्ट्र दफ्तर की देखरेख मे काम करने लगे। उन्होने वहा पर
जमन जेनरल स्टाफ से मिलकर इडियन नेशनल पार्टी नाम से एक दल स्थापित किया।
इसके सदस्यों मे 'गदर' पत्रिका के सस्थापक लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, बरक
तुल्ला चन्द्र चक्रवर्ती तथा हरम्बलाल गुप्त भी थे। आखिरी दो अर्थात चक्रवर्ती और
गुप्त सनफ्रेंसिस्को के जमन भारतीय षडयत्र मे अभियुक्त थे। यह कहानी बडी लम्बी
है।

6

गाधीजी का उदय । सत्याग्रह का प्रयोग

हम देख चुके हैं कि गाधीजी कुछ समय पूव द० अफ्रीका से भारत आ गए थे और काग्रेस के माध्यम से राजनीति मे प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे । उनका चम्पारन आदोलन बहुत सफल रहा था । अब वह समय आया जब देश ने उनको पहचाना और काग्रेस न उनका नेतत्व स्वीकार किया। हम देखेंगे कि उन्होंने न केवल काग्रेस का चरित्र बल्कि काय पद्धति भी आमूल परिवर्तित कर दी ।

रौलट बिल—1919 की फरवरी मे रौलट बिल का रूप रग सामने आ गया । इसम भारतीयो की रही-सही नागरिक स्वाधीनता बिलकुल खतम कर दी गई थी । इस बिल के दो भाग थे । एक भाग तो सामयिक महत्व का था जो, भारत रक्षा कानून के खतम हो जाने से सरकार की जो शक्ति छिन जाती थी, उसकी पूर्ति करता था । दूसरा भाग स्थायी था, तथा प्रचलित फौजदारी कानून मे एसे परिवतन करता था जिनसे जनता का हक घटकर नही के बराबर रह जाता था और पुलिस की ताक्त बढ जाती थी । देश भर म इन बिलो के विरुद्ध प्रबल आदोलन हुआ, पर सरकार के कानो मे जू नही रेंगी और उसके रुख से ज्ञान हुआ कि यह बिल ऐक्ट बनकर रहेगा ।

आज्ञा भग—कहा तो लोगो को लडाई की सफल समाप्ति पर बडी बडी आशाए थी, और कहा यह तोहफा मिला ! हम बता चुके हैं कि लोकमान्य तिलक ने युद्ध के शुरू होते ही यद्ध मे सहायता का नारा दिया था । महात्मा गाधी ने भी यही नारा दिया था । दूसर युद्ध म भी उन्होंने ब्रिटिश सरकार को मदद दी थी । यह मदद केवल नैतिक नही थी, वह सक्रिय रूप से रगरूट भर्ती कराने मे लगने ही वाले थे कि युद्ध समाप्ति की घोषणा हो गई । केवल तिलक और गाधी ही नही, उस युग की समूची काग्रेस युद्ध मे मित्र पक्ष की विजय चाहती थी । केवल क्रातिकारी दूसरे मार्ग को अपनाए हुए थे ।

गांधीजी युगपुरुष—अब जो रौलट बिल आया, तो लोग अपने को बहुत असहाय अनुभव करने लगे । पुराने नेता यहा तक कि लोकमान्य तिलक भी कुछ राह नही सुझा सके । ऐसे समय एक व्यक्ति था जो नही घबडाया । उसने अपने सामने एक मार्ग की रेखा देखी । दूसरे नेताओ की तरह उसने अपने को असहाय नही पाया । उन्होंने 1 माच को घोषणा की कि यदि यह बिल ऐक्ट मे परिणत हो गया, तो हम सत्याग्रह आदोलन शुरू करेंगे । यह व्यक्ति थे गाधीजी, उन्होने इस उद्देश्य से जनमत सगठित करने के लिए सारे देश का दौरा किया ।

अन्य नेता असमजस में—इस प्रकार काग्रेस के अन्दर जो धारा तीन साल पहले जारी हुई थी, और जिसे शासन-सुधार का पत्थर अटकाकर बन्द कर दिया गया था, अब फिर जारी हो गई । गाधीजी की यह धमकी भारतीय राजनीति मे नई बात थी । सरकार ने तथा भारतीय नेताओ ने इसे गभीरता के साथ लिया । नरम दल वाले नेताओ ने इस पर अपनी शकाए जाहिर की । श्रीमती बेसेंट ने, जो अब तक उग्रवादिनी समझी जाती

थी, इस प्रस्ताव के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने कहा कि सत्याग्रह छेड़ना ऐसी शक्तियों को मुक्त करना होगा जिनकी बुराई की ताकतें किसी को मालूम नहीं हैं।

कानून भंग की प्रतिज्ञा—पर गांधीजी पीछे नहीं हटे। उन्हें विश्वास था कि हम रौलट बिल को वापस कराने में समर्थ होंगे। 18 मार्च को यह विधेयक बन गया। उस दिन गांधी जी ने एक प्रतिज्ञा पत्र छपवाया जिसमें दस्तखत करने वाले को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी "चूंकि मैं इन बिलों का विरोधी हूं और उनको अन्यायपूर्ण, वैयक्तिक स्वतंत्रता का घातक तथा मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करने वाला समझता हूं इसलिए यदि ये बिल कानून बन गए, तो मैं इस कानून का तब तक उल्लंघन करूंगा, जब तक कि रद्द न कर दिए जाएं। साथ ही मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सत्य तथा अहिंसा का पालन करूंगा।"

दिल्ली में उपद्रव—जब कानून बन गया, तो यह तय हुआ कि इसके विरोध में 30 मार्च को भारतव्यापी हड़ताल हो और उस दिन लोग उपवास और प्रार्थना करें। यहां द्रष्टव्य है कि यह दिवस धार्मिक व्रत के रूप में मनाया जानेवाला था बाद को यह तारीख 30 मार्च से 6 अप्रैल कर दी गई, पर दिल्ली में इसकी सूचना नहीं पहुंची एवं पूर्व कार्यक्रम के अनुसार जुलूस निकला और हड़ताल हुई। गोलियां चलीं। जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे थे। कुछ गोरे सिपाहियों ने उनको धमकाया कि गोली मार देंगे, इस पर उन्होंने अपना सीना खोलकर तान दिया जिससे गोरे झेंप गए। दिल्ली स्टेशन पर झगड़ा हो गया जिसमें 5 आदमी मारे गए और बीसियों घायल हो गए।

सफल आम हड़ताल—6 अप्रैल को सारे देश में हड़ताल रही। जो दृश्य अब उपस्थित हुआ वैसा पहले कभी देखने में नहीं आया था। हिन्दुओं और मुसलमानों में सद्भाव के अपूर्व दृश्य दिखाई पड़े। इन दिनों मुसलमानों का दिल भी सरकार से खट्टा हो चुका था। वे अनुभव कर रहे थे कि लड़ाई में हार जाने के कारण खलीफ्तुल इस्लाम की दुर्गति होगी। हिंदुओं ने भी इस कारण मुसलमानों से सहानुभूति दिखाई। इस प्रकार मेल का आधार धर्म होने पर भी नारा था धर्म खतरे में'।

अमृतसर 10 अप्रैल—अमृतसर में अगली कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था पर सर ओ' डायर इस पर तुले हुए थे कि पंजाब को खतरे से बाहर रखा जाय, क्योंकि पंजाब सैनिक जातियों का घर था। यहां राजनीतिक आंदोलन का फैलना खतरे से खाली नहीं था।

10 अप्रैल को सबेरे अमृतसर कांग्रेस के संगठनकर्त्ता डाक्टर किचलू और डा० सत्यपाल अमृतसर जिला मैजिस्ट्रेट के बंगले पर बुलाए गए और वहीं से वे न मालूम कहां भेज दिए गए। यह खबर बात की बात में फैल गई और बड़ी भीड़ आप से आप इकट्ठी होकर यह पूछने के लिए मजिस्ट्रेट की ओर बढ़ी कि 'वे कहां हैं ?' पर भीड़ को बंगले की तरफ जाने नहीं दिया गया। जनता ने लौटते समय नेशनल बैंक में आग लगा दी और उसके गोरे मैनेजर को मार डाला। कुल पांच अंग्रेज जान से मारे गए।

गांधीजी को पंजाब निकाला—डा० सत्यपाल तथा स्वामी श्रद्धानन्द के निमंत्रण पर गांधीजी 8 अप्रैल को दिल्ली रवाना हो चुके थे। पर रास्ते में उनको यह हुक्म दिया गया कि आप पंजाब में प्रवेश न करें। गांधी ने इस आदेश को मानने से इनकार किया और वह पलवल स्टेशन से स्पेशल ट्रेन द्वारा 10 अप्रैल को बम्बई वापस कर दिए गए।

जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड—सबसे रोमांचकारी घटनाएं तो अमृतसर में हुईं। डा०सत्यपाल और किचलू की गिरफ्तारी पर वहां आम हड़ताल हुई। 11 अप्रैल को शहर की परिस्थिति ऐसी खराब हो गई कि फौज बुला ली गई। 12 को सभाओं पर

रोक लगाई गई, पर किसी को पता न लगा। 13 को हिन्दुओ का नया साल शुरू होता था। उस दिन शाम के समय अमतसर के जलियावाला बाग मे सभा हुई। जलियावाला बाग चारो तरफ से घिरा हुआ है। एक तरफ एक पतला-सा रास्ता है जिसमे होकर एक गाडी नही जा सकती। जिस समय यह स्थान भीड से खचाखच भर रहा था, और व्याख्यान हो रहा था, जनरल डायर सेना की एक टुकडी के साथ यहा आए, और लोगो पर बिना किसी चेतावनी के गोलिया चलाना शुरू कर दिया। अब जनता भागती भी तो कसे भागती ! सेना उसी पतले प्रवेश पथ को लक्ष्य करके गोली चला रही थी। सरकारी हिसाब से भी 379 आदमी मारे गए, पर वास्तव मे लगभग 1000 आदमी मारे गए थे। कई हजार जख्मी होकर रात भर वही पडे रहे। उन्हे किसी प्रकार न तो मदद दी गई, न देने दी गई।

डायरशाही का नगानाच—जनरल डायर की 'वीरता' यही पर खत्म नही हुई। वह तो विद्रोही पजाबियो को एक सबक सिखाना चाहते थे। उन्होने शहर की बिजली और पानी काट दिया। राहगीरो को पकडकर रास्ते पर छाती के बल चलने को मजबूर किया गया। दो आदमियो से अधिक के लिए एक साथ चलने की मनाही कर दी गई। लोगो को बिना किसी अपराध के खुली सडक पर बेंत लगाए गए, रेलो मे तीसरे दर्जे का टिकट बन्द कर दिया गया। साइकिलें छीन ली गइ। शहर मे जगह जगह बेंत लगाने की टिकटी लगा दी गई। फौजी अदालता मे लोगो को मनमानी सजा दी गई। 51 आदमियो को तो फासी ही दे दी गई। सर माइकल ओ' डायर को जब जनरल डायर के इन अत्याचारो की बात मालूम हुई, तो उन्होने उनके काले कारनामो का समथन करते हुए एक तार भेज दिया।

कवीन्द्र का प्रतिवाद—कवीन्द्र रवीन्द्र ने प्रतिपाद स्वरूप अपनी 'सर' उपाधि त्याग दी। ऐसा करते हुए उन्होने एक पत्र लिखा जो शातिनिकेतन के रवीन्द्र सदन मे सुरक्षित है। पत्र यो है—

"पजाब सरकार ने कुछ स्थानीय उपद्रवो को शान्त करने के लिए जिन भयकर उपायो का अवलम्बन किया, उससे हमारे मानस नेत्रो के सम्मुख निष्ठुर धक्के के साथ भारत मे ब्रिटिश प्रजा के रूप मे हमारी असहाय स्थिति स्पष्ट हो गई है। अभागे लोगो पर जिस प्रकार से बिना किसी अनुपात सजा बोली गई और उसे जिन तरीको से कार्यान्वित किया गया, उसे देखकर हम इस निश्चित मत पर पहुच चुके हैं कि सभ्य सरकारो के इतिहास मे उसकी कोई तुलना नही है, अवश्य ही प्राचीन तथा आधुनिक काल मे उसके कुछ अपवाद पाए जाते हैं। यह दुर्व्यवहार ऐसे लोगो पर किया गया है, जो नर हत्या के अत्यन्त भयकर कुशल सगठन वाली एक शक्ति के द्वारा अशक्त और साधन हीन बना दिए गए हैं, इस बात को ध्यान मे रखते हुए हमे बहुत जोर के साथ यह बता देना चाहिए कि इसके लिए किसी प्रकार का राजनीतिक मसलहत का बहाना नही किया जा सकता, नैतिक समथन की बात तो दूर रही। पजाब मे हमारे भाइयो का जिस तरह अपमान हुआ है, और उन पर जो कष्ट पडे हैं, उनकी कुछ कुछ कथा रुद्ध नीरवता के जरिये भारत के कोने-कोने मे पहुच चुकी है और हमारे देश के लोगा के हृदय में इसके फलस्वरूप क्रोध की जा सार्वदेशिक ज्वाला भडकी है, हमारे शासको ने उसकी अवज्ञा की है। सभव है, व अपने को बधाई दे रहे हो क्योकि वे समझते होगे कि इस तरह उन्होने बडा हितकर सबक दिया है। अधिकाश एग्लो इडियन अखबारों ने इस हृदयहीनता की प्रशसा की है, और इनमें से कुछ ता उस पाशविक हद तक चले गए हैं कि उन्होने हमारी यन्त्रणाआ की हसी उडाई है और इसम गभीर अधिकारीवग की ओर से

किसी प्रकार से ाधा नही पहुचाई गई क्योकि वह भी कष्ट पानेवाले लोगो का प्रतिनिधित्व कर रहे मुखपत्रो पर बराबर निदयता के साथ व्यवहार करते रहे हैं और कष्ट की किसी भी अभिव्यक्ति का विरोध करत रहे हैं। यह जानकर दु ख होता है कि हमारी अपीलों का कोई नतीजा नही हुआ और हमारी सरकार मे राजनीतिज्ञता के पवित्र मिशन पर प्रतिशोध का अधा पर्दा पडा हुआ है। यदि यह सरकार चाहती तो उसमें जितनी पशु शक्ति और नतिक परम्परा है, वह उसी अनुपात से महान हो सकती थी। इस स्थिति म मैं अपने देश के लिए जो सबसे कम कुछ कर सकता हू, वह यह है कि हम अपने करोडों देशवासियो के विरोध को स्वर दें, जो इस समय आतक की यत्रणा से अभिभूत होकर चुप्पी साधे हुए हैं। अब वह समय आ गया है, जब अपमान को देखते हुए सम्मान के तमगे हमारी लज्जा को और भी गहरी बना देते हैं और जहा तक मेरा सम्बन्ध है, मैं यह चाहता हू कि सब तरह की सम्मानसूचक विशेषताओ से वचित होकर मैं उन देश वासियो के साथ जाकर खडा हो जाऊ, जो अपनी कथित तुच्छता के कारण ऐसे अपमानों के शिकार होते हैं जो मनुष्यो के लिए अनुचित हैं। यही वे कारण हैं जिनकी वजह से मैं इस बात के लिए मजबूर हुआ हू कि उपयुक्त सम्मान के साथ महामहिम से यह निवेदन करू कि आप मुझे नाइट की उपाधि से मुक्ति दें, जिसे मैंने तब आपके पूववर्ती महान सम्राट के हाथो ग्रहण किया था, जिनके हृदय की महानता को मैं अब भी प्रशसा के साथ देखता हू।'

कशमकश—20 तथा 21 अप्रैल को पजाब की घटनाओ पर जांच की माग तथा गाधीजी तथा अन्य नेताओ के पजाब प्रवेश पर रोक की निन्दा करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक की ओर से विटठलभाई पटेल तथा नसिंह चिन्तामणि केलकर इगलड भेजे गए कि जाकर आम अग्रेजो को परिस्थिति की भयानकता से परिचित करा दें। भारत सरकार ने 21 अप्रैल को एक आर्डिनन्स निकाला, जिसके द्वारा पजाब सरकार को यह अधिकार दिया गया कि 30 माच के बाद किए गए किसी भी अपराध का फौजी अदालत मे फसला हो सके। घटनाए बहुत द्रुत गति से चल रही थी।

कांग्रेस अधिवेशन का स्थान वही रहा—19 तथा 20 जुलाई को अ० भा० कांग्रेस कमेटी की बठक हुई, और पजाब की परिस्थिति खराब होने पर भी अमतसर मे ही अगली कांग्रेस का होना निश्चित रहा।

श्रीमती बेसेंट से झपट—इन दिनो बहुत से नेता भारत के प्रतिनिधि बनकर इगलैंड गए थे। कांग्रेस के प्रतिनिधियो को इस कारण दिक्कत पडी कि श्रीमती बसेंट उनके विरुद्ध प्रचार कर रही थी। श्रीमती बेसेंट का यह रुख बहुत अजीब रहा। पहले तो उन्होंने इस प्रकार के कुछ मन्तव्य किए कि रौलट बिल म ऐसी कौन सी बात है जिससे वास्तविक रूप से निर्दोष नागरिक को बुरा लगे। उन्होंने यह भी कहा कि जिस समय जनता उत्तेजित हो जाती है और फौज पर ढला वगैरह मारने लगती है, उस समय यह दया की बात है कि सिपाहियो से कहा जाए कि वे कुछ गोलिया चला दें। विलायत म श्रीमती बेसेंट ने जो कुछ किया, उसस उनकी और भी भद्द हुई। यदि वह गुप्त वादा करके रिहा हुई थी तो राजनीति से अलग हो जाती और थियोसोफी तथा धम का ही काम करती, पर वह राजनीति मे टाग भी अडाना चाहती थी। हद तो उस दिन हुई जब 15 अक्तूबर 1919 को लन्दन म मिस्टर लसबरी की अध्यक्षता मे सभा हुई। इस सभा म भारतीयो के आत्मनिणय की माग के समथन म प्रस्ताव पेश हुआ तो जहा अन्य भारतीय नेता यह कह रहे थे कि भारतवष को पूरी जिम्मेदारी दी जाए, श्रीमती बेसेंट

ने वहा माटेगू के प्रस्तावित शासन सुधार की तारीफ के पुल बाध दिए। इस पर श्री विट्ठलभाई पटेल को कहना पडा कि आप भारतीय मत का प्रतिनिधित्व नही कर रही हैं। श्री खापर्डे ने इस पर उन्हें 'पूतना' की उपाधि ही दे डाली।

हत्याकांड पर जांच—पजाव के हत्याकाड को लेकर इतने प्रबल आदोलन का सूत्रपात हुआ कि सरकार ने अक्तूबर मे हटर कमेटी नाम से एक जाच आयोग बैठाया। चित्तरजन दास काग्रेस की तरफ से इसके सामने पेश हुए पर कुछ ऐसी दिक्कतें पेश आई कि काग्रेस ने कहा कि माशल ला वंदियो को गवाहो के रूप मे पेश किया जाए, पर हटर कमेटी इस पर राजी नही हुई। इसके बाद काग्रेस ने अपनी अलग जाच कमेटी बठाई। गाधीजी, मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, फजलुल हक, तथा अब्बास तैयबजी इसके सदस्य हुए, और के० सन्तानम हुए इसके मत्री। यथासमय दोनो जाच कमेटियो की रिपोट निकली। लीपा पोती करने पर भी हटर आयोग के सामने जनरल डायर ने जो कुछ कहा था वही यह प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट था कि हत्याकाड पहले से सोचा हुआ था। उस समय तक भारत मे ऐसा हत्याकाड नही हुआ था—'उस समय तक' इस कारण लिखा कि इसके बाद 1942 मे कई हत्याकाड हुए।

शासन सुधार का स्वरूप—इसी युग मे साम्राज्यवाद की सुपरिचित एक तरफ नरम तथा दूसरी तरफ गरम नीति के अनुसार शासन सुधार का काम भी चालू था। 23 दिसम्बर 1919 को ब्रिटिश ससद का शासन सुधार सम्बन्धी ऐक्ट भी पास हो गया। इस प्रस्ताव के द्वारा डायर्की या द्वैध शासन का सूत्रपात हुआ। इस पद्धति का नाम द्वैध-शासन इसलिए दिया गया कि स्थानीय स्वायत्त शासन, शिक्षा स्वास्थ्य चुने हुए सदस्यो में से बनाए गए मन्त्रियो के हाथो मे रहनेवाला था, तथा राजस्व, पुलिस और कानून पहले की तरह सरकार के हाथो मे रहने वाला था। कहना न होगा कि यह कोई होमरूल नही था। जो विषय मन्त्रियो के हाथो मे दिए भी गए थे, वे इस कारण व्यथ थे कि किसी भी योजना को कार्यान्वित करने के लिए धन की जरूरत पडती, और राजस्व का सारा विभाग सरकार के हाथो मे था।

भारत की करोडो जनता मे केवल 53 लाख व्यक्तियो को प्रान्तीय धारासभाओ का वोटर बनाया गया। फिर भी पहली बार प्रत्यक्ष निर्वाचन का अधिकार मिला था। स्त्रियो को वोट का अधिकार नही दिया गया, पर प्रान्तीय धारासभाओ को यह अधिकार दिया गया कि वे चाहें तो अपने प्रान्त की स्त्रियो को वोट का अधिकार दें। धारासभाओ में पहली बार निर्वाचित सदस्यो का बहुमत हो गया, पर कौंसिल ऑफ स्टेट मे वोटरो की सख्या मात्र 18 हजार होने के कारण इसका कोई अर्थ नही रहा।

सदस्यो को बजट पर आलोचना का अधिकार रहा, पर सैनिक खच, सिविल सर्विस आदि की तनख्वाह, भत्ता, गिर्जों पर खच आदि पर उनको वोट देने का कोई अधिकार नही दिया। जिन विषयो पर वोट का अधिकार दिया भी गया, सरकार उन विषयो मे बहुमत को मानने के लिए मजबूर नही थी।

कुछ कैदी छूटे—शासन सुधार कानून बनते ही माशल लॉ के कैदी तथा कुछ अन्य राजनीतिक कैदी छूटे। क्रातिकारी कैदियो मे बहुत थोडे ही छूटे। सावरकर छूटे, बनारस षडयन्त्र के शचीन्द्रनाथ सान्याल बिना शर्त छूटे, पर मैनपुरी षडयन्त्र के लोग शर्त के साथ ही छूटे। काग्रेस के नेता इस शासन-सुधार से सतुष्ट नही थे, वे इससे कही अधिक की उम्मीद कर रहे थे।

शासन सुधार पर लोकमान्य—लोकमान्य सर वैलेन्टाइन चिरौल के विरुद्ध मान हानि के मुकद्दमे मे इगलैंड गए थे, पर वह अमृतसर काग्रेस के पहले वापस आ गए।

इंगलैंड मे रहते समय उन्होंने सुधार-योजना के सम्बन्ध मे यह वक्तव्य दिया था कि जितना मिला है, हम उसे ले लेंगे, और बाकी के लिए लडेंगे। पर भारत आते ही शायद लोक मत तथा मित्रो का प्रभाव पडा, कि वह पलट गए। फिर भी जब एक्ट पास हुआ, तो उन्होंने ब्रिटिश मन्त्रिमंडल को बधाइयां और भेजी और 'रेस्पांसिव को-आपरेशन' अर्थात् जिस हद तक रियायत उस हद तक सहयोग का नारा दिया। इसके लिए लोकमान्य को दोष देना उचित न होगा क्योंकि उनके सामने कोई और रास्ता नहीं था।

अमृतसर कांग्रेस 1919

इसी वातावरण मे अमृतसर की कांग्रेस पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में 1919 मे हुई। इस कांग्रेस म मतो का संघर्ष रहा। देशबन्धु दास ने कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव इन शब्दो मे रखा (1) कांग्रेस अपनी उस घोषणा की पुनरावृत्ति करती है कि भारतवर्ष पूर्ण स्वराज्य के उपयुक्त है और इसके विरुद्ध कही गई बातों का प्रतिवाद करती है, (2) कांग्रेस दिल्ली मे स्वीकृत प्रस्ताव का समर्थन करती है, और समझती है कि सुधार की योजना अपर्याप्त, असंतोषजनक तथा निराशाप्रद है, (3) ब्रिटिश संसद को चाहिए कि भारतवर्ष को आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों के अनुसार पूर्ण स्वराज्य देने के लिए जल्दी कदम उठाए।

गांधीजी का संशोधन—गांधीजी ने इस प्रस्ताव मे आए हुए निराशाप्रद शब्दों के स्थान पर यह पूरा जोडने का संशोधन रखा "ब्रिटिश संसद द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्रचलित होने तक कांग्रेस राज भक्ति पूर्ण तरीके से सम्राट की घोषणा म व्यक्त इन भावुकतापूर्ण शब्दो का स्वागत करती है—'हमारी प्रजा तथा कर्मचारियो म एक सामान्य उद्देश्य से काम करने से एक नवयुग का प्रभात हो', और यह विश्वास करती है कि जनता तथा कर्मचारी इस प्रकार सहयोग से शासन सुधार को कार्यान्वित करेंगे कि जल्द से जल्द पूर्ण जिम्मेदार सरकार कायम हो। यह कांग्रेस इस सम्बन्ध में श्रीमान् माटेग्यू को धन्यवाद दती है।"

महायुद्ध और तुर्की—1914 18 के महायुद्ध मे तुर्की बरतानिया और फ्रांस के विरुद्ध लडा था। इससे भारत की मुस्लिम जनता मे अंग्रेजो के विरुद्ध यथेष्ट असंतोष था। कहीं इस असन्तोष का कोई दुष्परिणाम न हो इसलिए इंगलैंड के प्रधानमंत्री लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानो को यह वादा किया था कि हम किसी भी हालत मे तुर्की पर कब्जा नहीं करेंगे। सरकार ने इधर तो यह वादा किया, उधर तुर्की के अधीन अरब जातियो म अपने दूत भेजकर विद्रोह की ज्वाला भडकाई। इस काम के लिए अंग्रेजों ने बहुत योग्य आदमियों को भेजा और पानी की तरह पैसा बहाया। अंग्रेज अपनी योजना मे इस कारण सफल हुए कि तुर्की के अधीन मुस्लिम देशों मे बिलकुल स्वतन्त्रता नहीं थी, और ये जातियां स्वतंत्र होना चाहती थीं। भारतीय पढे लिखे मुसलमान इन बातों से बेखबर थे। उनकी यह मांग रही कि लडाई मे हारने पर भी तुर्क साम्राज्य जैसे का तैसा बना रहे।

अजीब मांग—इसके साथ ही यह भी सही है कि अंग्रेजो ने युद्धकाल मे अरब मे जो षडयन्त्र किया था, वह अरब जातियो की स्वतन्त्रता के लिए नहीं था। उसका उद्देश्य तो तुर्की सरकार को कमजोर करना तथा पेट्रोल प्राप्त करना था। किसी भी हालत मे एक धर्म होने के कारण यह उम्मीद करना कि शाम, इराक फिलिस्तीन आदि के लोग हजारो वर्ष तुर्कों के गुलाम बने रहें, यह बहुत अद्भुत बात थी।

19 मार्च की हड़ताल—तय हुआ कि 19 मार्च को देश के सारे मुसलमान उपवास रखें और ईश्वर से प्रार्थना करें। ऐसे समय गांधीजी आगे आए, और उन्होंने कहा कि यदि तुर्की के साथ सुलह भारतवर्ष के मुसलमानों की भावना के अनुसार नहीं होती, तो मैं असहयोग आन्दोलन चलाऊंगा। मौलाना शौकत अली ने 19 मार्च को सर्वत्र पास किए जाने के लिए एक प्रस्ताव बनाया कि यदि सुलह की शर्तें भारत के मुसलमानों को नापसंद हुई, तो हम मुसलमान इसके लिए मजबूर हो जाएंगे कि ब्रिटिश सिंहासन से अपना राजभक्तिपूर्ण सम्बन्ध तोड़ दें। उस समय आम जनता में यह भावना इतने जबरदस्त तरीके से फल रही थी कि अंग्रेज सरकार को डर हुआ कि कहीं सरकारी अफसर भी इस आन्दोलन में न बहने लगें। इसलिए उन्होंने एक हुक्मनामा निकाला जिसके अनुसार 19 मार्च के प्रदर्शनों में सरकारी नौकरों को भाग लेने से मना कर दिया गया।

महात्माजी का वक्तव्य—महात्माजी ने इस पर एक लम्बा बयान दिया, जिसमें उन्होंने कहा "मुसलमानों की भावनाओं को कुचलने के लिए जो कोशिश की जा रही है, उसको हम मान नहीं सकते, और जो लोग सरकारी तमगा, उपाधि पाए हुए हैं, उनसे अनुरोध है कि इसके विरोध में उन्हें त्याग दें और सरकार में जितने लोग नौकरी पर हैं, वे भी उसे त्याग दें।" इस प्रकार गांधीजी ने खिलाफत के प्रश्न पर क्षुब्ध मुस्लिम भावनाओं पर मरहम रखना चाहा।

लोकमान्य और खिलाफत—लोकमान्य तिलक अभी तक जीवित थे। उन्होंने भी यही वक्तव्य दिया कि "हमारा दल खिलाफत के प्रश्न का वही समाधान चाहता है जो मुस्लिम विश्वास तथा कुरान के अनुसार हो।" लोकमान्य भी पढ़े लिखे मुसलमानों को खुश करना चाहते थे।

ज्वार के साथ आए, भाटे के साथ गए—यह जरूर है कि गांधीजी खिलाफत की कुंजी से ही उन दिनों भारतीय मुसलमानों के हृदय में घुसने में समर्थ हुए, पर इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि ज्यों ही तुर्की के सुयोग्य नेता कमाल पाशा के हाथों से खिलाफत समाप्त हो गई, खलीफा स्विटजरलैंड भाग गए, त्यों ही कुछ के सिवा सारे के सारे मुसलमान जो ज्वार के साथ आए थे, भाटे के साथ चले गए। पाकिस्तान के बीज को इससे पुष्टि ही मिली। कुछ मुसलमान कांग्रेस में जरूर टिक गए, पर वे सुलझे हुए लोग थे, खिलाफत आन्दोलन उठाया जाता या न उठाया जाता, वे राष्ट्रीय आन्दोलन में अवश्य आते।

मुहम्मद अली बनाम मौलाना आजाद—इस बीच मौलाना मुहम्मद अली ने जोश में आकर यह कह दिया कि यदि अफगानिस्तान हिन्दुस्तान पर हमला करे, तो भारतीय मुसलमान अफगानिस्तान का साथ देंगे। कहना न होगा कि यह उक्ति बहुत गुमराहकुन थी और सर्व इस्लामी मनोवृत्ति को सूचित करती थी। इस बयान से हिन्दुओं के मन में संदेह का उदय हुआ। खैरियत यह हुई कि मौलाना अबुलकलाम ने एक दूसरा वक्तव्य देकर परिस्थिति सम्हाल ली। उन्होंने कहा कि यदि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो, और उसमें ऐसी शासन पद्धति हो जिसमें मुसलमानों को और हिन्दुओं को बराबर हक मिले हुए हों, तो इस्लाम की शरियत का यह हुक्म है कि मुसलमान अपने मुल्क की हिफाजत करें, चाहे स्वयं खलीफा ने ही उस मुल्क पर हमला किया हो।

असहयोग की तैयारी—2 जून को इलाहाबाद में सब दलों के नेताओं के सामने असहयोग का प्रश्न रखा गया। इस कान्फ्रेंस में असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया और एक कमेटी बनाई गई जिसके सदस्य गांधीजी तथा मुसलमान नेता हुए। इस कमेटी को यह भार सौंपा गया कि वह असहयोग का कार्यक्रम बनाए। इस कमेटी ने जो कार्यक्रम

बनाया, उसमे कालेज स्कूल तथा अदालतो के बायकट का नारा भी दिया गया।

लोकमान्य का महाप्रयाण—लोकमान्य तिलक ने भी असहयोग के प्रस्ताव का समर्थन किया था। एक अगस्त की रात का एक बज कर 45 मिनट पर वह चल बसे। मानो इस प्रकार उन्होने गांधीजी के कंधो पर भारत का नेतृत्व छोड दिया। पहली अगस्त को बाजाब्ता असहयोग होने वाला था, और एक अगस्त को ही लोकमान्य का देहान्त हुआ।

मुहाजरीन—इस बीच कुछ मुसलमान हिजरत करके अफगानिस्तान जाने लगे। मुस्लिम शास्त्रो मे ऐसी व्यवस्था है कि जब कोई राजा अन्यायी हो, तो उसके राज्य को छोडकर चला जाना चाहिए। सिंध मे ही पहले पहल इस आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, पर धीरे धीरे यह आन्दोलन फैला, और 18,000 मुसलमानो ने अफगानिस्तान की राह ली। अफगानिस्तान ने इस हिजरत करने वालो का स्वागत नही किया इसके विपरीत उनमे से कुछ गिरफ्तार कर लिए गए, और उन्हे तरह-तरह की तकलीफें दी गई। हिजरत करने वाले यह समझते थे कि ये जहा इस्लामी मुल्क मे पहुच गए कि उनका बड तपाक से स्वागत होगा, पर इसके विपरीत उनमे से बहुत से ब्रिटिश गुप्तचर समझे गए। अफगानिस्तान से अपनी आबादी ही नही सपरती थी, वह बाहर के नागो को कैसे रखता? इस हिजरत से फिर भी कुछ फायदे हुए। जो लोग इस धोखे मे थे कि शास्त्रों मे चाहे जो लिखा हो, पर प्रत्येक मुल्क का आदमी अपने ही आदमी को चाहता है और धर्मभाई होने के कुछ विशेष फायदे नहीं हैं। उन्हे यह भी ज्ञात हो गया कि बाहर के मुसलमानो को यहा के मुसलमानो से सहानुभूति नहीं है। कुछ हिजरती मुसलमान तो भटककर रूस चले गए, वहा उन पर यह प्रभाव पडा कि वे कट्टर मुसलमान होने के बजाय धर्म विरोधी समाजवादी होकर लौटे।

पहली अगस्त को असहयोग घोषित कर दिया गया। इसका पहला असर यह हुआ कि ब्रिटिश युवराज भारत आने वाले थे, सो उन्होने अनिश्चित काल के लिए अपनी यात्रा स्थगित कर दी। उनकी जगह पर ड्यूक ऑफ कनाट का आना निश्चित हुआ।

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन

असहयोग का इस तरह से प्रारभ तो हो चुका था, पर सोचा गया कि इस प्रश्न को कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन के सामने रखा जाय। तदनुसार 4 सितम्बर 1920 को कलकत्ते मे कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। लाला लाजपतराय सभापति हुए। लालाजी महायुद्ध छिडने के साथ अमेरिका चले गए थे बाद को वह वहा आ पाए। अमेरिका मे वह इंडिया ब्यूरो स्थापित कर तथा 'यंग इंडिया' पत्र प्रकाशित कर भारत का प्रचार कार्य कर रहे थे। वह 20 फरवरी को भारत लौटे, फिर 'वन्देमातरम्' पत्र चलाने लगे।

मुख्य प्रस्ताव—इस कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव यो था

'चूकि खिलाफत के मामले मे भारतीय तथा ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मुसलमानो के साथ अपने कर्तव्य का पालन न करके वादाखिलाफी की है इसलिए प्रत्येक अमुसलमान का यह कर्तव्य है कि अपने मुसलमान भाई की मदद करे। चूकि भारत सरकार तथा सम्राट की सरकार ने पजाब की निहत्थी जनता के साथ जिन अफसरो ने अन्यायपूर्ण बर्ताव किया, उन्हे सजा देने मे तत्परता नही दिखलाई और इस तरह यह प्रमाणित कर दिया कि पजाब के मामले मे सरकार न्याय करना नही चाहती, और न उसमे कोई पश्चात्ताप की भावना ही है, चूकि असन्तोष के इन दोनो कारणो को दूर किए

बिना भारत मे कोई शाति नही हो सकती, इसलिए भारत के आत्म-सम्मान का तकाजा यह है कि भारत के लोग अब अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग ग्रहण करें।"

कार्यक्रम— इस प्रस्ताव मे कहा गया कि (1) सब उपाधिया, ऑनरेरी पद तथा स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ से नामजद किए हुए सदस्य इस्तीफा दें, (2) सरकार के दरबारो तथा राजभक्ति प्रकट करने के लिए बुलाई गई सभाओ मे भाग न लिया जाय, (3) लडको को धीरे धीरे सरकारी तथा सरकार की सहायता प्राप्त शिक्षा-सस्थाओ से निकाल लिया जाय, राष्ट्रीय विद्यालय खोले जाए तथा उनमे लडके भर्ती किए जाए, (4) ब्रिटिश अदालतो का वकील तथा मुकदमे वाले धीरे-धीरे बायकाट कर दें, और आपसी झगडो के लिए अपनी अदालत जारी की जाय, (5) फौज और कुली कोर तथा अन्य सरकारी कार्यो मे नियुक्त लोग ईराक जाने से इनकार कर दें, (6) नये शासन सुधार के अनुसार जो कौसिलें बनी हैं, उनमे न तो वोटर लोग वोट देकर किसी को भेजें, और न कोई उनके लिए खडा हो, (7) विदेशी माल का बायकाट किया जाए।

चर्खे का प्रचार—इस प्रस्ताव मे यह भी कहा गया कि चूकि भारत की मिलें अभी इतना कपडा नही बना सकती जिससे राष्ट्र की ज़रूरत पूरी हो, और आगे बहुत दिनो तक भी वे शायद ऐसा न कर सकें, इसलिए यह सलाह दी जाती है कि चर्खा चलाना शुरु किया जाए।

गांधीजी का क्रान्तिकारित्व—महात्माजी ने यह प्रस्ताव रखा था। यह द्रष्टव्य है कि गाधीजी ने पहले पहल चर्खे को मिल प्रतिद्वन्द्वी नही बल्कि पूरक रूप मे रखा था। मिल मालिक इस कार्यक्रम से क्यो नही घबडाए यह स्पष्ट है। इस अवसर पर हम कुछ ठहरकर यह देख लें कि महात्माजी ने जो कार्यक्रम इस अवसर पर देश के सामने पेश किया, उसकी प्रत्येक बात (यहा तक कि चर्खा भी) पहले के आन्दोलनो मे थी।

नागपुर कांग्रेस 1920

अगली काग्रेस नागपुर मे 1920 मे श्रीविजय राघवाचार्य के सभापतित्व मे हुई। श्री जमनालाल बजाज इस बार स्वागताध्यक्ष थे। इसी काग्रेस मे असहयोग के सबध मे अतिम फसला होन वाला था। इस काग्रेस मे 14 हजार प्रतिनिधि उपस्थित थे। यह अधिवेशन कई दष्टिया से बहुत ही महत्वपूण था। गाधीजी का असहयोग प्रस्ताव पारित हुआ, पर बगाल तथा महाराष्ट्र की ओर से इसका विरोध हुआ। अकेले देशबन्धुदास 250 प्रतिनिधि लेकर नागपुर आए थे। पर उन्होंने गाधीजी का विरोध नही किया। इस अधिवेशन म काग्रेस का नया विधान बना। अ०भा०काग्रेस कमेटी का नए ढग मे निर्माण हुआ। काय समिति बनी। गाधीजी ने बतलाया कि काग्रेस का उद्देश्य सब प्रकार के वैध तथा शान्तिपूण उपायो से भारत के लोगो द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति है। कुछ लोगो ने जो इस नए कदम से घबरा रहे थे, उद्देश्य पर बहुत बारीक बहस छेड दी। जिन्ना इसी के बाद से काग्रेस से अलग हो गए। इससे प्रमाणित हो गया कि वह जन आन्दोलन से बिचकते थे। उनकी हद यही तक थी।

गांधी युग का आरभ—ड्यूक आफ कनाट के स्वागत के बायकाट का प्रस्ताव पास हो गया। मुसलमानो को इसलिए धन्यवाद दिया गया कि उन्होंने गो-वध बन्द करने का प्रस्ताव पारित कर दिया। इसी काग्रेस से गाधी-युग का सूत्रपात हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। इस युग मे जैसाकि बाद को हम देखेंगे, कई बार अपने साथियो के सामने उन्हे गच्चा खाना पडा, और एकाधिक बार तो काग्रेस से अलग भी हो जाना पडा, पर

अन्त मे उन्ही की जीत रही।

अन्य कार्य—जनवरी मे श्री जमनालाल बजाज ने तिलक स्वराज्य फड में एक लाख रुपए दिए। देशबन्धुदास को इस बात का भार सौंपा गया कि वह मजदूरों का सगठन करें। मि०एल०आर०तैयबजी को आर्थिक बायकाट कमेटी का सयोजक बनाया गया। तिलक स्वराज्य फड के लिए एक करोड रुपए की माग की गई। गावो और शहरो मे जोर का प्रचार कार्य शुरू हुआ। सैकडो सभाए होने लगी। अभी तक राजनीतिक कार्यकर्त्ता गावो मे नहीं जाते थे, पर अब गावो मे भी राजनीति पहुची। चर्खे चलने लगे।

आन्दोलन जोरों पर—धर पकड होती रही। कांग्रेस कार्य समिति ने 30 अप्रैल के अपने अधिवेशन मे यह राय दी कि गिरफ्तार असहयोगी अदालत से सहयोग न करें। हा, वह एक बयान दे सकता है। जमानत, मुचलका देने की भी मनाही कर दी गई। जुलाई के अन्त मे अ०भा० कांग्रेस कमेटी की बैठक मे मालूम हुआ कि चन्दा एक करोड से 15 लाख अधिक मिला। पर सदस्य एक करोड की जगह 50 लाख हुए और 20 लाख चरखे चल रहे हैं। तय हुआ कि पहली अगस्त से कोई भी कांग्रेस जन विदेशी वस्त्र नहीं पहनेगा। बम्बई के मिल मालिकों से कहा गया कि मजदूरो का पेट न काटते हुए मिल के कपडे को सस्ता कर दें। विलायती कपडे के व्यापारियों से कहा गया कि वे नया माल न मगावें, और जो माल है उसे विदेशों में खपा दें।

मौलाना मुहम्मद अली—आदोलन दिन दूना रात चौगुना बढता गया। सरकार ने जब इस आदोलन को बढते देखा, तो दमन चक्र शुरू हो गया। सयुक्त प्रात (उत्तर प्रदेश) और बगाल मे कांग्रेस तथा खिलाफत के वालंटियर दल को गैर कानूनी करार दिया गया। कराची मे 8 जुलाई 1921 को खिलाफत कान्फ्रेंस के अवसर पर मौलाना मुहम्मद अली ने एक तगडा व्याख्यान दिया। इस कान्फ्रेंस मे यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि कोई फौज मे शरीक न हो। इस सम्बन्ध मे कई आदमियो को सजाए हुई। जिस समय गाधीजी को मालूम हुआ कि मुहम्मद अली आदि पर एक व्याख्यान तथा प्रस्ताव के सबध मे मुकदमा चल रहा है वह त्रिचनापल्ली मे थे। तब गाधीजी ने स्वय एक सभा मे उसी व्याख्यान को सुनाया और कांग्रेस कमेटियो से भी कहा कि वे इस व्याख्यान को देश के कोने कोने मे दुहरावें। पर इस सम्बन्ध मे न तो वह खुद और न और कोई गिरफ्तार हुआ।

ब्रिटिश युवराज का बायकाट—12 नवम्बर को युवराज भारतवर्ष पधारे। असल मे युवराज नई असेम्बली का उद्घाटन करने वाले थे पर जैसा कि हम बता चुके हैं, अगस्त, 1920 मे भारत का राजनीतिक वातावरण ऐसा था कि ब्रिटिश सरकार ने उनको न भेजकर ड्यूक आफ कनाट को भेजा था। कांग्रेस ने पहले ही तय किया था कि युवराज का बायकाट किया जाएगा। तदनुसार युवराज का बायकाट किया गया और साथ ही विलायती कपडे जलाए गए। जिस दिन युवराज बम्बई पहुचे, उस दिन बडे जोरो का सरकार विरोधी दगा हुआ, और यह दगा तीन चार दिन तक चलता रहा। गाधीजी और सरोजिनी देवी भीड मे घुसकर लोगो को समझाते रहे पर दगा कठिनता से बन्द हुआ। लोग अग्रेजी राज्य का खातमा करके ही दम लेना चाहते थे। बहुत से आदमी जान से मारे गए। गाधीजी ने इन सबका प्रायश्चित करने के लिए 7 दिन का उपवास रखा। यदि गाधीजी इस प्रकार इन दगो को न रोकते तो पता नहीं पानी कहा जाकर रुकता। इन दिनो जो आदोलन हो रहा था उसकी पृष्ठभूमि मे प्रबल आर्थिक कारण थे।

समझौते की आशा—इन्ही दिनो पडित मदनमोहन मालवीय ने सरकार और कांग्रेस समझौते की चेष्टा की।

अहमदाबाद काग्रेस 1921

यथासमय अहमदाबाद काग्रेस दिसम्बर 1921 मे हुई। पर इस समय इस बार के निर्वाचित सभापति देशबन्धु दास तथा 30,00 अन्य लोग जेल मे थे। हकीम अजमल खा सभापति हुए। आदोलन के प्रधान सेनापति अभी जेल के बाहर थे। यह बात आपात दृष्टि से आश्चयजनक होने पर भी असली बात यो है कि सरकार डरती थी कि गाधीजी की गिरफ्तारी से न मालूम कैसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए। अहमदाबाद काग्रेस के पहले तक कुर्सी तथा बेंच आदि का इस्तेमाल होता था, पर अबकी बार यह सब हटा दिया गया था। काग्रेस अब जनता म आ चुकी थी। अग्रेजी की जगह हिन्दुस्तानी का प्रयोग हुआ, और अब काग्रेस मे खद्दर ही खद्दर दिखाई देने लगी।

पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव गिरा—असहयोग पूरे जोर पर था। अहमदाबाद काग्रेस की सबसे बडी घटना यह है कि कवि हसरत मुहानी ने काग्रेस के लक्ष्य को 'ब्रिटेनिया के प्रभाव से सम्पूर्ण रूप से मुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता' के रूप मे परिभाषा करनी चाही, पर गाधीजी ने इसका विरोध किया। मुहानी का प्रस्ताव गिर गया। इस काग्रेस में गाधीजी पहली बार काग्रेस द्वारा चलाए जा रहे आदोलन के सर्वाधिनायक (डिक्टेटर) चुने गए।

बारदोली मे तयारी—उधर गाधीजी लगानबन्दी के लिए तैयारी कर रहे थे। इसके लिए बारदोली चुना गया। वहा के लोगो पर गाधीजी का विशेष प्रभाव था। गाधीजी तुले हुए थे, उन्होने पहली फरवरी को लाट साहब का यह सूचना भी दे दी कि बारदोली म लगानबन्दी शुरू होगी। वल्लभभाई पटेल और उनके बडे भाई विटठलभाई पटेल बारदोली तथा गुजरात के सबसे बडे नेता थे।

चौरीचौरा से आन्दोलन का अन्त—आदोलन देश भर म तेजी से चल रहा था। उसी सिलसिले म 5 फरवरी को चौरीचौरा मे निहत्थे गाववालो का एक जुलूस निकल रहा था, पुलिस ने इसमे बाधा पहुचाई। पुलिस न गोलिया चलाई और तब तक चलाई जब तक उनकी गोलिया खत्म नही हो गईं। दो हिन्दू और एक मुसलमान मारे गए। तब पुलिसवाले भागकर थाने पहुचे। इस पर जनता ने थाने मे आग लगा दी। इसम 22 पुलिसवाले जलकर मर गए। इससे गाधीजी पर इतना असर हुआ कि उन्होने असहयोग आदोलन वापस ले लिया और हिदायत दी कि आगे कोई भी ऐसा कायक्रम न चलाया जाए जिसमे गिरफ्तारी की गुजाइश हो। अब देश के सामने केवल रचनात्मक कार्यक्रम रहा।

जेल मे बन्द नेता कुपित—असहयोग वापस लिए जाने का लोगो पर बुरा असर पडा। सुभाष बाबू ने अपनी पुस्तक 'भारतीय सग्राम' मे इसके विषय मे यह लिखा है कि ऐसे समय जब कि जनता का जोश सर्वोच्च बिन्दु पर पहुच चुका था, पीछे लौटने का नारा राष्ट्रीय सकट से कुछ कम नही था। महात्माजी के सभी मुख्य शिष्य चितरजन दास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय सभी क्षुब्ध हुए। मैं उन दिनो देशबन्धु के साथ जेल म था, इस दुख से उनका बुरा हाल हुआ। नेताओ ने गाधीजी के पास क्रोधपूर्ण पत्र भी लिखे, पर गाधीजी ने इन सब सदेशो को यह कहकर टाल दिया कि जो लोग जेल मे हैं, वे नागरिक रूप से मरे हुए हैं, उनका किसी बात मे बोलने का कोई अधिकार नही।

रचनात्मक कायक्रम—गाधीजी ने असहयोग के सग्रामात्मक भाग को स्थगित कर देने के बाद यह तय किया कि अब रचनात्मक कायक्रम लेकर चला जाए। रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध म गाधीजी की धारणा भी बराबर विकसित होती रही है, इस कारण

यह बता दिया जाय कि इस समय इससे उनका क्या मतलब था। इस समय रचनात्मक कार्यक्रम से उनका मतलब था—(1) चर्खा तथा खद्दर प्रचार, (2) अछूतोद्धार, (3) राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, (4) कांग्रेस में सदस्यों की भर्ती तथा (5) ग्राम पंचायतों की स्थापना। 24 तथा 25 फरवरी, 1922 को दिल्ली में अ० भा० कांग्रेस कमेटी का जो अधिवेशन हुआ उसमें यही सब कार्यक्रम स्वीकृत हुआ।

गांधीजी गिरफ्तार—यद्यपि गांधीजी ने आंदोलन वापस ले लिया था, फिर भी सरकार मौका पाते ही उनको गिरफ्तार करना चाहती थी। जब क्रांतिकारी परिस्थिति समाप्त हो गई, और देश में फिर निद्रा-सी छाने लगी, और सरकार ने यह समझ लिया कि अब उन्हें गिरफ्तार करने में कोई खतरा नहीं है तब 13 मार्च को गांधीजी गिरफ्तार कर लिए गए। कहां तो उनकी गिरफ्तारी पर क्रांति का भय था, पर अब एक उंगली भी नहीं उठी।

मुकदमा और सजा—उन पर दफा 124 अलिफ मुकदमा चला, और 'यंग इंडिया' में प्रकाशित तीन लेखों के सम्बन्ध में Tampering with Loyalty the Puzzle and its solution, Shaking the manes मुकदमा चला। उन्हें छह साल की सजा दी गई। गांधीजी ने सारे आंदोलन, विशेषकर चौरीचौरा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। गांधीजी ने उदारतापूर्वक आंदोलन वापस ले लिया, पर सरकार ने राजनैतिक कैदियों को नहीं छोड़ा, इसके विपरीत और लोग भी गिरफ्तार होते गए। गांधीजी हिंसा में विश्वास नहीं करते थे पर ब्रिटिश सरकार केवल उसी में विश्वास करती थी।

मुस्लिम लीग की बुरी हालत—इस बीच में लीग की क्या हालत थी इसको हम संक्षेप में देख लें। लीग की 1921 वाली बैठक ने लीग के जीवन को खतरे में डाल दिया था। यह इजलास मौलाना फजलुल हसन के सभापतित्व में अहमदाबाद में हुआ था और पहले के सालों की तरह इस बैठक में कांग्रेस के बाहर मौजूद सभी बड़े नेता यानी महात्माजी, विजयराघवाचार्य पटेल, हकीम अजमल खां उसमें गए थे। देश में, विशेषकर मुसलमानों में भी बड़ा जोश था, पर लीग में जो लोग भरे पड़े थे, वे असहयोग प्रस्ताव के पक्ष में नहीं थे। सभी क्रियाशील मुसलमान उन दिनों खिलाफत कांफ्रेंस में थे। लीग में असहयोग का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका, इस कारण लीग लोगों की नजरों में गिर गई। लीगी नेता इस्लाम के नाम पर भी खड़े नहीं हो सके। वे घर बैठ रहे। लीग का सितारा इस समय ऐसा डूबा कि 1922 में इसकी कोई बैठक ही नहीं हुई। 1923 के मार्च को लीग की बैठक लखनऊ में गुलाम मुहम्मद भरगिरी की अध्यक्षता में बुलाई गई पर कोरम पूरा न होने की वजह से सभा विसर्जित कर दी गई। इस प्रकार संग्राम के युग में लीग का बुरा हाल रहा। बाद को भी जब संग्राम हुआ, लीग डुबकी लगा गई।

गया कांग्रेस 1922

कांग्रेस का अगला अधिवेशन गया में 1922 में देशबन्धु दास के सभापतित्व में हुआ। श्री दास ने कमाल पाशा के नेतृत्व में उदीयमान स्वतंत्र तुर्की राष्ट्र का अभिनंदन किया, और एशियाई संघ का नारा दिया। उन्होंने बदली हुई स्थिति में बदली हुई कर्म पद्धति का नारा दिया। वह धारासभाओं के बायकाट के पक्ष में कभी नहीं थे, अब उन्होंने खुलकर इसका नारा दिया। पर राजगोपालाचारी के नेतृत्व में अधिकांश प्रतिनिधियों ने कांग्रेस के पहले कार्यक्रम पर डटे रहने का नारा दिया। कांग्रेस में दो दल हो गए, एक

परिवतनवादी, दूसरा अपरिवतनवादी। अपरिवतनवादियो की ही बहुसख्या रही, इसलिए श्री दास न इस्तीफा दे दिया। गाधीजी की गिरफ्तारी के साथ ही सविनय अवज्ञा सबधी परिस्थिति की जाच के लिए एक कमटी नियुक्त हुई थी, इस कमेटी के सदस्या म भी मतभेद हो गया था। हकीम अजमल खा, मोतीलाल नेहरू तथा विटठलभाई पटेल ने देशबधु के पक्ष म और डा० असारी, राजगोपालाचारी तथा आयगर न इसक विरुद्ध राय दी। पर श्री दास न जब इस्तीफा दे दिया और मोतीलाल नेहरू न स्वराज्य पार्टी क निर्माण की घोषणा कर दी, तो परिस्थिति बदल गई। सुभाष बाबू न लिखा है कि गया काग्रेस से अपरिवतनवादी जीत कर गए, पर उनके मन म खुशी नहा थी और स्वराजी हार कर गए, पर व लडकर जीतन के लिए कटिबद्ध थे।

दलों का सघष—*हुआ भी यही। 1923 के मध्य भाग तक स्वराजी अ० भा०* का० कमेटी मे बहुसख्या में हो गए, इस कारण काय समिति को इस्तीफा देना पडा। पर स्वराजी भी कायसमिति बनान के लिए तैयार नहीं थे, इस कारण कुछ मध्यपथी काय समिति बनाकर चलने लगे। सब प्राता म दो दलो म झगडा चलन लगा यहा तक कि बगाल म एक साथ दो काग्रेस कमेटिया चलती रही। इन्ही बाता क कारण सितम्बर, 1923 म काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया।

खिलाफत का अत और उसका प्रभाव—उधर यूरोप म कमालपाशा ने तुर्की की स्वतत्रता के लिए जो लडाई छेडी थी, वह सफल हो गई और 1923 की जुलाई म तुर्की राष्ट्र एक सचमुच स्वतत्र राष्ट्र हो गया, यानी उस पर से विदेशियो का प्रभाव नष्ट हो गया। तुर्की सुलतान भाग गए और तुर्की राष्ट्र गणतात्रिक हो गया। पहले कमालपाशा न खलीफा नियुक्त किया था, पर बाद को उसे कतई खतम कर दिया। इस प्रकार खिलाफत का अत हो गया। कमालपाशा ने अरबी लिपि हटाकर तुर्की भाषा की लिपि रोमन कर दी। उन्होने कहा कि तुर्की नागरिक मात्र मसजिद के अदर मुसलमान है।

दिल्ली का विशेष अधिवेशन

दिल्ली के विशेष अधिवेशन मे कौंसिल प्रवेश के लिए उस माग मे विश्वास करने वालो को स्वतत्र कर दिया गया। अब तो स्वराज्य पार्टी बाकायदा चुनाव की तैयारी करने लगी। दिसम्बर तक चुनाव हो गया और स्वराज्य पार्टी की अच्छी जीत रही। हम लगे हाथो यह देख लें कि कभी बगाल के 'बेताज के बादशाह' सुरेद्रनाथ (जो पहले ही 'सर' हो चुके थे) अब चुनाव मे स्वराज्य पार्टी के विरुद्ध खडे हुए तो उन दिनो के एक मामूली व्यक्ति विधान राय के विरुद्ध हार गए। नगरपालिकाए पहले से बनिस्बत स्वतत्र हो गइ और उन्हे गैर सरकारी चेयरमैन चुनने का अधिकार मिला।

स्वराज्य पार्टीका दान—पडित मोतीलाल स्वराज्य पार्टी की ओर से केद्रीय धारा सभा म गए, और उन्होंने शुरू से ही बडी योग्यता तथा निर्भीकता प्रदर्शित की। स्वराज्य पार्टी के नेतत्व म पहले ही राष्ट्रीय माग पर एक प्रस्ताव पेश हुआ जिसका अथ यह था कि फौरन औपनिवेशिक स्वराज्य के ढाचे पर शासन विधान बनाने के लिए गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाए। सरकार ने इस पर सर अलेक्जेंडर मूडीमैन के सभापतित्व म एक कमेटी बनाई, पर इसका कोई नतीजा नही निकला। इस प्रकार स्वराज्य पार्टी के कारण देश म एक तरह का जोश बना रहा, जो केवल रचनात्मक कायक्रम स कभी सभव नही था। उन दिनो स्वराज्य पार्टी और अपरिवतनवादियो मे जो झगडे चले, वे बाद को भुला दिए गए क्योकि बाद को सारी काग्रेस ही स्वराज्य पार्टी हो गइ। बाद को काग्रेस एक साल सत्याग्रह करती, तो नौ साल स्वराज्य-पार्टी बनी रहती। इस दृष्टि से देखने पर

श्री दास के दान को उतना महत्व नही दिया गया, जितना दिया जाना चाहिए। बाद मे गाधीवाद का जो रूप बना, उसमे दासवाद आ गया। दास जीवित नही रहे, इस कारण इतिहास ने उन्हे पूरा श्रेय नही दिया।

कोकनद-काग्रेस 1923

1923 वाली काग्रेस कोकनद म मौलाना मुहम्मद अली के सभापतित्व म हुई। इसम भी कौसिल प्रवश का समथन किया गया। मौलाना मुहम्मद अली ने कौसिल प्रवेश के पक्ष मे राय दी।

गाधीजी और स्वराजी—गाधी जब जेल स छूटे तो देश म स्वराज्य पार्टी का रोब बैठ चुका था। इस पर, जैसा कि सुभाष बाबू ने लिखा है, "उन्हाने अनिवाय के सामने सिर झुका दिया या हो सकता है कि उन्होने यह समझा हो कि बदली हुइ हालत मे नीति बदल दनी चाहिए।' कुछ भी हो, वे स्वराजी नेता श्री दास और प० मोतीलाल से मिले और इनमे एक तरह का समझौता हो गया। वह समझौता जिस गाधी दास पक्ट कहा गया इस आशय का था कि महात्माजी खद्दर प्रचार म लग, और राजनतिक काय स्वराजियो के हाथो म रहे जिसम गाधीजी स्वराज्य पार्टी या काग्रेस के हस्तक्षप के बगर अपना काम कर सके। गाधीजी को अधिकार दिया गया कि वे 'चर्खा सघ' नामक स्वतत्र सस्था का सगठन करें। सुभाष बाबू न यह भी साफ लिखा है कि 'स्वराज्य पार्टी के लोगो के मन म गाधीजी के लिए बहुत इज्जत होन के बावजूद यह पार्टी इतनी मज बूत थी कि इसने गाधीजी को इच्छापूवक राजनीति से बैठ जाने के लिए मजबूर किया, और उन्ह करीब करीब 1928 यानी कलकत्ता काग्रेस तक बैठा ही रहना पडा।"

फिर क्रातिकारी सगठन—जब तक असहयोग आदोलन चला, भारतीय क्राति कारी चुप थे। अब बिखरे हुए क्रातिकारी दल फिर से सगठित होने लगे। कुछ पुराने क्रातिकारी नेता पस्त हो चुके थे, उनकी जगह नए नेता आए। कुछ पुराने नेता भी सग ठन करन लगे पर सभल सभलकर। उत्तर भारत म शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा बगाल म अनुशीलन समिति आदि सगठन करने लगी।

गोपीमोहन शाहा—हम इस आदोलन के ब्योरे म नही जाएगे। 3 अगस्त, 1923 को जब कुछ क्रातिकारियो ने शारगरी टोला पोस्ट आफिस पर हमला कर दिया, तो पता लगा कि क्रातिकारी आदोलन सिर उठा रहा है। इस प्रकार की कुछ और घटनाए हुई। 1924 की जनवरी को गोपीमोहन शाहा ने जब कुख्यात पुलिस साहब टेगट के धोखे मे एक अग्रेज सौदागर अर्नेस्ट डे को मार डाला, तो बडी सनसनी फली। उसी साल बगाल म सिराजगज म मौलाना अकरम खा के सभापतित्व म प्रादेशिक राजनतिक कान्फेंस हो रही थी। इसम गोपीमोहन शाहा के कार्य की निन्दा करते हुए भी बडे स्पष्ट शब्दो म शहीद की देशभक्ति तथा साहस की प्रशसा की गई। गाधीजी ने इस प्रस्ताव की बहुत कडे शब्दो म निन्दा की। देशबन्धु ने उसका उत्तर दिया जिस पर बात बढ गई। जून म अहमदाबाद मे जब अ० भा० काग्रेस कमेटी की बैठक हुई तो महात्माजी ने सिराजगज वाले प्रस्ताव के विरुद्ध एक प्रस्ताव रखा। देशबन्धु ने इस पर एक सशोधन रखा, पर गाधीजी कुछ वोटो से जीत गए।

कोहाट का दगा—इसी साल कई जगह हिन्दू मुस्लिम दगे हुए। कोहाट में सितम्बर का दगा बडा भयकर रहा। कोहाट के दगे की जाच करने के लिए शौकत अली और गाधीजी की एक कमेटी बनी, पर वे एकमत न हो सके। शौकत अली इस राय पर पहुचे कि दोष हिन्दुओ का है, जबकि तथ्य यह था कि हिन्दू सकडो की तादाद म मारे

गए थे। यही से अली भाई साम्प्रदायिकता की ओर जाने लगे। गाधीजी ने कोहाट के दगे पर दिल्ली म मौलाना मुहम्मद अली के घर मे 21 दिन का उपवास शुरू किया। इसी लक्ष्य मे एक एकता का फ्रम भी हुई, पर दगे नही रुके।

बगाल ग्राडिनेन्स - बगाल म क्रातिकारी आदोलन सगठित हो रहा था। मध्य-वित्त नौजवान धडाधड क्रातिकारी दल मे शामिल होते चले जा रहे थे पर प्रचलित कानून के अ तगत सरकार इन सभी को पकडने म असमर्थ थी। शारगरी टोला डाकखाने की लूट के मामले पर सरकार ने एक पडयत्र चलाना चाहा था, पर यह मुकदमा छूट गया। तब रेगुलेशन 3 का प्रयोग हुआ। अप्रैल 1924 मे मिस्टर ब्रूस की हत्या का प्रयत्न किया गया, फिर फरीदपुर मे बम निकला। दो एक क्रातिकारी पिस्तौल सहित गिरफ्तार हुए। शचीन्द्र सा याल लिखित 'रिवाल्यूशनरी' पर्चा सारे भारत मे पहले ही बट चुका था। 18 अक्टूबर को सयुक्त प्रा त मे लौटते हुए योगेशचन्द्र चटर्जी हावडा स्टेशन पर गिरफ्तार हो गए। उनके पास कुछ कागजात मिले, जिनसे सरकार को यह पता लगा कि बगाल के बाहर कम से कम 23 स्थानो मे क्रातिकारी सगठन हो चुका है। बस, 25 अक्टूबर 1924 को बगाल आर्डिनेन्स जारी कर दिया गया। यह रौलट ऐक्ट का सगा भाई था।

दमन का प्रतिवाद—इस आर्डिनेन्स मे सुभाष बाबू, जो उन दिनो कलकत्ता कारपोरेशन के एक्जीक्यूटिव आफीसर थे, तथा बगाल स्वराज्य पार्टी के अन्य बडे नेता गिरफ्तार हो गए। इस आर्डिनेन्स के द्वारा बगाल के सब प्रगतिशीलो पर हमला किया गया। बम्बई मे इसी दमन का प्रतिवाद करने के लिए तथा स्वराज्य का एक मसविदा बनाने के लिए 21 तथा 22 नवम्बर को एक सर्वदल सम्मेलन बुलाया गया।

बेलगाव काग्रेस 1924

दिसम्बर 1924 मे महात्मा गाधी के सभापतित्व मे बेलगाव मे काग्रेस हुई। गाधीजी ने अपने भाषण मे सम्पूर्ण रूप से हिंसा और त्याग पर जोर दिया। उन्होने, मतभेद के बावजूद, स्वराजियो और असहयोग मे आस्था रखने वालो के काग्रेस के अदर सहअस्तित्व का प्रोत्साहन दिया। साथ ही लिबरलो को काग्रेस मे लौट आने की यह कहकर सलाह दी कि जब सत्याग्रह नही हो रहा है, तो आप लौट जाए। गाधीजी ने अपने व्याख्यान का अन्त वन्देमातरम से किया। बेलगाव म रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दिया गया।

कानपुर षडयत्र - 1924 का विवरण समाप्त करने के पहले कानपुर षडयत्र का उल्लेख करना उचित होगा। *1917* की क्राति के कारण रूस मे समाजवादी राष्ट्र स्थापित हुआ था। स्वाभाविक रूप मे उसी समय से क्रातिकारियो के लिए रूस तीर्थ स्थान बन गया था। समाजवादियो का उद्देश्य केवल एक देश म समाजवाद स्थापित करना नही है। सच तो यह है कि किसी एक देश मे तब तक केवल एक सीमा तक ही समाजवाद स्थापित हो सकता है जब तक सब देशो मे समाजवाद स्थापित न हो जाए। फिर समाजवाद का उद्देश्य अखिल मानव जाति मे शोषण का अन्त है। नरेन्द्र भट्टाचार्य उर्फ एम० एन० राय पुराने क्रातिकारी थे। वह अस्त्र शस्त्र के सिलसिले मे बटविया भेजे गए थे, पर उधर ही जब उन्हे पता लगा कि भारत म दमन हो रहा है तो वह घूम घाम कर रूस पहुचे। वहा से उन्होने भारत मे पत्र आदि भेजकर समाजवादी सगठन स्थापित करने की चेष्टा की। उनके चलाए सगठन मे सौ के करीब लोग आए। कानपुर षडयत्र मे श्री डागे, मुजफ्फर अहमद, शौकत उसमानी को चार चार साल की

सजा हुई।

दास की मृत्यु—16 जून 1925 को श्री दास का देहान्त हुआ। उनकी मृत्यु से स्वराज्य पार्टी को विशेष नुकसान पहुंचा। फिर भी 21 और 22 सितम्बर को अ० भा० कांग्रेस कमेटी की बैठक में स्वराज्य पार्टी की ही जीत रही।

कांग्रेस और नगरपालिका—इस बीच गांधीजी के छूटने पर जो कांग्रेस सदस्यता के साथ सूत का 'बखेड़ा' लग गया था, वह जाता रहा। चार आना भी चल दो अब यह माना गया। कट्टर अपरिवर्तनवादी सन, चरखे में ही व्यस्त रहे, ऐसा नहीं हुआ बल्कि इस बार नगरपालिका के चुनावों में उन लोगों ने भाग लिया, और इन संस्थाओं पर कांग्रेस का कब्जा हो गया।

पदलोलुपता तथा विघटन परन्तु स्वराज्य दल के कुछ लोगों में पदलोलुपता भी जोर मार रही थी। व्यर्थ के विरोध से उन्हें कुछ फायदा नहीं लग रहा था। मध्यप्रान्त की कौंसिल के एक स्वराजी सभासद ने पार्टी की पीठ के पीछे एकाएक गवर्नर की कार्य समिति में सदस्यता ग्रहण कर ली। प० मोतीलाल ने इसका विरोध किया और बताया कि कुछ समय से कुछ लोग इसी ओर झुक रहे हैं, यह इसी का नतीजा है। केलकर, जयकर, मुंजे भी स्वराज्य दल की कौंसिल से अलग हो गए।

कानपुर कांग्रेस 1925

1925 में कानपुर में श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। श्रीमती नायडू अंग्रेजी की कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध थी। वर्षों से वे गांधीजी की शिष्या थी। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य पर दुःख प्रगट करते हुए मुसलमानों से कहा कि वे देश की बात अधिक सोचें न कि शाम, ईराक, अरब और मिस्र की। उन्होंने भाषण का अन्त 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के अंग्रेजी अनुवाद से किया। कानपुर कांग्रेस में बहुत से प्रस्ताव पास हुए। हम पहले ही बता चुके हैं कि इस समय तक देश में निर्जीवता आ चली थी। स्वराज्य पार्टी का जोश घट रहा था। इस कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास हुआ कि सरकार फरवरी तक भारतीयों की कम से कम मांग को मान ले नहीं तो स्वराज्य पार्टी धारासभाओं से निकल आएगी।

बिखरने की प्रक्रिया—स्वराज्य पार्टी में कुछ लोग थे जो विरोध का कार्यक्रम पसन्द नहीं करते थे। ऐसे लोगों ने देश के अन्य तत्वों के साथ मिलकर एक नई पार्टी बनाई जिसका नाम 'इंडियन नेशनल पार्टी' रखा गया। कहीं ये लोग बहुत दूर न हट जाएं, इस कारण गांधीजी ने 21 अप्रैल को साबरमती में एक कान्फ्रेंस बुलाई, जिसमें एक समझौता हुआ। पर यह समझौता टिक न सका। जो लोग बिना देखे सुने विधानसभा में कूदना चाहते थे, और उसे सफल बनाने के लिए दबाव की राजनीति भी नहीं करना चाहते थे, वे कब तक कांग्रेस में टिकते ? इनका तो सही स्थान लिबरल फेडरेशन था, और हुआ भी यही। ऐसे लोग अन्त तक हिन्दू महासभा में चले गए।

इंडिपेन्डेन्ट कांग्रेस पार्टी—कुछ मध्यपंथी थे, जैसे लालाजी और पंडित मदनमोहन मालवीय। 1926 के नवम्बर में जब आम चुनाव होने को हुआ तो लालाजी स्वराज्य पार्टी से अलग हो गए और मालवीय जी के साथ मिलकर इंडिपेन्डेंट कांग्रेस पार्टी बनाई। इस बार चुनाव में बहुत अच्छे नतीजे नहीं रहे।

गुवाहाटी कांग्रेस 1926

ऐसी स्थिति में 1926 में श्री श्रीनिवास आयंगर के सभापतित्व में गुवाहाटी में

कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस साल बराबर हिंदू मुस्लिम दंगे होते रहे। ऐन कांग्रेस अधिवेशन के पहले स्वामी श्रद्धानंद अब्दुर्रशीद नामक मुसलमान आततायी के हाथों मारे गए। स्वामीजी कुछ दिनों से शुद्धि आंदोलन चला रहे थे। स्वामी श्रद्धानंद की मृत्यु के कारण गुवाहाटी कांग्रेस में सभापति का हाथी पर जुलूस निकलने वाला था, वह रोक दिया गया।

मालवीयजी ने स्वामी श्रद्धानंद सम्बन्धी प्रस्ताव रखा और मुहम्मद अली ने उसका समर्थन किया। केनिया में भारतीयों पर दिन ब दिन अत्याचार की जो वृद्धि हो रही थी, उसकी निंदा की गई। नज़रबन्दों की रिहाई की मांग की गई। इस कांग्रेस में भी पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव आया। सच तो यह है कि अहमदाबाद से बराबर यह प्रस्ताव आ रहा था। गांधीजी ने इसका विरोध किया, और प्रस्ताव गिर गया। कहना न होगा कि अब कांग्रेस का अधिवेशन पहले की तरह याने गांधी से पूर्व युग की तरह नीरस हो चला था। सीतारमैया ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है, "अब (1926) तक कांग्रेस का इतिहास शुभेच्छापूर्ण प्रस्तावों की तथा कौंसिलों में बतंगड़ की इकरस कहानी हो चली थी।" अब इसमें कुछ परिवर्तन की आवश्यकता थी।

ब्रिटिश सरकार ने घोषित किया कि शासन विधान की जांच के लिए एक कमीशन बैठेगा। यह खबर इतनी महत्वपूर्ण समझी गई कि गांधीजी, जो उन दिनों मंगलौर में थे, उन्हें दिल्ली बुलाकर यह खबर दी गई। 8 नवम्बर को साइमन के नेतृत्व में कमीशन आने का ऐलान हो गया।

इस बीच मुस्लिम लीग– इस बीच मुस्लिम लीग के इतिहास को यहां देखें। हम यह तो पहले ही बता आए हैं कि सन 1921, 22 तथा 23 में लीग का जीवन खतरे में रहा। 1924 की मई में लीग के *पुनरुज्जीवन के लिए लाहौर में उन मुसलमानों की* एक सभा हुई जिन्होंने खिलाफत तथा स्वतंत्रता के संग्राम में कोई भाग नहीं लिया था, जो घर बैठे रहे, तथा हजारों की तादाद में जो मुसलमान जेल गए थे, उनसे अलग रहे। इस सभा के सभापति हमारे पूर्व परिचित मिस्टर जिन्ना थे। इस प्रकार लीग की गाड़ी फिर से चल निकली, पर इसके अधिवेशनों में कोई खास बात नहीं होती थी।

लीग के दो टुकड़े—दिसम्बर 1927 में सर मुहम्मद याकूब के सभापतित्व में लीग का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ, जिसमें साइमन कमीशन के बायकाट का प्रस्ताव पास हुआ। तय हुआ कि कांग्रेस के साथ मिलकर एक विधान बनाया जाय जिसमें मुसलमानों के हकों की रक्षा हो और सिंध अलहदा हो जाय। इसी वर्ष पृथक और सम्मिलित चुनाव के प्रश्न पर मुसलिम लीग में विरोध हो गया था। शफी लीग और जिन्ना लीग नाम से इसके दो टुकड़े हो गए थे। 'सारे जहां से अच्छा' के कवि सर मुहम्मद इकबाल और सर शफी ने पृथक निर्वाचन का पक्ष लिया, और मि० जिन्ना तथा अली भाइयों ने कुछ शर्तों के साथ सम्मिलित चुनाव का पक्ष लिया। परिणाम यह हुआ कि दिसम्बर 1927 में एक ही तारीख में लीग के दो अधिवेशन हुए —शफी लीग का लाहौर में और जिन्ना लीग का कलकत्ते में। इन दोनों टुकड़ों में कैसे मेल हुआ यह हम बाद को लिखेंगे।

मद्रास कांग्रेस 1927

1927 में डाक्टर अंसारी के सभापतित्व में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। डा० अंसारी बहुत उदार चरित्र के व्यक्ति थे। वह 1912 में बलकान युद्ध में मेडिकल मिशन के साथ तुर्की गए थे। मद्रास कांग्रेस में साइमन कमीशन के बायकाट का प्रस्ताव पास

हुआ। यह तय हुआ कि जिस दिन कमीशन भारतवर्ष की भूमि पर पर रखे, उस दिन सारे देश में प्रदर्शन हो। इस अधिवेशन में काकोरी के शहीदों की फांसी पर उनके परिवारों के साथ सहानुभूति प्रकट की गई और उन्हें फांसी देने की निन्दा की गई।

काकोरी षडयंत्र – संक्षेप में बता दिया जाय कि काकोरी षडयंत्र क्या था जिसके शहीदों के लिए कांग्रेस को प्रस्ताव करना पड़ा। हम बता चुके हैं कि असहयोग आंदोलन बंद कर दिए जाने के बाद क्रांतिकारी फिर संगठन करने लगे। शचीन्द्रनाथ सान्याल और रामप्रसाद बिस्मिल उत्तर भारत में सक्रिय हुए। उद्देश्य की पूर्ति के लिए दल की ओर से क्रांतिकारी पर्चे बांटे गए, अस्त्र शस्त्र इकट्ठे किए गए और धन के लिए डाके भी डाले गए।

इस दल की ओर से लखनऊ के पास काकोरी स्टेशन से कुछ फासले पर आठ डाउन पैसेंजर को रोक कर उसका खजाना लूट लिया गया। इस सिलसिले में बाद को गिरफ्तारियां हुई और षडयंत्र चला। इस मुकदमे में सरकार के कोई 15 लाख रुपए खर्च हुए। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशनसिंह तथा अशफाकुल्ला खां को फांसी हुई, अन्य अभियुक्तों को काले पानी से लेकर चार साल तक की सजा हुई। देश में इन सजाओं पर बहुत जोश फैला। केन्द्रीय असेम्बली के चुने हुए सदस्यों की ओर से फांसी की सजा रद्द करने के लिए दरख्वास्त भी भेजी गई। राजेन्द्र लाहिड़ी को 17 दिसम्बर तक, बाकी तीन व्यक्तियों को 19 दिसम्बर सन् 1927 को फांसी पर चढ़ा दिया गया। प्रांतीय विधानसभा में बचे हुए बंदियों से विशेष व्यवहार का प्रस्ताव पास हुआ, पर हुआ कुछ भी नहीं।

साइमन कमीशन पर क्षोभ—साइमन कमीशन 3 फरवरी 1928 को बम्बई में उतरा। उस दिन सारे देश में हड़ताल की गई। जहां जहां कमीशन गया, वहां-वहां उसका स्वागत 'साइमन लौट जाओ' के नारों से किया गया। मद्रास की जस्टिस पार्टी तथा कुछ मुस्लिम संस्थाओं के अतिरिक्त सबने इसका बायकाट किया। जिस समय यह कमीशन लखनऊ पहुंचा, तो उसके बायकाट के संबंध में पंडित जवाहरलाल तथा गोविन्द वल्लभ पंत को भी चोटें आईं। पटना में कमीशन का बायकाट हुआ। सरकार कुछ भाड़े के आदमियों को गांवों से फुसलाकर ले आई थी पर वे लोग आते ही प्रदर्शनकारियों में शामिल हो गए। इसी प्रकार सब स्थानों पर हुआ। लाहौर में 30 अक्टूबर को जो कुछ हुआ वह ऐतिहासिक इसलिए हो गया कि उसके साथ लाला लाजपतराय की मृत्यु तथा भगतसिंह का नाम जुड़ गया। लाहौर में लालाजी के नेतृत्व में कमीशन का बायकाट हुआ। लालाजी पर पुलिस की लाठी पड़ी। इसी चोट के बाद उन्होंने जो बिस्तर पकड़ा तो फिर वे उठे नहीं और 17 नवम्बर को वीरगति प्राप्त कर गए। बाद को क्रांतिकारी दल ने इसका बदला लेने के लिए भगतसिंह चन्द्रशेखर आजाद तथा राजगुरू को भेज कर लाहौर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर सडर्स को 15 दिसम्बर को चार बजे गोलियों से मरवा दिया।

क्रांतिकारी दल ने अपने तरीके से साइमन कमीशन के बहिष्कार की चेष्टा की। काशी से मनमोहन गुप्त, मार्कंडेय तथा हरेन्द्र बहुत शक्तिशाली बम लेकर इसलिए रवाना हुए थे कि साइमन कमीशन को उड़ा दें परन्तु चलती गाड़ी में बम फट गया। मार्कंडेय स्वयं शहीद हो गए और बाकी दो व्यक्ति मनमोहन और हरेन्द्र को गिरफ्तार कर सजा दी गई।

नेहरू रिपोर्ट—मद्रास कांग्रेस में यह प्रस्ताव हुआ था कि एक तरफ तो साइमन कमीशन का बायकाट हो, और दूसरी तरफ देश के लोग एक विधान बनाएं। तदनुसार

दिल्ली मे एक सवदल सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मलन की ओर स 19 मई को पडित मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व मे एक कमेटी बना दी गई जिस पर यह भार सौंपा गया कि वह भारत के लिए एक विधान बनाए। यह कमटी नेहरू कमेटी के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस कमेटी म अध्यक्ष के अतिरिक्त सर तेजबहादुर सप्रू, सर अली इमाम, श्री अणे, सयद कुरशी, सुभाषचन्द्र बोस और जी० आर० प्रधान थे। इन लोगो न बडे परिश्रम से औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर एक विधान बनाया, पर किसी किसी मामले मे, जसा सनिक तथा वैदेशिक मामलो मे, कमेटी ने जो सिफारिशें की, वे औप निवेशिक स्वराज्य से भी कम थी। यह विधान बनान का ऊपरी उददेश्य चाहे कुछ भी बताया जाय, पर असली उददेश्य ब्रिटिश सरकार पर यह प्रभाव डालना था और यह दिखाना था कि हम कम मे भी सतुष्ट होने के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि हमे ये चीजें दे दी जाए।

इडिपेंडेंस लीग—सवदल सम्मेलन ने नेहरू कमटी की बनाई हुई रिपार्ट को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस के अन्दर इस समय तक कुछ ऐस लोगो का उदभव हो चुका था जो औपनिवेशिक स्वराज्य को अपना ध्येय मानने के लिए तैयार नही थे। इन लोगो के नेता जवाहरलाल तथा सुभाषच द्र बोस थे। कांग्रेस के अन्दर पूर्ण स्वतत्रता का प्रस्ताव पास कराने मे असमथ रहकर इन लोगो ने इडिपेंडेंस लीग बना ली। ये लोग बराबर प्रत्येक प्रश्न पर इसी दष्टिकोण से विचार करते थे, और करीब करीब एक पार्टी की तरह काम करते थ। ऐसे लोगा को नेहरू रिपोट स्वीकार नही हो सकती थी। फिर भी इन लोगो ने इसे इस रूप मे स्वीकार किया कि इसके आगे उन्हें आन्दोलन का अधिकार रहेगा।

कलकत्ता कांग्रेस *1928*

1928 मे कांग्रेस का अधिवेशन पडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे कलकत्ते म हुआ। इस मौके पर सुभाषचन्द्र बास स्वयसेवको के प्रधान सेनापति थे। अभी तक साइमन कमीशन भारतवष का दौरा कर रहा था और सवत्र उसका विरोध हो रहा था। गोरे तथा अधगोरे अखबार इस बायकाट स इतने बौखलाए हुए थे कि उन लोगो ने अपने पत्रो म भारतीय राष्ट्रीयता के सिर को कुचल देने का नारा दिया। पडित मोतीलाल ने अपने भाषण म बायकाट की सफलता का वणन किया। बडे मार्मिक शब्दो मे उन्होने साइमन आयोग के बायकाट म छात्रो की प्रशसा की। उन्हाने यह भी कहा कि अपनी सामाजिक बुराइयो के लिए हम स्वय जिम्मेदार हैं।

महात्माजी फिर सामने—बहुत दिनो मे महात्मा गाधी ने कांग्रेस मे सक्रिय भाग नही लिया था। इस बार वह सामने आए और उन्होन नेहरू कमेटी की स्वीकृति सबधी प्रस्ताव पेश किया। विषय निर्धारिणी कमेटी मे इस विषय पर बडी चख चख रही, क्योकि इडिपेंडेंस लीग के नेता पडित जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष बाबू ने इस पर सशोधन पेश किया। अन्त म गाधीजी को इस प्रस्ताव मे कुछ परिवतन करना पडा। बाद को जब यह प्रस्ताव उठाया गया तो सुभाष बाबू ने इस पर एक सशोधन प्रस्तुत किया जिसका समर्थन जवाहरलाल नेहरू ने किया। सीतारमैया ने लिखा है कि 'सुभाष बाबू तथा जवाहरलाल दोनो समझौते मे शरीक थे, इसलिए गाधीजी बहुत बिगड गए और उन्होने इन लोगो को डाटते हुए कहा तुम लोग जिस तरह मुसलमान अल्लाह का नाम नेते हैं, और हिन्दू कृष्ण तथा राम का, उसी तरह स्वतत्रता-स्वतत्रता रट रहे हो। पर इससे कुछ न होगा यदि इसके पीछे सम्मान न हो। यदि तुम लोग अपने वचन पर डटे नही रह सकते तो स्वतत्रता कहा से आएगी। स्वतत्रता इससे कठिन वस्तु

की बनी है, बातो के जमा-खर्च से स्वतत्रता नही आ जाती ।"

एक साल की मुहलत—इस कांग्रेस मे यह भी प्रस्ताव पास हुआ कि यदि ब्रिटिश ससद 31 दिसम्बर 1929 तक सवदल सम्मेलन की माग को पूर्ण रूप से मान ले तब तो ठीक है, पर यदि इसके पहले या इस तारीख तक माग न मानी जाय तो कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग, टैक्स बदी तथा अन्य उपायो का प्रयोग करेगी। अगले साल के लिए कांग्रेस मे लोगो से रचनात्मक कार्यक्रम अपनाने की अपील की गई। देशी रियासतों को चेतावनी दी गई कि वे अपना जनविरोधी रवैया बदलें।

कांग्रेस दुविधा मे—यह स्पष्ट था कि अब कांग्रेस विधानवादी कार्यों की असफलता से ऊब चुकी थी। प्रत्येक प्रात से क्रातिकारी आवाजें आ रही थीं। स्वय कांग्रेस मे ही स्वतत्रता सघ वालो का जोर बढ़ता जा रहा था। अब औपनिवेशिक स्वराज्य के द्वारा नौजवानो को साथ रखना असभव था। कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया था, उसका आशय स्पष्ट था। अब देश म लडाई का वातावरण उत्पन्न हो रहा था और लडाई को रोकना असभव था। विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का भी भारत पर असर हो रहा था।

ब्रिटेन से आशा—साइमन कमीशन 14 अप्रल को भारत मे अपना काम समाप्त कर चुका था। मई मे इगलड मे आम चुनाव होने वाला था। हम यहा थोडे आगे बढकर यह बता दें कि इस चुनाव मे लेबर पार्टी को अधिक सीटें मिलीं, पर इतनी नही कि वह स्वय सरकार बना सके। कुछ भी हो लेबर पार्टी ने दूसरे लोगों से मिलकर सरकार बना ली और रैमसे मैकडोनल्ड प्रधान मत्री तथा वेजवुड बेन भारत सचिव बनाए गए। रैमसे मैकडोनल्ड भारत पर एक पुस्तक लिख चुके थे, तथा जैसा कि हम बता चुके हैं, वह कांग्रेस के एक अधिवेशन के सभापति भी बनाए जाने वाले थे। इस लिए उनके पदारूढ होते ही देश मे एक आशा की लहर दौड गई। पर अभी भारतीयों को यह सीखना बाकी था कि जहा तक साम्राज्य सम्बन्धी नीति थी—ब्रिटेन की सब पार्टिया एक ही तरीके से सोचती थी।

मजदूर सगठन—आगे की घटनाओ के वर्णन करने के पहले हम कुछ पीछे मुड कर यह देख लें कि इस बीच अन्य शक्तिया क्या कर रही थी। हम पहले ही/कानपुर षडयन्त्र के वर्णन म यह बता चुके हैं कि रूस के समाजवादी भारत मे अपनी शाखा कायम करने के लिए उत्सुक थे। दुनिया के सब देशो मे कम्युनिस्ट पार्टिया स्थापित हो रही थीं। भारत मे मजदूर आन्दोलन जोर पकडता जा रहा था। यह एक बहुत ही ध्यान देने योग्य बात है कि भारत मे मजदूरो को सगठित करने म भी गाधीजी का बहुत बडा हाथ रहा है। उन्होने सन 1917 मे ही अहमदाबाद म मजदूर सघ की स्थापना की थी।

मजदूरों की क्रमिक वृद्धि—1921 मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना बम्बई मे हुई थी। उस समय तक मजदूरो की सख्या बहुत हो चुकी थी। आकडे यो हैं

साल	कारखाना की सख्या	औसत मजदूर
1894	815	349810
19૦2	1533	541634
1914	2936	950973
1918	3436	1122922
1922	5144	1361002

साल	कारखानो की सख्या	औसत मजदूर
1926	7251	1518391
1930	8148	1528302

कम्युनिस्ट पार्टी—या तो अहमदाबाद काग्रेस से ही एम० एन० राय लिखित कोई न कोई पर्चा गुप्त रूप से काग्रेस अधिवेशनो मे बटा करता था, और बाकायदा कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 1925 मे मानी जाने पर भी 1928 मे वे सक्रिय हुए और मजदूरो मे काम करने लगे।

मजदूर और साइमन कमीशन—ट्रेड यूनियन काग्रेस के तीसरे अधिवेशन मे देशबधु दास उसके सभापति हुए, फिर 1927 के दिसम्बर मे इसका जो अधिवेशन हुआ, वही से इसका महत्व शुरू होना है। इस अधिवेशन मे साइमन कमीशन के बहिष्कार, चीन की स्वतत्रता के लिए लडने वालो के साथ सहानुभूति तथा वहा पर भारतीय फौज भेजने की निन्दा के प्रस्ताव पास किए गए। जिस समय साइमन कमीशन बम्बई मे उतरा उस समय उसके बायकाट के नारे लगाते हुए काले झडे लिए मजदूरो का एक विराट जुलूस निकला था। 1928 भारतीय मजदूरो के इतिहास मे मजदूर पूजीपति सघर्ष के लिए स्मरणीय है। 16 अप्रैल को हडताल शुरू हुई। 23 अप्रैल को परशुराम यादव नामक एक मजदूर गोली से मारा गया। 1928 की हडताल से वर्ग युद्ध की बुनियाद मजबूत हुई।

मेरठ षडयत्र—ब्रिटिश सरकार को मजदूर आन्दोलन यो ही अखर रहा था। इतने मे टेड यूनियन काग्रेस का झरिया अधिवेशन हुआ जिसमे यह तय हुआ कि उसका सम्बन्ध 'लीग एगेन्स्ट इम्पिरियलिज्म' से कर दिया जाए। 20 मार्च 1929 को ये लोग जिन्होने बम्बई और बगाल की हडतालो मे प्रमुख भाग लिया था, गिरफ्तार कर लिए गए। यही बाद को मेरठ षड्यत्र नाम से मशहूर हुआ। इस षड्यन्त्र मे भी एम० एन० राय पर अभियोग था, पर वह पकडे न जा सके। बाद को जब वह चोरी से भारतवर्ष आए, तब उनको गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मुकदमा चला। इस षडयन्त्र मे सजा पाने वालो म डागे, मुजफ्फर अहमद तथा शौकत उस्मानी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

काकोरी षडयत्र के बाद क्रातिकारी दल का नेतत्व चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह पर पडा। इन लोगो के हाथो मे क्रातिकारी आन्दोलन, नौजवान भारत सभा के माध्यम से करीब करीब एक जन-आन्दोलन के रूप मे परिणत हो गया। पजाब मे बहुत दिनो तक यह अन्य किसी सस्था से भी अधिक मजबूत बना रहा। सरदार भगतसिंह केवल इसी कारण प्रसिद्ध नही हुए कि उन्होने एक मनोवैज्ञानिक मुहूर्त म सब काम किए बल्कि वह एक बहुत बडे सगठनकर्त्ता तथा सिद्धान्तवादी भी थे। काकोरी युग म क्रान्तिकारी समिति का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन था, इन लोगो ने इसका नाम बदल कर सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोशियेशन रख दिया। इस प्रकार इन्होने लक्ष्य के रूप म समाजवाद पर जोर दिया।

असेम्बली मे धडाका—भारत मे साम्यवाद का प्रचार रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार पब्लिक सेफ्टी बिल तथा ट्रेड डिस्प्यूट बिल पास करना चाहती थी। इन दोनो का उद्देश्य मजदूर आन्दोलन का दमन था। इन बिलो के विरुद्ध बहुत जोश था। अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल इस पर अपना निर्णय देने वाले थे। सब लोगो की आखें उन्ही की ओर लगी हुई थी। ऐसे समय मे एकाएक असेम्बली भवन मे दर्शको की गैलरी से दो बम

गिरे। सर जाज शूस्टर तथा सर वमनजी दलाल आदि कुछ व्यक्तियो को हल्की चोटे आइ। बम फेंकने वाले दो नवयुवक थे, सरदार भगतसिंह और वटुकेश्वर दत्त।

यती द्रनाथ दास पहले ही हम सैंडर्स हत्याकाण्ड का उल्लेख कर चुके हैं। इन्ही सब घटनाओ को लेकर लाहौर षडयन्त्र चला। इस समय की घटनाओ म लाहौर तथा मेरठ षडयन्त्र का एक बहुत ही प्रमुख स्थान है। लाहौर मे यतीन्द्रनाथ दास ने अपने साथियो के साथ राजनैतिक कैदियो के लिए विशेष व्यवहार की माग करते हुए अनशन किया, और 62 दिन अनशन कर वह 13 सितम्बर को शहीद हो गए। इन्ही दिनो बर्मा के फूगी विजय ने 164 दिन अनशन के बाद प्राण त्याग दिया। यतीन्द्रनाथ लाहौर म मरे, पर अर्थी रल पर कलकत्ता भेजी गई। प्रत्येक स्टेशन पर अपार भीड रही। कलकत्ता मे उनकी अर्थी के साथ 6 लाख व्यक्ति श्मशान तक गए।

इरविन का सब्ज बाग — महात्मा गाधी बराबर देश का दौरा करते रहे। इस बीच मे लाड इरविन छुट्टी मे इगलैंड गए हुए थे। वह 16 अक्टूबर को लौट आए और 31 अक्टूबर को उन्होंने घोषणा की कि भारत के लिए एक शासन विधान बनाया जाए। इसके साथ ही उन्होने कहा कि इस उद्देश्य से एक गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाई जाएगी। लाड इरविन का यह बयान पूरा सब्ज बाग था और एक हद तक नेतागण इस पर रीझ भी गए, पर साथ ही उन्होने यह माग पेश की कि कुछ बातो म जो अस्पष्टता है उसे दूर किया जाए। विशेष रूप से यह पूछा गया कि सरकार गोलमेज स्वराज्य का विधान बनाने के लिए ही बुला रही है या नही। जब काग्रेस कार्यसमिति की तरफ से इस प्रकार का बयान दिया गया, तो सुभाष बाबू ने उससे इस्तीफा दे दिया।

जले पर नमक — नेताओ ने जिन बातो के सम्बन्ध म गारटी मागी, उस सम्बन्ध मे सरकार की ओर से कोई विशेष बात नही कही गई। इसके विपरीत ब्रिटिश ससद मे उसी वेजवुड बेन ने, जो भारत के मित्र रूप मे एक बार काग्रेस म बोले थे, ससद म कहा, कि भारतीय व्यवहारिक रूप से औपनिवेशिक स्वराज्य तो पा ही चुके हैं। उनका यह कहना था कि राजसघ मे भारतीय सदस्य है, साम्राज्य सम्मेलन म भारतीय सदस्य हैं फिर औपनिवेशिक स्वराज्य म कमी क्या रही ? वजवुड बेन के इस छल के सम्बन्ध म बात करने के लिए बडे लाट लाड इरविन तथा महात्माजी, मोतीलाल नेहरू जिन्ना, पडित मालवीय तथा विट्ठल भाई पटेल का मिलना तय हुआ।

वायसराय की गाडी पर बम—लाड इरविन कही बाहर गए थे और नेताओं से बातचीत करने के लिए दिल्ली लौट रहे थ। उधर कई दिन पहले से क्रातिकारी वायसराय की टोह म रेल लाइन के नीचे बम लगाए प्रतीक्षा कर रह थे। जब वायसराय की गाडी बमो के ऊपर आई तो बटन दबा दिया गया और बडे जोर का धडाका हुआ। थोडी देर हुई यानी कुछ सैकेण्ड की इसलिए वायसराय का डिब्बा न उखडकर उसमे तीसरा डिब्बा उड गया। इस कार्य मे चन्द्रशेखर आजाद तथा यशपाल का प्रमुख भाग रहा।

कोई गारटी नहीं—वायसराय नेताओ को इस तरह का कोई गारटी नही दे सके कि जो गोलमेज बुलाई जाएगी उससे औपनिवेशिक स्वराज्य दिया ही जाएगा। इस प्रकार यह प्रमाणित हो गया कि लार्ड इरविन ने 31 अक्टूबर को जो घोषणा की थी, वह केवल भारतीयो को भ्रमजाल मे डालकर निष्क्रिय कर देने के लिए थी। एक अनुमान यह भी है कि श्रमिक सरकार कुछ करना चाहती थी, पर वायसराय की 31 अक्टूबर वाली घोषणा से ससद मे इतना कोहराम मचा कि श्रमिक दल को पीछे हट जाना पडा।

7

पूर्ण स्वतन्त्रता की माग

1929 की लाहौर काग्रेस से काग्रेस मे पूण स्वतन्त्रता की माग का युग आरभ हुआ। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि यह काग्रेस जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे हुई और वे ही 1947 मे अग्रेजो के जाने के बाद देश के पहले प्रधान मन्त्री बने।

लाहौर काग्रेस 1929

पडित जी जब से यूरोप से लौटे तब से बराबर पूण स्वतन्त्रता और समाजवाद का नारा दे रहे थे। ऐसे समय मे पडित जवाहरलाल नेहरू को सभापति का आसन देना पुराने नेताओ के लिए बहुत ही बुद्धिमत्ता की बात थी क्योकि लाहौर मे विचारो का प्रबल सघष होने वाला था। कलकत्ता काग्रेस मे ब्रिटिश सरकार को जो स्मरणपत्र दिया गया था, उसके उत्तर मे उन्होने सब्ज बाग दिखाया, और जब इस सब्ज बाग की जाच की गइ तो पता लगा कि वह एक मरीचिका मात्र है। नौजवान दल उत्तेजित था। लाहौर तथा मेरठ षडय त्र के कारण लोगो का जोश उबाल बिन्दु तक पहुच रहा था। आम जनता मे जवाहरलाल और सुभाष बाबू इनके नेता थे।

काग्रेस के अन्दर जवाहरलाल का सिहनाद—जवाहरलाल ने अपने अध्यक्षीय अभिभाषण मे अपने को प्रजातन्त्रवादी तथा समाजवादी घोषित किया। उन्होने कहा कि मुझे राजाओ मे कोई विश्वास नही। उन्होने रणनीति के तौर पर अहिंसा की प्रशसा की। उन्होने यह साफ कर दिया कि उनके निकट स्वतन्त्रता का अथ ब्रिटिश सम्बन्ध से बिल्कुल अलग हो जाना है।

सग्राम का प्रारम्भ—अधिवेशन मे लाट साहब की गाडी पर आक्रमण की कडे शब्दो म निन्दा की गई। मद्रास काग्रेस मे ही पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास हो गया था, पर यह प्रस्ताव निरथक था। यह कलकत्ते मे नेहरू रिपोट की स्वीकृति तथा इस बीच होने वाली अन्य घटनाओ से साबित हो गया था। अतएव कलकत्ता काग्रेस के निश्चय के अनुसार एक साल की मियाद बीत जाने पर 31 दिसम्बर को रात के 12 बजे बाद पूण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास कर दिया गया। अब यह कह दिया गया कि नेहरू रिपोट की पूर्ति से भी भारत सतुष्ट नही हो सकता, असेम्बली तथा कौंसिल के सदस्यो को यह हिदायत दी गई कि वे धारासभाओ की सदस्यता से इस्तीफा दे दें। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी को यह अधिकार दिया गया कि वह पूण स्वतन्त्रता को ध्येय मानकर आन्दोलन शुरू कर दे। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह जब और जहा चाहे करबन्दी तथा सत्याग्रह का आन्दोलन चलाए।

सुभाष बाबू की नई पार्टी—लाहौर काग्रेस ने एक तरह से काग्रेस तथा देश म नए सिरे से जान फूक दी। सुभाष ने इस अवसर पर श्रीनिवास आयगर स मिलकर काग्रेस डिमोक्रेटिक पार्टी नाम से एक दल की स्थापना की चेष्टा की। इस बार पडित

जवाहरलाल उनके साथ नही थे। वह काग्रेस के सभापति थे। यह पार्टी पनप नही सकी और पता होते ही मर गई क्योकि उसके बाद इस के सम्बन्ध म कुछ सुनाई नही पडा अवश्य इसके कुछ ही दिनो बाद वह गिरफ्तार हो गए फिर पार्टी कौन चलाता ?

स्वतन्त्रता दिवस—लाहौर काग्रेस के बाद से प्रत्येक 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाने लगा, तथा स्वतन्त्रता सम्बन्धी प्रतिज्ञा पत्र पढा जाने लगा। इस प्रतिज्ञा पत्र म यह कहा जाता था कि भारतीयो को स्वतन्त्रता प्राप्त करने का अविच्छेद्य अधिकार है क्योकि ब्रिटिश शासन स भारतवर्ष का आर्थिक, राष्ट्रीय, नैतिक तथा सास्कृतिक पतन हुआ।

देश मे जोश—26 जनवरी 1930 को सारे भारतवर्ष म स्वतन्त्रता दिवस जिस जोश के साथ मनाया गया, उससे यह स्पष्ट हो गया कि देश म कितना प्रबल जोश है। 25 जनवरी को वायसराय ने धारासभा क सम्मुख जो भाषण दिया था उससे यह साफ हो गया था कि सरकार कुछ लेना देना नही चाहती। इस कारण स्वतन्त्रता दिवस और भी जोरो से मनाया गया।

गाधीजी की ग्यारह शर्तें—महात्मा गाधी ने सरकार की सच्चाई की परीक्षा करने के लिए 11 शर्तें रखी—

(1) सम्पूर्ण मादक द्रव्य निषेध, (2) एक रुपया एव शिलिंग चार पेंस के बराबर हो (3) लगान कम स कम आधा कर दिया जाए और इस धारासभा के अधीन कर दिया जाए (4) नमक कर उठा लिया जाए, (5) युद्ध सम्बन्धी व्यय प्रारम्भिक तौर पर आधा कर दिया जाए (6) लगान की कमी को देखते हुए बडी-बडी नौकरियों के वेतन कम से कम किए जाए (7) विदेशी कपडा के आयात पर निषेधात्मक कर लगाया जाए, (8) भारतीय समुद्र तट को केवल भारतीय जहाजो के लिए सुरक्षित करके कानून बनाया जाए (9) जिन राजनतिक कैदियो को हत्या या हत्या के प्रयत्न मे सजा मिली है, उनके अतिरिक्त अन्य सब राजनतिक कैदियो को छोड दिया जाए या मामूली कानूनी ट्रिब्यूनलो मे उनका मुकदमा चलाया जाए। सब राजनतिक मुकदमे वापस ले लिए जाए। धारा 124 अलिफ तथा 1818 के रेगूलेशन 3 को रद्द कर दिया जाए। भारत के बाहर जो देश निकाला पाए हुए लोग हैं उन्हे लौटने दिया जाए, (10) खुफिया पुलिस का महकमा तोड दिया जाए, अथवा उस जनता के अधिकार म रखा जाए, (11) सबको आत्म रक्षार्थ हथियार रखने का लाइसेंस मिले, और जनता का उस पर अधिकार हो।

ब्रिटिश सरकार तैयार नहीं—कहना न होगा कि सरकार ने इन शर्तों को मजूर नही किया। फरवरी तक काग्रेस की ओर से धारासभा मे गए सब सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया। इस बीच धर पकड भी शुरू हो गई। सुभाष तथा उनके ग्यारह साथी 23 जनवरी को गिरफ्तार कर लिए गए।

कैदियों का वर्गीकरण—हम पहले ही बता चुके है कि यतीन्द्रनाथ दास राजनैतिक कैदियो की मागो के लिए अनशन करते हुए शहीद हुए थे। इसके फलस्वरूप पजाब म जेल कमेटी बैठी। लाहौर के क्रातिकारी कैदियो ने समझा कि कही कमेटी बनाकर सरकार समय बिता तो नही रही है, जिससे उन्हे सजा हो जाए और वे काकोरी षडयन्त्र के दण्डितो की तरह सरकार द्वारा उल्लू न बनाए जाए। इसके अतिरिक्त उन्होने यह सोचा कि यतीन्द्रनाथ दास का त्याग व्यर्थ न जाए। इसलिए उन्होने यतीन्द्रनाथ दास की मागो को लेकर अनशन कर दिया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध जेलो के अन्दर सग्राम मे इस अनशन का विशेष महत्त्व है। इस अनशन मे तीन काकोरी कैदियो ने भी बरेली जेल

म भाग लिया, और वे भगतसिंह आदि के बाद तक याने तब तक डटे रहे जब तक उनका वर्गीकरण नही किया गया। काग्रेस कार्यसमिति ने अपने 14, 15, 16 फरवरी के अधिवेशन म इस पर भी एक प्रस्ताव पास किया। सरकार ने 19 फरवरी को एक विज्ञप्ति निकालकर जेल म ए बी सी श्रेणियो की सृष्टि की। इससे यतीन्द्रनाथ की मार्गें पूरी नही हुइ, पर कुछ प्रगति अवश्य, इस अथ मे हुई कि गोरो व कालो का भेद दूर हुआ। सरकार ने इस वर्गीकरण म राजनैतिक या अराजनैतिक कोई बात नही रखी, उसने हैसियत के आधार पर यह वर्गीकरण किया।

डाडी मार्च—14, 15 और 16 अप्रैल को साबरमती मे काग्रेस कायसमिति की एक बठक हुई। इसमे गाधीजी ने घोषणा की कि वह नमक सत्याग्रह से काम शुरू करेंगे। महात्माजी ने 2 माच को इस आशय का एक पत्र लाड इरविन को लिखा था। 12 माच से गाधीजी ने 79 आश्रमवासियो के साथ डाडी यात्रा शुरू की। पहले ही से देशी तथा विदेशी अखबारो के सवाददाता वहा मौजूद थे, और यह यात्रा बडे नाटकीय ढग से चलती रही। कायक्रम यह था कि समुद्र किनारे पहुचकर वे समुद्र के जल से नमक बनाएग। डाडी पहुचने के रास्ते मे जितने भी पडाव आए, *गाधीजी सवत्र व्याख्यान देते* गए। हजारो की भीड उनके व्याख्यान को सुनने के लिए एकत्र होती थी।

नमक सत्याग्रह पर दमन—5 अप्रैल का गाधीजी डाडी पहुचे। फिर उन्होने वहा पर कायक्रम के अनुसार नमक कानून तोडा। गाधीजी ने कायक्रम इस प्रकार रखा था कि 6 अप्रैल से ही राष्ट्रीय सप्ताह भी पडता था। स्मरण रहे कि यह राष्ट्रीय सप्ताह जलियावाला बाग की स्मृति म मनाया जाता था। गाधीजी ने तय किया था कि 5 अप्रल को मैं कानून तोडकर नमक बनाऊगा और 6 अप्रैल से देश मे सावजनिक रूप से नमक बनाना शुरू हा जाएगा। या तो सरकारी प्रवक्ताओ ने यह कहा था कि जिस तरह से गाधीजी नमक बनाने को कहते हैं, उसमे खच अधिक पडेगा, पर जब सावजनिक रूप से नमक बनाना शुरू हो गया, तब सरकार के कान खडे हो गए और दमन का दौर शुरू हो गया। नमक बनाने मे *सत्याग्रहियो का उद्देश्य आर्थिक न होकर राजनैतिक था।* गाधीजी के बहुत से अनुयायियो ने भी नमक सत्याग्रह का नाम सुनकर नाक भौ सिकोडी थी, पर वे यह नही जानते थे कि गाधीजी की नाटकीय बुद्धि बहुत जबदस्त थी, और यह यह जानत थे कि किस प्रकार जनता के मन पर प्रभाव पैदा किया जाता है।

गिरफ्तार न होने पर अन्य उपाय—गाधीजी सोचते थे कि डाडी मे नमक बनाते ही वह गिरफ्तार कर लिए जाएगे, पर ऐसा नही हुआ। उनके तरीके मे गिरफ्तार होना ही सफलता का प्रारम्भ था, इसलिए जब वह डाडी म गिरफ्तार न हो सके, तो उन्होने दूसरा कायक्रम बनाया। *धरसना मे सरकारी नमक का गोदाम था। गाधीजी ने तय* किया कि इस गोदाम पर धावा बोलकर सरकारी नमक पर कब्जा कर लिया जाए। कहा गया कि जिस प्रकार पानी और हवा पर सबका अधिकार है, उसी प्रकार नमक पर सबका अधिकार है। यदि सरकार ने नमक इकटठा कर रखा है ता यह अन्याय है। यह धावा अहिंसात्मक था।

गाधीजी गिरफ्तार—गाधीजी ने धरसना पर धावा बोलने के पहले वायसराय को पत्र लिखा। अब सरकार के लिए चुप रहना असभव हो गया क्योकि यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से काग्रेस अब भी अहिंसा पर ही डटी थी, पर धरसना पर धावे से स्थिति बिगडने का डर था। अब सरकार ने उन्हे गिरफ्तार करना तय किया, और 5 मई को दिन के 1 बजकर 10 मिनट पर वह गिरफ्तार कर लिए गए।

नमक गोदामों पर हमला—गाधीजी की गिरफ्तारी से आदोलन को बहुत

उत्तेजना मिली। भारत भर म ज़ोर की हडताल हुई। गाधीजी के बाद धरसना पर धावा करने के लिए वृद्ध नेता तैयबजी चुने गए। वह भी गिरफ्तार हो गए। इसके बाद श्रीमती नायडू सामने आइ। वह भी गिरफ्तार हो गई। फिर तो आम तरीक से धरसना पर स्वयसेवको का धावा होने लगा। सरकार की तरफ मे लाठी चाज की नीति बरती जाने लगी। धरसना की तरह नमक के अन्य गोदामो पर भी हमले हुए और कही-कही तो स्वयसेवक नमक लेकर भागने मे समथ भी हुए।

आदोलन का विस्तत रूप - गाधीजी की गिरफ्तारी के बाद इलाहाबाद में कायसमिति की बैठक हुई। इसमे यह तय हुआ कि नमक सत्याग्रह तो जारी रखा ही जाए, साथ ही सत्याग्रह के क्षेत्र का विस्तत किया जाए, कायसमिति ने निश्चय किया कि विदेशी वस्त्र का पूण बायकाट किया जाए, जो स्टाक मौजूद है, उसे बेचा न जाए, और कपडो के जो आडर विदेशो म दिए गए हैं उन्हें मसूख कर दिया जाए। कमेटी ने तय किया कि जिन स्थानो म जमीन का रैयतवाडी बन्दोबस्त है जसे महाराष्ट्र कर्नाटक, बगाल, बिहार तथा उडीसा मे वहा चौकीदारी टैक्स न दिया जाए। कार्य समिति न राय दी कि जगल कानून तोडा जा सकता है तथा और भी जो इस प्रकार के कानून हैं, वे प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की आज्ञा से तोडे जा सकते हैं। समिति ने विलायती बैंक, बीमा, जहाज़ तथा अन्य कम्पनियो के बायकाट का भी नारा दिया। इस बीच लार्ड इरविन ने एक आर्डिनेन्स से प्रेस की स्वतन्त्रता करीब करीब खत्म कर दी। इसके प्रति वाद मे कई अखबारो न प्रकाशन बन्द कर दिया। कायसमिति न इनकी सराहना करते हुए अन्य अखबारो से भी ऐसा करने के लिए कहा।

सफल बायकाट तथा धावे – इन दिनो विदेशी वस्त्र का बायकाट इतने जोरो से हुआ कि दूकानो म माल पडा पडा सडता रहा। प्रत्येक शहर और गाव मे नमक सत्याग्रह हुआ। नमक के किसी किसी कारखाने पर 15 हज़ार लोगो ने एक साथ हमला किया। बडाला मे ऐसा ही हुआ। कर्नाटक म शनीकट्टा म दस से पन्द्रह हज़ार लोगो ने एक-एक बार मे एक साथ हमला किया और हजारो मन नमक उठा कर ले गए।

दमन का तांता —सरकार न इन बातो की ओर बिलकुल ध्यान नही दिया। अखबार तथा कायकर्त्ताओ का दमन और गिरफ्तारी जारी रही। 131 अखबारो से दो लाख चालीस हज़ार की जमानत ली गई। धीरे धीरे कांग्रेस कमेटिया भी गर कानूनी करार दी जाने लगी और जून क अन्त मे कांग्रेस म कांग्रेस की कायसमिति भी गर कानूनी करार दे दी गई, और मोतीलाल नेहरू भी गिरफ्तार हो गए।

भयकर अत्याचार –यह सभव नही कि गिरफ्तारियो के ब्योरे दिए जाए। गिरफ्तारी, गोली चलाना तथा लाठी चाज आम बात हो गई। पेशावर म पठानो ने इस समय विशेष बहादुरी दिखलाई। इसका सारा श्रेय खान-बन्धुओ को है। खान अब्दुलगफ्फार खां बहुत पुराने जनसेवक थे। 1911 मे उन्होने एक सस्था कायम की थी जिसका नाम अफगान यूथ लीग था। 1928 से उन्होने खुदाई खिदमतगार आदोलन प्रारम्भ किया। 1930 से यह सस्था कांग्रेस के अतगत सम्मिलित हो गई। इस समय खुदाई खिदमतगारो पर बहुत बड अत्याचार हुए। लोगो को अपमानित करने के लिए उन्हें जबदस्ती पकड कर माफीनामे पर अगूठा लगवाया जाता था फिर वह सबको दिखलाया जाता था। बहुत से वीर पठानो ने इस पर अगूठा ही कटवा डाला कि न रहे बांस, न बजे बासुरी। खान अब्दुलगफ्फार खा के घर मे आग लगा दी गई। उनके भाई डाक्टर खान साहब का मकान जमीदोज कर दिया। अरबाब अब्दुल गफूर को बेंत लगाए गए। लोगो के कपडे उतारकर सावजनिक स्थानो मे नगा किया गया। पेशावर की

घटनाए खुद म एक कहानी हैं। पेशावर म अंग्रेजी राज्य कई दिनो के लिए खत्म सा हो गया था। सेना भी प्रभावित हुई। गढवालियो न चन्दनसिंह गढवाली के नेतत्व म जनता पर गोली चलाने से इकार कर दिया। इस प्रकार च दनसिंह ने अहिंसा की वह पराकाष्ठा दिखलाई जिसके कारण सनिक कानून के अनुसार उन्ह गोली मारी जा सकती थी।

शोलापुर मे भी अपनी सरकार हो गई थी।

लगानबन्दी का जोर—लगानबन्दी आदोलन का विशेषकर गुजरात, कर्नाटक, सयुक्त प्रात और बगाल मे जोर रहा। गुजरात के हजारो लोग लगानबन्दी के बाद जाकर बडौदा म बस गए। बगाल के मेदिनीपुर के कांथी नामक स्थान के लोगो ने विशेष बहादुरी दिखलाई।

चटगाव शस्त्रागार काण्ड—इस बीच क्रातिकारी भी अपना काम कर रहे थे। गाधीजी 5 अप्रैल को डाडी पहुचे। 18 अप्रैल को चटगाव के करीब 74 नौजवानो ने सूर्य सेन क नेतत्व म एक साथ पुलिस लाइन तथा टेलीफान एक्सचेंज पर आक्रमण कर दिया। य चार टुकडियो मे बटे हुए थे। सरकार ने तोप से भी काम लेना शुरू कर दिया। तब क्रातिकारी भागकर जलालाबाद पहाडी पर चढ गए। अन्तत इस लडाई म क्रातिकारी हार गए। उनम से 19 तो जलालाबाद की पहाडी पर ही शहीद हो गए। इस प्रकार क्रातिकारियो ने इस एतिहासिक अवसर पर एक आदश रखना चाहा। चटगाव वालों का उद्देश्य यह था कि लोग उनके उदाहरणो को अपनाकर शस्त्रो पर कब्जा करें। इन्ही दिनो अ य क्रातिकारी घटनाए भी हुइ जिनका पथक वणन यहा नही किया जा सकता है। सूर्य सेन अन्त मे पकडे गए और उन्ह फासी हुई।

सप्रू जयकर वार्ता—जुलाई 1930 मे सर तेज बहादुर सप्रू और एम० आर० जयकर न सरकार और काग्रेस के बीच एक वार्ता चलाई। इस सबध मे वे जेल मे नेताओ से भी मिले पर इसका कोई विशेष नतीजा नही निकला।

कथित गोलमेज—सरकार ने 12 नवम्बर 1930 को लन्दन मे गोलमेज की बठक बुलाई। इस बठक मे राजाओ की तरफ से 16, ब्रिटिश भारत से 56 तथा विलायत से 13 प्रतिनिधि शामिल लिए गए। इसमे काग्रेस का कोई प्रतिनिधि नही था और जो लोग प्रतिनिधि बनाए गए, वे सरकार द्वारा नामजद थे। इस सम्मेलन मे उपस्थित भारतीयो म श्रीनिवास शास्त्री तथा जिन्ना प्रमुख थे। ब्रिटेन के प्रधान मत्री मिस्टर मक्डोनल्ड ने गोलमोल बाते शुरू की। थोडे ही दिनो मे सबने यह समझ लिया कि सम्मेलन से कोई समस्या हल नही होगी।

नेतागण रिहा—25 जनवरी 1931 को वायसराय ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसके अनुसार 1930 की पहली जनवरी से जितने लोग कार्यसमिति के मेम्बर हुए थे, उनको रिहा कर दिया गया। मोतीलाल जी बीमारी के कारण पहले ही छूट चुके थे। साथ ही काग्रेस कार्यसमिति पर से सब तरह की रोक उठा ली गई। एक तरफ तो सत्याग्रह जारी रहा, और दूसरी तरफ गिरफ्तारिया जारी रहीं। कार्यसमिति के मौलिक तथा बाद के सब सदस्य 31 जनवरी को इलाहाबाद मे एकत्र हो चुके थे। पर इस बीच लदन से श्रीनिवास शास्त्री तथा श्री सप्रू ने तार भेजा था कि अभी कोई फैसला न लिया जाय। आलोचना होती रही, पर कोई निणय प्रकाशित नही किया गया। इस बीच 6 फरवरी 1931 को मोतीलाल नेहरू का देहान्त हो गया। देश का एक महान त्यागी नेता उठ गया।

इस बीच लदन से सप्रू तथा शास्त्री लौट आए। उनके द्वारा यह तय हुआ कि महात्माजी 17 फरवरी को लार्ड इरविन से मिलें। ऐसा लगता था कि अब कुछ

होकर रहेगा।

चन्द्रशेखर आजाद—इन्ही दिनो क्रांतिकारियो के महान नेता चन्द्रशेखर आजाद जवाहरलाल नहरू से मिले। जवाहरलाल ने इसका विवरण अपनी आत्मकथा म लिखा है। वे 27 फरवरी को इलाहाबाद के एक पार्क मे पुलिस द्वारा घेर लिए गए और गोलियो का जवाब गोलियो से देते हुए शहीद हो गए।

गाधी इरविन पैक्ट—गाधीजी तथा वायसराय मे सुदीर्घ बातचीत के बाद 5 मार्च को एक समझौता हुआ। यह समझौता गाधी इरविन पक्ट नाम से प्रसिद्ध है। यह सन्धि बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए सक्षेप म यहा दी जा रही है

(1) गाधीजी और वायसराय के बीच बातचीत के बाद एक अस्थाई सन्धि हुई है, इसलिए सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय, और सरकार की ओर से भी तदनुकूल कारवाई की जाय। (2) शासनविधान के प्रश्नो पर आगे विचार होगा, किन्तु उसके सम्बन्ध मे मुख्य बातें इस प्रकार तय की गइ (क) शासन का स्वरूप फेडरेशन का होगा (ख) केन्द्र म उत्तरदायित्व रहेगा, (ग) विदेश नीति, रक्षा नीति आदि भारत क हित की दृष्टि से रखी जाएगी। (3) गोलमेज कान्फ्रेंस म काग्रेस के प्रतिनिधि लिए जाएगे। (4) सन्धि का सम्बन्ध सत्याग्रह आन्दोलन स भी है। (5) सत्याग्रह आन्दोलन वास्तविक रूप मे बन्द कर दिया जाएगा। (6) विदेशी कपडो के बहिष्कार का राजनैतिक रूप हटा लिया जाएगा। भविष्य मे ऐसा बहिष्कार केवल आर्थिक उन्नति के लिए किया जाएगा। (7) शराब और विलायती कपडो पर धरना कानूनी हद के अन्दर रहेगा। (8) पुलिस के अत्याचारो की जाच के लिए गाधीजी ने अपना आग्रह वापस ले लिया। केवल सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित किया गया। (9) दमन बन्द किया जाएगा। (10) आर्डिनेन्स वापस ले लिए जाएगे, सिवाय आर्डिनेन्स न 1 सन 1831 के जो आतकवादी आन्दोलन के विरुद्ध है, और इन्हे रदद न किया जाएगा। (11) सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले मे संस्थाओ को गैरकानूनी करार देने के लिए जो आदेश जारी किए गए हैं वे वापस ले लिए जाएगे। (12) मुकदमे उठा लिए जाएगे। (13) सत्याग्रह आन्दोलन के कदी छोड दिए जाएगे, किन्तु हिंसात्मक अपराधो के कदी नहीं छोडे जाएगे। (14) जुर्माने माफ होगे, किन्तु वसूलशुदा जुर्माने लौटाए नही जाएगे। (15) अतिरिक्त पुलिस के लिए लगाया हुआ टक्स बद होगा। (16) जब्त की हुई जायदाद वापस होगी। (17) 1930 के 9 न आर्डिनेन्स के मुताबिक कब्जा की हुई जायदाद वापस कर दी जाएगी। (18) सरकार जिला अफसरो को हिदायत देगी कि अगर किसी जगह लगान गैर कानूनी तौर पर वसूल हुआ है तो उसकी जाच हो। (19) जो नौकरिया स्थायी रूप से भर गई हैं वे न मिल सकेंगी, शेष सब फिर से मिल जाएगी। जहा नमक बन सकता है, वहा अपने लिए या गाव मे ही बेचने के लिए नमक बनाया जा सकेगा। (20) यदि काग्रेस शर्तों का यथोचित पालन नही करेगी, तो सरकार उचित कारवाई करेगी।

पैक्ट पर विचार—यदि गहराई के साथ देखा जाय तो गांधी इरविन समझौता सिर्फ इसी माने में एक बडी जीत थी कि सरकार ने जिस सस्था को कल तक गैरकानूनी करार दे रखा था, उसी के नेता के साथ उसे झुककर समझौता करना पडा। कांग्रेस और सरकार म पहली सन्धि होने के कारण भी यह महत्वपूर्ण है। पर जसा कि पामदत्त ने लिखा है कि कांग्रेस इस पैक्ट म किसी बात को मनवाने से यहां तक कि नमक कानून हटवाने म भी समर्थ नहीं रही। अहिंसा की प्रतिमूर्ति चन्द्र सिंह गढ़वाली की रिहाई के लिए भी किसी ने नहीं कहा।

इस समय आन्दोलन बहुत तेजी से ऊपर की ओर जा रहा था और बिलकुल क्रांतिकारी परिस्थिति हो रही थी। बायकाट इतना सफल हुआ था कि विलायत के कारखानों में रोना मच गया था। आन्दोलन घट रहा हो ऐसी बात नही थी बल्कि वह और उग्र होता जा रहा था। कई स्थानों पर तो समानान्तर सरकार कायम हो गई थी। जनता ने लड़ाई को अपने हाथ में ले लिया था। ऐसी हालत में यह समझौता हुआ। अवश्य ही ब्रिटिश सरकार ने तभी समझौता किया, जब वह अपनी परिस्थिति को खतरनाक पाने लगी।

कराची अधिवेशन 1930

इन्ही परिस्थितियों में मार्च के अन्त में कराची में सरदार वल्लभ भाई पटेल के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। जवाहरलाल नेहरू पर समझौता सबधी प्रस्ताव रखने का भार डाला गया। उन्होने लिखा है कि इस प्रस्ताव को 'मैंने मानसिक संघर्ष तथा बेचैनी में भी रखना स्वीकार किया।' सुभाष बाबू ने राष्ट्रीय एकता दिखाने के लिए इस प्रस्ताव का विरोध नही किया। इस प्रकार गांधी जी की पूरी विजय रही। कुछ युवकों ने अवश्य भगतसिंह की फांसी पर उनको काले झंडे दिखाए।

कानपुर का दंगा और विद्यार्थीजी की शहादत—जिस दिन भगतसिंह को फांसी हुई, उस दिन कानपुर की हालत बहुत खतरनाक थी। यही हालत बहुत से स्थानों की थी। पर यही क्रांतिकारी परिस्थिति आपस की भयंकर मारकाट में परिणत हो गई। सैकड़ों हत्याएं हुई। इस सम्बन्ध में हिंदू मुस्लिम एकता के अनन्य उपासक, क्रांतिकारियों के चिरमित्र सपादक – केसरी गणेश शंकर विद्यार्थी, जो पिछले दिन कई सौ मुसलमानों को बचा चुके थे, मुसलमानों के ही हाथों 25 मार्च को मारे गए। लाशों के ढेर से उनकी फूली हुई लाश हाथ पर गुदे हुए नाम से पहचानी गई। कांग्रेस अधिवेशन में इसकी खबर पहुंची। उनकी हत्या तथा भगतसिंह की फांसी से कराची में मातम छा गया।

भगतसिंह पर प्रस्ताव—इस अधिवेशन में समझौते का प्रस्ताव तो मुख्य था ही, पर भगतसिंह तथा उनके साथियों पर रखे गए प्रस्ताव को लेकर काफी झड़प हुई। प्रश्न था कि प्रस्ताव के साथ ये शब्द रहें कि न रहें 'कांग्रेस किसी भी रूप में राजनैतिक बल प्रयोग से अपने को अलग रखती है तथा उसे नापसंद करती है।" अधिवेशन में प्रस्ताव इन्ही शब्दों के साथ पास हुआ, पर कांग्रेस स्वयंसेवकों की कान्फ्रेंस में यह प्रस्ताव इन शब्दों को निकालकर पारित किया गया।

अन्य प्रस्ताव—कांग्रेस ने अन्य अनेक विषयों पर प्रस्ताव पास किए जिनमें सत्याग्रहियों को अभिनंदित किया गया, साम्प्रदायिक दंगों की निन्दा की गई, शराबबंदी की प्रशंसा की गई, खद्दर प्रचार का समर्थन किया गया, शराब तथा विलायती कपड़ा की दुकानों पर शांतिपूर्ण पिकेटिंग की सिफारिश की गई, सरहदी प्रान्त के लोगों को आश्वासन दिया गया कि जो भी शासन सुधार होगा वह वहां भी लागू होगा। वर्मा का भारत से अलग हो जाने का हक स्वीकृत हुआ, पर सरकार उसे अलग कर रही है इस बात की निन्दा की गई, क्योंकि यह बताया गया कि ऐसा करने में सरकार का उद्देश्य बर्मा को हड़पना है न कि उसकी भलाई करना।

मौलिक अधिकार के प्रस्ताव—कराची कांग्रेस में मौलिक अधिकारों पर भी एक प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव की कुछ खूबियां ये थीं किसी को खिताब नहीं दिया जाएगा, मृत्युदण्ड नही रहेगा, लगान घटाने का वायदा किया गया, तय हुआ कि किसी सरकारी नौकर को पांच सौ रुपयों से अधिक तनख्वाह नही मिलेगी, विदेशी वस्तु तथा

विदेशी सूत को देश से निकालने का वायदा किया गया, कहा गया कि प्रधान उद्योग-धंधा पर खाना रेलो मार्गों जहाज तथा यातायात के अन्य सार्वजनिक साधना पर राष्ट्र का कब्जा रहेगा, किसानो की कर्जदारी घटाने तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सूदखोरी पर नियत्रण करने का वादा किया गया, तथा सब नागरिको को सैनिक शिक्षा देने का वादा किया गया।

खिंच उत्पन्न —कराची अधिवेशन के बाद ही कांग्रेस वाला को यह ज्ञात होने लगा कि गाधी इरविन समझौते का पालन काग्रेस की तरफ से तो हो रहा है पर सरकार की तरफ से उसका पालन नही हो रहा है। लार्ड इरविन 18 अप्रल को ही भारत छोड़ कर चले गए, और उनकी जगह लार्ड विलिग्डन वायसराय होकर आए। लार्ड विलिग्डन मानो काग्रेस को कुचलने को ही आए थे। परिस्थिति इतनी बिगड गई कि गाधीजी ने कार्यसमिति की राय लिए बिना गोलमेज म जाना अस्वीकार कर दिया। इसके बाद गाधीजी के साथ सरकार की फिर बातचीत हुई। गाधीजी लाट साहब से मिले और चूकि बडे लाट बारदोली के मामले मे जाच करने पर राजी हो गए इसलिए वे जन-तंत्र 29 अगस्त को विलायत के लिए रवाना हुए। सीतारमैया ने लिखा है कि यद्यपि गाधीजी विलायत के लिए रवाना हो गए थे, पर वह निराश ही गए।

गोलमेज की भवद —गोलमेज मे जो लोग गए थे वे सरकार द्वारा नामजद थे। इन लोगो की राय एक दूसरे से मिलती नही थी, फिर तृतीय पक्ष भी बराबर मन्त्रणा रहता था। इसलिए सब मामलो मे सारे ससार के सामने काफी भद्द रही और प्रत्येक विषय मे अन्तिम निर्णय सरकार पर छोड़ा जाता रहा। गाधीजी ने भरसक कोशिश की कि सरकार की तरफ स कोई निश्चित आश्वासन मिले, पर वे सफल नहीं हुए। यह सारा सम्मेलन, जसा कि सरकार चाहती थी एक तमाशे मे परिणीत हो गया। राष्ट्रीय माग की आलोचना तो कम रही, अधिकतर आलोचना इसी बात पर रही कि अल्पसख्यकों का प्रश्न कैसे सुलझाया जाय और इस प्रश्न को सुलझाने की जितनी कोशिश की गई वह उतना ही उलझता गया।

ब्रिटेन मे मन्त्रिमण्डल परिवतन—इसी बीच विश्वव्यापी मन्दी के कारण ब्रिटेन मे मन्त्रिमडल का पतन हो गया और सयुक्त मन्त्रिमडल बना। मिस्टर मकडोनल्ड प्रधान मन्त्री बने, पर वह नाम मात्र के लिए थे। सर सैमुएल होर भारत सचिव बने।

भारत में दमन—चाहे यह मन्त्रिमडल के परिवतन के कारण हो, चाहे इस कारण कि सरकार इस बीच काग्रेस स लडाई की सब तैयारी कर चुकी थी गाधीजी ने लौटते ही भारतवर्ष मे दमन की स्थिति पाई। गाधीजी 1 दिसम्बर को गोलमेज बैठक से विदा लेकर 28 दिसम्बर 1931 को भारतवष पहुचे।

क्रातिकारियो के काय—इस बीच भारतवष में जो घटनाए हुई थी, उनका सक्षेप मे दिग्दशन कराया जाता है। क्रातिकारियो ने अपना आन्दोलन पूरे उत्साह से जारी रखा था। 25 अगस्त को ही कलकत्ते म मिस्टर टेगट पर फिर हमला हुआ। 29 अगस्त का ढाका मे पुलिस इसपेक्टर जनरल लोमैन पर विनयकृष्ण बोस ने गोली चलाई, वे दो दिन बाद मर गए। छोटे मोटे कितने ही हमले हुए। 8 दिसम्बर 1930 को कलकत्ते की रायटर्स बिल्डिग म जेल विभाग के इसपेक्टर जनरल मिस्टर सिमसन पर गोली चलाई गई और वे वही ढेर हो गए।

सयुक्त प्रात की हलचलें जिस समय गाधीजी भारतवष लौटकर आए, उस समय, विशेषकर सयुक्त प्रात के किसानो की हालत बहुत खराब हो गई थी। काग्रेस के समझाने पर किसानो ने भरसक लगान अदा किया पर एक बिन्दु ऐसा आ गया, जहा से

आगे वे लगान देने मे असमर्थ थे।

सीमा प्रांत में दमन—सीमा प्रांत मे भी हालत बहुत विचित्र हो रही थी। सरकार को यह अखर रहा था कि पठानो मे काग्रेस का प्रचार हो रहा है। एक लाख लाल कुर्तीवाले तयार थे। खान अब्दुलगफ्फार खा को सीमा प्रांत के चीफ कमिश्नर के दरबार म बुलाया गया। उन्होंन वहा जाने स इन्कार कर दिया। इस पर गाधीजी के लौटने क कुछ ही दिन पहले खान बधु गिरफ्तार कर लिए गए। इस प्रकार सीमाप्रांत म काग्रेस और सरकार की संधि खत्म हो गई।

काले बादल—गाधीजी जब भारतवर्ष पहुचे, तो जवाहरलाल नेहरू और शेरवानी उन्ह परिस्थिति समझान के उद्देश्य मे बम्बई जा रहे थे। रास्ते म ही दोना गिरफ्तार कर लिए गए। इन परिस्थितिया मे गाधीजी ने आते ही लार्ड विलिंग्डन को लिखा कि 'मैं आपसे मिलना चाहता हू।' इसका उत्तर यह आया कि सरकार द्वारा बगाल सयुक्त प्रांत तथा सीमा प्रांत मे जो आर्डिनेन्स जारी किए गए है, उनके सबध मे वह गाधीजी से बातचीत करने के लिए तैयार नही हैं। गाधीजी न फिर 1 जनवरी को तार दिया कि वे इन्ही बाता के सबध म लार्ड विलिंग्डन से बातचीत करना चाहते है। इसी बीच काग्रेस कार्यसमिति भी एक परिणाम पर पहुच चुकी थी। सच तो यह है कि इगलैंड से लौटते ही गाधीजी को बबई म कार्यसमिति तैयार मिली थी। गाधीजी ने अब यह लिखा कि यदि बड़े लाट गाधीजी से बिना शर्त के मिलना अस्वीकार करेंगे, तो इसका मतलब यह लगाया जाएगा कि गाधी इरविन पैक्ट टूट गया। दूसरी तारीख को इसका भी उत्तर आ गया। उसम कहा गया कि लाट साहब उनसे मिलने के लिए तैयार नहीं हैं। 3 तारीख को गाधी जी ने फिर तार दिया, और अब उसका कोई उत्तर नही मिला

फिर दमन शुरू—ब्रिटिश सरकार किसी भी प्रकार के समझौते क लिए तैयार नहीं थी। जिस कारण से भी हो सरकार न यह तय कर लिया था कि आन्दोलन को कुचल देना है। इस बीच जनता का जोश भी घट गया था। 4 जनवरी को महात्मा गाधी तथा सरदार पटेल गिरफ्तार हो गए। सुभाष बगाल लौटते हुए गिरफ्तार हो गए। लार्ड इरविन न एक एक करके आर्डिनेन्स जारी किए थे, पर इस बार एक साथ कई आर्डिनेन्स जारी कर दिए गए। काग्रेस इस प्रचड तथा अचानक हमले के लिए तैयार नही थी। पहले चार महीन म ही 80 हजार गिरफ्तारिया हुईं। अप्रैल 1933 मे जो काग्रेस का नाममात्र का अधिवेशन हुआ उसके अनुसार उस समय तक 1 लाख 20 हजार गिरफ्तारिया हो चुकी थी। सब काग्रेस कमेटिया, राष्ट्रीय विद्यालय, यहा तक कि जिन मकानो मे ये सस्थाए थी, उन पर भी कब्जा कर लिया गया था। मारपीट की तो कोई सीमा ही नही थी। गिरफ्तारियो स ज्यादा मारपीट हुई। क्रान्तिकारियो ने भी इन दिनो खूब खुलकर खेल खेला। विशेषकर बगाल म बहुत-सी घटनाए हुई। सरकार ने भी हजारो बगाली युवको को नजरबद कर लिया।

दिल्ली की गैरकानूनी काग्रेस 1931

1931 के अप्रैल म दिल्ली म काग्रेस का अधिवेशन होन वाला था। सरकार चाहती थी कि यह अधिवेशन न हो सके, पर हर प्रांत स कुछ न कुछ प्रतिनिधि रवाना हो चुके थ, और उनमे से कई दिल्ली पहुच भी गए थे। सेठ रणछोड़दास अमृतलाल ने सभापति का काम किया क्योंकि मनोनीत सभापति पडित मदनमोहन मालवीय रास्ते मे गिरफ्तार कर लिए गए थ। अधिवेशन मे पूर्ण स्वतन्त्रता को फिर काग्रेस का ध्येय बताया गया, सत्याग्रह का समर्थन किया गया, महात्मा गाधी के नेतृत्व

किया था, उसके लिए जनता को बधाई दी गई।

साम्प्रदायिक बटवारा और गांधीजी का अनशन—इस बीच सरकार न गोलमेज का तमाशा जारी रखा था। जिस समय गाधीजी गोलमेज मे गए हुए थे, उसी समय उनको इसका आभास मिल गया था कि मार्ले मिन्टो शासन सुधार से जिस साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का प्रवतन किया गया था, वही भेद-नीति सवर्ण तथा असवर्ण हिन्दुओं मे भी बरती जाने वाली है। उसी समय उन्होने यह घोषणा कर दी थी कि यदि इसी प्रकार हिन्दू समाज को विखडित करने की कोशिश की गई, तो वे प्राणो की बाजी लगा कर भी इसका विरोध करेंगे। गाधीजी ने जेल से ही 11 मार्च को सरकार को लिखा कि मैं अपने निश्चय पर दृढ हू। 17 अगस्त को प्रधान मत्री मिस्टर मैकडोनल्ड ने अपना कुख्यात साम्प्रदायिक बटवारा घोषित किया। इसमे गाधीजी ने जिस बात का विरोध किया था वही बात थी, यानी कथित अस्पृश्यो के लिए पृथक निर्वाचन था, और यह इस रूप म था कि यदि गाधीजी इसका विरोध करने तो गलतफहमी की गुजाइश थी। अछूतो को अनुपात से अधिक सीटें दी गई थी, और साधारण सीटो म भी प्रतियोगिता का हक दिया गया था। गाधीजी ने 18 अगस्त को ही पत्र लिखा जिसमे उन्होने कहा कि यदि इसे बदला नही गया तो मैं 20 सितम्बर से आमरण अनशन करूगा।

पूना पक्ट—12 सितम्बर को सरकार ने गाधीजी के निश्चय की बात सावजनिक रूप से घोषित कर दी। पडित मदनमोहन मालवीय के कहने पर फौरन पूना मे एक कान्फ्रेंस बुलाई गई, जिसम अछूतो के नेता डा० भीमराव अम्बेडकर और कथित उच्च वर्ण के नेता मौजूद थे। 24 तारीख तक नेता एक निर्णय पर पहुचे। गाधीजी ने इस निर्णय को सतोषजनक समझा। 26 सितम्बर को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने इस निर्णय को मान लिया और उसी दिन कवीन्द्र रवीन्द्र के सामने गाधीजी ने अनशन व्रत समाप्त कर दिया। नई व्यवस्था के अनुसार यह तय हुआ कि पहले कथित अछूत चार व्यक्तियो को नामजद करेंगे, इस नामजदगी मे अछूत ही भाग ले सकेंगे, इसके बाद कथित उच्च जाति और अछूत इन चार म से एक को चुनेंगे।

'हरिजन' पत्रिका—महात्माजी ने इस व्यवस्था को मनवाने के बाद सरकार से यह अधिकार मागा कि उन्हे हरिजन काय के सबध म जेल मे सुविधा दी जाए। 7 नवम्बर तक उनकी यह माग मान ली गई और वह 'हरिजन' पत्रिका निकालने लगे।

कलकत्ता का चौराहा अधिवेशन 1933

अप्रल 1933 मे कलकत्ते मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस बार भी मनोनीत सभापति पडित मदनमोहन मालवीय थे पर वह रास्ते मे ही पकड लिए गए, इस कारण चौरगी और धमतल्ला के चौराहे पर खुली जगह मे अधिवेशन हुआ। श्रीमती सेनगुप्ता सभानेत्री बनी और जल्दी जल्दी अधिवेशन का काय आरम्भ किया गया। बाइस सौ प्रतिनिधि देश भर से रवाना हुए थे, जिनमे हजार के करीब अधिवेशन मे पहुच भी गए। पुलिस पहुच गई और प्रतिनिधियो पर भीषण लाठी चाज हुआ। परन्तु इसमे पहले ही अधिवेशन मे पूर्ण स्वतत्रता का ध्येय फिर से स्वीकृत हो चुका था। सत्याग्रह आन्दोलन को मजबूत बनाना निश्चित हुआ था, विदेशी वस्त्र बायकाट के लिए देशवासियो से कहा गया था, हाल मे प्रकाशित श्वेतपत्र से लोगो को आगाह किया गया था, ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाए गए विधान पर अविश्वास प्रकट किया गया था, गाधीजी को अनशन की सफलता के लिए बधाई दी गई थी, स्वराज्य का अथ क्या है इस सबध मे कराची के मौलिक अधिकार सबधी प्रस्ताव पर आस्था प्रकट की गई थी।

श्वेत पत्र—ब्रिटिश सरकार ने 17 फरवरी 1933 को एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया था। इसमे शासन सुधार सम्बन्धी जो प्रस्ताव पेश किए गए, वे देश के नरम पंथियो को भी पसन्द नही आए थे। इसी पर काग्रेस मे प्रस्ताव हुआ था।

गाधीजी का अनशन और रिहाई—महात्मा गाधी ने पहली मई को यरवदा जेल से घोषणा की कि वे 8 तारीख से 21 दिन का उपवास करेंगे। इस उपवास का उद्देश्य हरिजन के सबध मे जनता की कर्तव्य बुद्धि को जाग्रत करना घोषित किया गया। साथ ही यह आत्म शुद्धि के लिए भी था। इसके फलस्वरूप गाधीजी 8 तारीख को ही रिहा कर दिए गए।

विट्ठलभाई और सुभाष का वक्तव्य—गाधीजी ने जेल से बराबर हरिजनो के सबध मे लिखा। वह एक राजनैतिक सग्राम के नेता थे, और इसी रूप म जेल गए थे, इस कारण लोग उनसे राजनैतिक विचारो की आशा करते थे। इन दिनो विट्ठलभाई पटेल तथा सुभाष वियना मे इलाज करा रहे थे। सुभाष और पटेल ने गाधीजी के विरुद्ध एक सयुक्त वक्तव्य दिया क्योकि गाधीजी ने छूटते ही 6 सप्ताह के लिए आदोलन स्थगित कर दिया था। वक्तव्य मे पटेल तथा बोस ने कहा, "गाधीजी ने तो सत्याग्रह स्थगित कर दिया, यह एक तरह से इस बात की स्वीकृति है कि वे नेतृत्व के अयोग्य हैं। हम लोग इस निश्चित मत पर पहुच चुके हैं कि एक राजनैतिक नेता के रूप मे गाधी जी विफल रहे हैं। समय आ गया है कि काग्रेस को एक नए सिद्धात पर सगठित किया जाए। इसके लिए एक नए तरीके तथा एक नए नेता का उदभव आवश्यक है।"

सग्राम स्थगित—यद्यपि आन्दोलन 6 सप्ताह के लिए ही स्थगित किया गया था। पर यह एक तरह से आदोलन का अन्त था। गाधीजी ने 29 मई को अपना अनशन सफलता के साथ समाप्त किया। 12 जुलाई को स्थानापन्न सभापति श्री अणे ने पूना मे नेताओ का एक सम्मेलन बुलाया जिसमे यह तय हुआ कि अब देश के लिए सार्वजनिक सत्याग्रह उपयुक्त नही है, परतु कुछ चुने हुए लोग सत्याग्रह कर सकते हैं। अधिवेशन मे काग्रेस जनो के द्वारा गुप्त तरीको के इस्तेमाल की निन्दा की गई। इसके साथ ही स्थानापन्न सभापति ने सब काग्रेस सगठनो तथा युद्ध समितियो को रद्द घोषित कर दिया। जब युद्ध ही नही रहा तो युद्ध समिति कैसी?

गाधीजी की हलचलें—इसके बाद गाधीजी ने फिर लार्ड विलिंग्डन से बातचीत करने का प्रयत्न किया, पर लार्ड विलिंग्डन इसके लिए तैयार नही हुए। तब गाधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की तैयारी की। सबसे पहले उन्होने साबरमती आश्रम को भग कर दिया, और आश्रमवासियो से कहा कि वे सब कुछ होम कर व्यक्तिगत सत्याग्रह मे कूद पड़ें। उन्होने आश्रम का सामान आदि हरिजन सघ तथा ऐसी अन्य सस्थाओ के हवाले कर दिया। वह रास नामक ग्राम के लिए रवाना होने वाले थे, पर उसके पहले ही वह तथा उनके 34 साथी गिरफ्तार कर लिए गए। उनको 4 अगस्त को छोड दिया गया और यह हुक्म दिया गया कि वे यरवदा ग्राम छोडकर पूना जाकर रहे। इस पर गाधीजी राजी नही हुए, और उनको एक साल की सजा दे दी गई। इस बार फिर गाधीजी ने जेल मे रहते समय हरिजन आन्दोलन का अधिकार मागा। उन्होने 20 अगस्त को अनशन शुरू किया, और 23 को वह फिर छोड दिए गए।

हरिजन कार्य—30 अगस्त को जवाहरलाल छूटे, और गाधीजी से मिले। आगे क्या करना चाहिए इस विषय पर विचार करने के बाद वे हरिजन आदोलन के सबध मे देश का दौरा करने लगे। गाधीजी ने जब से जेल मे हरिजन आन्दोलन उठाया था, तब से देश के बहुत से प्रसिद्ध मदिर हरिजनो के लिए खुल गए थे। किन्तु सनातनियो की

ओर से उनका बहुत विरोध भी हुआ था। इस दौरे में गांधीजी पर एक बार पटाखे से हमला भी किया गया, फिर भी गांधीजी कई प्रसिद्ध मंदिरों को खुलवाने में समर्थ रहे।

बिहार में भूकम्प और पं० नेहरू को सजा—इन कार्यक्रमों में यह साल निकल गया, और 16 जनवरी को बिहार में भयंकर भूडोल आया। इस भूडोल का 30 हजार वर्ग मील से अधिक पर असर हुआ, और कम से कम 20 हजार व्यक्ति मरे। सारा देश बिहार की मदद के लिए दौड़ पड़ा। महात्माजी तथा राजेन्द्र बाबू तो मौजूद थे ही। गांधीजी ने एक बयान दिया जिसमें उन्होंने कहा कि छुआछूत के पाप की भगवान ने बिहार भूकम्प के रूप में सजा दी है। इस पर कवी द्र रवी द्र ने कहा कि इस प्रकार ईश्वर की इच्छा की मनचाही व्याख्या करना गलत है।

बिहार के भूकम्प के जमाने में ही जवाहरलाल कलकत्ता गए और वहां पर उन्होंने क्रांतिकारियों की और साथ ही साथ सरकार के आतंकवाद की भी निन्दा की। इस कारण उन्हें दो साल की सजा हुई।

फिर स्वराज्य पार्टी—जब से पूना कान्फ्रेंस हुई थी, तभी से कुछ नेता यह सोच रहे थे कि अब सत्याग्रह का पर्व समाप्त हो चुका, अब स्वराज्य पार्टी के ढंग पर कुछ काम करना चाहिए। इस कान्फ्रेंस में यह भी तय किया गया कि आगामी निर्वाचन में भाग लिया जाए।

सत्याग्रह स्थगित—इसी महीने पटना में 18 तथा 19 मई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। अभी तक कमेटी गैरकानूनी करार नहीं दी गई थी। बैठक में गांधीजी की सलाह मानकर सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया, और जिन लोगों ने स्वराज्य पार्टी बनानी चाही थी, मुख्यतः उनको लेकर पार्लियामेंटरी बोर्ड बना दिया गया। इस प्रकार स्वराज्य पार्टी की प्रवृत्ति को कांग्रेस ने अपने अधीन एक बोर्ड बनाकर स्वीकार कर लिया।

कांग्रेस समाजवादी दल का जन्म—गांधीजी ने जिस प्रकार से आंदोलन को बंद किया था, उससे कुछ ऐसे कांग्रेसजनों में बहुत अधिक असंतोष उत्पन्न हुआ, जो जेलों में रहकर समाजवादी साहित्य पढ़ चुके थे। उन्होंने यह नतीजा निकाला कि गांधीजी का नेतृत्व देश को स्वतन्त्रता के मार्ग पर ले जाने में असमर्थ है। इसी कारण कांग्रेस समाजवादी दल का जन्म हुआ। सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य नरेन्द्रदेव के सभापतित्व में 17 मई को पटना में ऐसे लोगों की एक सभा हुई जिसमें यह तय हुआ कि गांधीवादी हमारी समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ हैं, अतएव समाजवाद के आधार पर एक दल बनाया जाए। बिहार में सबसे पहले इस दल की बैठक हुई, इसका कारण यह था कि बिहार इस कार्य में अग्रणी था। आचार्य नरेन्द्रदेव के अतिरिक्त बाबू सम्पूर्णानन्द, जय प्रकाश नारायण तथा अन्य बहुत से लोग इस दल के जन्म में शरीक थे। पर इनमें से बहुत से बाद को विभिन्न कारणों से दल से ही नहीं समाजवादी विचारधारा से भी अलग होते गए।

स्वाभाविक था कि कांग्रेस के अन्दर से जो समाजवादी धारा निकली वह अलग संगठित हुई। कांग्रेस समाजवादी शब्द के पहले लगा हुआ 'कांग्रेस' शब्द यह प्रगट करता था कि कांग्रेस का सदस्य ही इसका सदस्य हो सकता है, कि यह कांग्रेस के अंतर्गत एक दल है। बाद में 1947 में इस दल ने अपने नाम से 'कांग्रेस' शब्द निकाल दिया। दल के नेताओं के अनुसार यह शब्द इसलिए निकाल दिया गया जिससे कांग्रेस के बाहर के लोग भी इसमें शरीक हो सकें। यह कदम भी कांग्रेस के प्रति अविश्वासमूलक ही था।

कुछ राजनैतिक कैदी छूटे—जब कांग्रेस की ओर से बिना शर्त सत्याग्रह वापस

ले लिया गया, तब सरकार ने 22 जून तक कांग्रेस की कमेटियों को कानूनी करार दे दिया। कुछ राजनीतिक कैदी भी छोड़े गए, पर सब नहीं। क्रांतिकारी कैदी तो छूटे ही नहीं, साथ ही बहुत से सत्याग्रही कैदियों को भी पूरी कैद काटनी पड़ी। बहुत से ऐसे कैदी तो 1934 के अन्त तक जेलों में पड़े रहे। शर्तों के साथ तो आंदोलन बंद किया नहीं गया था।

कांग्रेस का बम्बई अधिवेशन 1934

27 तथा 28 अक्टूबर, 1934 को बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में हुआ। कांग्रेस के नेताओं में राजेन्द्र बाबू महात्माजी के अनन्य भक्त होने के साथ ही नीरव त्यागी भी थे। राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण में अहिंसा का गुण गान किया और विफलता के दर्शन का प्रतिपादन किया। वह बोले, "हम एक बार असफल हो सकते हैं, दो बार असफल हो सकते हैं, पर किसी न किसी दिन हम अवश्य सफल होंगे।" उन्होंने कहा कि *सत्याग्रह में कई बार सामयिक रूप में हार हो सकती है,* पर इसमें पराजय है ही नहीं।

कांग्रेस का नया विधान—इस अधिवेशन में एक नया विधान बना, जिसके अनुसार कांग्रेस प्रतिनिधियों की संख्या दो हज़ार कर दी गई। सभापति को यह अधिकार मिला कि वह कार्यसमिति के सदस्यों को नामजद करें।

महात्माजी कांग्रेस से अलग—महात्माजी ने ही एक तरह से कांग्रेस की इस कारवाई को संचालित किया, फिर भी वह यहीं से कांग्रेस की चार आने की सदस्यता से अलग हो गए। इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा कि मुझमें तथा बहुत से कांग्रेसियों में बहुत अधिक मतभेद है और यह मतभेद निरन्तर बढ़ता जा रहा है। उन्होंने कहा कि कांग्रेस में बहुत से लोग ऐसे हैं जो अहिंसा में एक पालिसी के तौर पर विश्वास करते हैं। ऐसी हालत में उनके लिए कांग्रेस में रहना संभव नहीं है। उन्होंने यह सब कहा अवश्य, पर तथ्य यह है कि इसके बाद भी वह बराबर कांग्रेस के सर्वेसर्वा बने रहे क्योंकि उनके बिना कांग्रेस की कल्पना असंभव थी। इसके बाद भी उनकी शक्ति बढ़ती रही, घटी नहीं।

8

प्रान्तीय स्वशासन

इडिया ऐक्ट 1935—गोलमेज की जो खिचडी पक रही थी, उसके फलस्वरूप बने प्रस्तावो पर विचार करने के लिए ब्रिटिश ससद ने एक सयुक्त ससदीय कमेटी बनाई। इस कमेटी ने जो रिपोर्ट दी, उसके विरुद्ध प्रदर्शन करने के लिए काग्रेस कार्यसमिति ने 7 फरवरी का दिन निश्चित किया। पर इसका कोई परिणाम नही निकला, और 23 जुलाई को गवर्नमेंट आव इडिया ऐक्ट 1935 के रूप मे इस योजना पर ब्रिटिश सम्राट के दस्तखत हो गए।

कहना न होगा कि इस ऐक्ट मे स्वराज्य की माग नही मानी गई थी, पर इसमें सदेह नही कि यह माटग्यू-चेम्सफोर्ड शासन सुधारो पर अगला कदम था। इसम राजस्व का 4/5 भाग सरक्षित रखा गया। सेना, परराष्ट्र तथा पादरियो का विभाग बडे लाट के हाथो मे रहा। रेलवे बोर्ड रेल का सब बातो के लिए उत्तरदायी माना गया। केद्र म द्वि धारासभाओ के निर्माण की बात हुई, उनमे रियासतो के सदस्यो की सख्या दो तिहाई रखी गई। इसका उद्देश्य यह था कि ये धारासभाए पालतू रहे।

ऐक्ट की तफसील—ब्रिटिश भारत को 11 प्रान्तो मे बाटा गया। अदन और बर्मा अब तक भारत के अश थे, अब वे पृथक कर दिए गए। मद्रास बबई बगाल, सयुक्त प्रदेश, बिहार और असम मे दो दो धारासभाए कर दी गइ जब कि इगलैंड मे भी हाउस आव लार्डस के उठा देने की कम से कम उसकी शक्ति घटाने की बात चल रही थी। इस बार शासन-सुधार मे सरकारी नामजदगी का तरीका समाप्त कर दिया गया। अधिक सख्यक दल को मन्त्रिमण्डल बनाने का अधिकार मिला। पर गवनर के विशेषाधिकार इतने थे कि वह जब चाहे स्वय शासन हाथ मे ले सकता था। इस बार लगभग 14 फी सदी लोगो को वोट का अधिकार दिया गया। इस ऐक्ट का सबसे आपत्तिजनक अग साम्प्रदायिक बटवारा था। गोरो को, विशेषकर बगाल मे, मन्त्रिमण्डल बनाने एव बिगाडने के अधिकार दे दिए गए। यह बटवारा बिलकुल मनमाना था, और इसका उद्देश्य हिन्दू तथा मुसलमानो को आपस मे लडाना था।

साम्प्रदायिक निर्णय से सभी नाखुश—खिलाफत आन्दोलन के युग मे मुसलमानों की मध्यवित्त श्रेणी ने (जो बडी हद तक मुसलमानों के मत का निर्णय करनेवाली थी।) राष्ट्रीय विचार के हिन्दुओ का साथ दिया था पर हम देख चुके हैं कि इसके बाद से ही धारा दूसरी तरफ बहने लगी थी। 'सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा' के कवि और अब 'चीनो अरब हमारा' के लेखक सर मुहम्मद इकबाल के सभापतित्व म दिसम्बर, 1930 मे इलाहाबाद मे मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ था, जिसमे पहले पहल पाकिस्तान की योजना रखी गई। बाद के युग में यह नारा एक भयकर युद्धघोष के रूप म तथा प्रतिघात के हथियार के रूप मे इस्तेमाल होनेवाला था। गोलमेज मे जो मुसलमान गए, वे किसी ढग के समझौतो पर राजी थे, पर उन्हें भडका दिया गया और उसके फलस्वरूप

सारी दुनिया के पत्र जगत के सामने जो जग हसाई हुई, वह एक स्मरणीय बात है। धूर्त साम्राज्यवाद ने यह जग-हसाई विशेषकर इस कारण कराई कि सत्याग्रह आदोलन के कारण जो अतर्राष्ट्रीय प्रभाव उत्पन्न हुआ था, उस पर पानी फिर जाए।

मजे की बात यह है कि साम्प्रदायिक निर्णय से मुसलमान भी खुश न हो सके। उन्हें प्रातो की कुल 1600 के करीब सीटो मे पौने पाच सौ सीटें दी गइ, फिर भी वह समझते थे कि उनके साथ अन्याय हुआ है। बगाल मे मुसलमानो की आबादी 53 फीसदी थी, पर उन्हें 47½ फीसदी सीटें दी गई, और उन्हें सम्पूर्ण रूप से गोरो पर निर्भर रखा गया। पजाब में इनकी सख्या 55 फीसदी थी, मगर उन्हें 49 फीसदी सीटें दी गई थी। मुस्लिम-लीग का जिन्ना युग 1934 से शुरू होता है। 4 मार्च 1934 को लीग का एक जलसा फिर देहली मे हुआ, जिसमे बैरिस्टर अब्दुल अजीज सभापति पद से अलग हो गए, और जिन्ना मुस्लिम लीग के स्थायी सभापति नियुक्त हुए।

काग्रेस का लखनऊ अधिवेशन अप्रैल, 1936

1935 मे काग्रेस का कोई अधिवेशन नही हुआ। इसकी नौबत ही नही आई। काग्रेस ने चुनाव लडने मे ही सारी शक्ति लगा दी। 1936 मे 12, 13, 14 अप्रैल को काग्रेस का अधिवेशन लखनऊ मे जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व मे हुआ। उन्होंने अपने भाषण मे जो कुछ कहा, वह बहुत ही महत्वपूर्ण था। उसमे उन्होंने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के विश्लेषण के बाद कहा, "मैं इस सम्बन्ध मे निश्चित हू कि ससार की तथा भारत की समस्याओ का समाधान केवल समाजवाद से ही हो सकता है। यह स्मरण रहे कि मैं इस शब्द का प्रयोग अस्पष्ट मानवतावादी ढग से नही कर रहा हू, बल्कि उसका प्रयोग वैज्ञानिक आर्थिक रूप मे कर रहा हू। समाजवाद न केवल एक आर्थिक सिद्धान्त है बल्कि इससे बढकर जीवन का एक दर्शन है और उस रूप मे भी मैं उसकी तरफ आकृष्ट होता हू।" उन्होंने आगे कहा, "यदि भविष्य आशाजनक है तो यह बहुत कुछ सोवियत रूस के कारण और उसने जो कुछ किया है उसके कारण है, और यदि विश्व मे इस बीच कोई सकट न आए, तो यह नई सभ्यता और देशो मे फैलेगी और इस प्रकार पूजीवाद द्वारा युद्धो और सघर्षों का अन्त हो सकेगा।"

लखनऊ काग्रेस के कार्य—इस अधिवेशन मे यह माग की गई कि भारतीयो का शासन विधान भारतीय ही बना सकते हैं अतएव शीघ्र से शीघ्र भारतीयो का विधान सम्मेलन बुलाया जाए। यह तय हुआ कि अगले चुनाव मे हिस्सा लिया जाए। इसके लिए एक पार्लियामेटरी बोर्ड बना लिया गया। अधिवेशन मे इस प्रश्न पर भी गरमागरम बहस रही कि चुनाव लडने के बाद मन्त्रिपद ग्रहण किया जाए या नही। बहरहाल, यह प्रश्न स्थगित रखा गया।

इस समय तक अबीसीनिया पर फासिस्ट इटली द्वारा हमला शुरू हो गया था। काग्रेस ने इसकी सहानुभूति मे भी एक प्रस्ताव पास किया। इसी काग्रेस मे जनसम्पर्क कमेटी भी बनी। सुभाष इस काग्रेस मे इस कारण भाग न ले सके कि वह बहुत दिनो तक विदेश मे रहने के बाद ज्यो ही बम्बई लौटे, 1818 के रेगुलेशन 3 के अधीन गिरफ्तार हो गए।

लिनलिथगो का आगमन—इसी महीने लार्ड विलिंग्डन का कार्यकाल समाप्त हो गया और उनकी जगह लार्ड लिनलिथगो भारत के वायसराय बनकर आए। लार्ड लिनलिथगो भारत मे बिलकुल अपरिचित थे, ऐसी बात नही। वह कुछ दिन पहले भारत मे गठित कृषि आयोग के अध्यक्ष होकर यहा आए थे। यह आयोग भारत की किसान

जनता की क्रय शक्ति बढवाने के उपाय सोचने के लिए आया था। इसके अतिरिक्त वह उस संयुक्त पालियामेंटरी कमेटी के भी सभापति थे क्योंकि तभी विलायती माल यहां खप सकता था। इंडिया ऐक्ट 1935 का जन्म इसी कमेटी से हुआ था। लार्ड विलिंग्डन का शासन काल दमन युग था। अब लिनलिथगो ने आकर चिकनी-चुपडी बातें शुरू कर दीं।

चुनाव घोषणा तथा चुनाव की तैयारी - कांग्रेस के सामने सबसे बड़ा काम चुनाव लडना था। इस संबंध में कांग्रेस की ओर से चुनाव घोषणा बनाने के लिए 22 और 23 अगस्त को बम्बई शहर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। यहां जो चुनाव घोषणा बनी, उसमें और बातो के अलावा यह वादा किया गया कि मजदूरों की कम से कम मजदूरी तय करना तथा किसानों को हर तरीके से मुक्त करना कांग्रेस का ध्येय है। इन दिनों देश में इस विषय पर बड़ी बहस चल रही थी कि मंत्रि पद ग्रहण करना चाहिए या नहीं। प्रश्न को आगे के लिए टाल दिया गया। पंडित मदनमोहन मालवीय का दल अलग चुनाव लडने की तैयारी कर रहा था, उससे भी कांग्रेस का समझौता हो गया। इस प्रकार अपनी सब शक्तियों को एकत्र कर कांग्रेस चुनाव संग्राम में उतरने के लिए तैयार हो गई।

फैजपुर अधिवेशन दिसम्बर, 1936

कांग्रेस का अगला अधिवेशन 1936 के 27 तथा 28 दिसम्बर को महाराष्ट्र के फैजपुर नामक एक गांव में हुआ। गांधीजी ने ही यह सलाह दी थी कि कांग्रेस का अधिवेशन गांवों में होना चाहिए, जिससे कि गांवों की जनता को कांग्रेस के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में आने का मौका मिले। अहमदाबाद कांग्रेस के बाद कांग्रेस ने यह नया कदम उठाया था। हम पहले ही बता चुके हैं कि अहमदाबाद कांग्रेस में मेज-कुर्सी हटा दी गई थी, अब गांवों में अधिवेशन शुरू किया। अवश्य इस नये कदम के साथ ही एक बड़ी समस्या का भी उदय हुआ। वह समस्या यह थी कि कांग्रेस में आने वाली लाखों जनता के खाने पीने, रहने का प्रबन्ध कैसे किया जाए। अवश्य इससे उस इलाके के देहातियों को आर्थिक तथा अन्य सब तरीके से फायदा रहने लगा, पर बाहर के लाखों लोगों की असुविधा की तुलना में यह कहां तक लाभ रहा, यह विचारणीय है।

अधिवेशन का कार्य—इस अधिवेशन के सभापति फिर जवाहरलाल हुए। पंडितजी ने अपनी स्वभावसिद्ध विद्वता के साथ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की आलोचना करते हुए संसार में फासिस्टवाद के खतरे की ओर लोगों की दृष्टि आकर्षित की। उन्होंने फिर लोगों को यह समझाया कि समाजवाद ही भारत की गरीबी की समस्या को हल करने में समर्थ है। पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि समाजवाद स्थापित होने के लिए यह आवश्यक है कि पहले स्वतन्त्रता हो। उन्होंने कहा कि सारे विश्व में समाजवाद और फासिस्टवाद में संघर्ष चल रहा है। इस अधिवेशन में भी मंत्रि पद लिया जाय कि नहीं, इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया गया। यह तय हुआ कि चुनाव के बाद चुने हुए सदस्यों का एक कनवेंशन बुलाया जाएगा, जिसमें यह प्रश्न तय किया जाएगा।

चुनाव—1937 की फरवरी में प्रान्तों में चुनाव हुआ। जवाहरलाल नेहरू ने इस चुनाव के संबंध में जिस अथक रूप से देश का दौरा किया, उससे उनका एक के बाद एक, दो बार कांग्रेस का सभापति चुना जाना समर्थित हो गया। किसी भी एक नेता को इस चुनाव के जीतने में इतना श्रेय नहीं है, जितना उन्हें है। कांग्रेस जनों ने इन सालों में जिस प्रकार से जेल, लाठी, मार, जुर्माना सहन किया था, उससे कांग्रेसी जनता में परि

चिन और प्रिय हो चुके थे। जो लोग गाधीजी द्वारा प्रतिपादित जेल जाकर हृदय परिवतन की हसी उडाते हैं, उन्ह भी यह बात नही भूलनी चाहिए कि इस जेल जाने के कायक्रम के कारण ही काग्रेसी जनता मे प्रिय हो गए, और काग्रेस का नाम घर घर पहुच गया। दूसरो को कोई जानता ही नही था।

काग्रेस की जीत—चुनाव मे काग्रेस विजयी हुई। काग्रेस को मद्रास म 215 सीटो म से 159 अर्थात 74 फी सदी बिहार मे कुल 152 सीटो मे से 98 अर्थात् 65 फी सदी, बगाल मे कुल 250 सीटो मे से 56 सीट अर्थात 22 फी सदी, मध्य प्रदेश और बरार म 112 सीटो मे से 72 याने 62 5 फीसदी, बम्बई मे कुल 175 सीटो मे से 86 याने 49 फी सदी, सयुक्त प्रान्त मे 228 सीटो म से 134 याने 59 फी सदी, पजाब म 125 सीटो मे से 18 याने 10 5 फी सदी, सीमाप्रान्त म कुल 50 सीटो मे से 19 याने 38 फी सदी, सिन्ध मे 60 सीटो मे से 7 याने 11 7 फी सदी, असम मे कुल 108 सीटो म से 33 याने 31 फी सदी, उडीसा मे कुल 60 सीटो मे से 38 याने 60 फी सदी सीटें काग्रेस को मिली।

चुनाव मे लीग हारी—मुस्लिम लीग ने भी चुनाव मे पूरी तैयारी के साथ हिस्सा लिया था, पर उसे कोई विशेष सफलता नही मिली, यह निम्नलिखित सूची से ही ज्ञात होता है।

प्रान्त	कुल मुस्लिम सीटें	लीग को मिलीं
मद्रास	28	10
बम्बई	29	20
बगाल	117	39
सयुक्त प्रान्त	64	27
पजाब	84	1
बिहार	39	0
मध्य प्रान्त	14	0
असम	34	9
सीमाप्रान्त	36	0
उडीसा	4	0
सिन्ध	33	3

लीग का दावा खोखला—इस प्रकार लीग को चुनाव म चौथाई से भी कम मुस्लिम सीटें प्राप्त हुईं। पजाब मे सिकन्दर हयात खा, सिंध मे अल्लाबख्श, बगाल म फजलुल हक के नेतृत्व म काम करने वाली यूनियनिस्ट, अल्लाबख्श का दल तथा कृषक प्रजा पार्टी के कारण लीग को इस प्रकार नीचा देखना पडा। कहना न होगा कि इस जमाने म लीग मुसलमानो की एकमात्र प्रतिनिधि सस्था होने का दावा नही कर सकती थी, फिर भी लीग के कट्टर नेता पीछे हटनेवाले नही थे। जिन्ना ने इन्ही दिनो वह सनसनीखेज नारा फिर उठाया जिसम उन्होने कहा कि भारतवर्ष म लोकतन्त्र नही होना चाहिए। उन्होने 'मैनचेस्टर गार्जियन' मे प्रकाशित एक लेख म कहा कि एक साधारण अग्रेज के लिए यह समझना कठिन नही है कि भारतवर्ष म पश्चिम म सम्मानित लोकतत्र का सिद्धान्त क्यो लागू नही हो सकता।

मन्त्रिमण्डल तथा दल—चुनाव के फलस्वरूप काग्रेस 6 प्रान्तो म अर्थात बबई, बिहार, मद्रास, युक्त प्रान्त, उडीसा, मध्य प्रान्त म मन्त्रिमण्डल बना सकी थी।

पजाब, बगाल, सि ध अर्थात् जिन प्रान्तो म मुस्लिम सीटें अधिक थीं, उनमे लीग कहीं भी मन्त्रिमण्डल नही बना सकती थी पर सिकन्दर हयात खा, फजलुल हक तथा अल्ला बख्श इन प्रान्तो मे मन्त्रिमण्डल बना सकते थे और उन्होने बाद को मन्त्रिमण्डल बना भी लिए।

मन्त्रिमण्डल बनाने की शर्त—कांग्रेस अब भी मन्त्रिमण्डल बनाएगी या नहीं, इस सम्बन्ध मे किसी निर्णय पर नही पहुच सकी थी। 17 तथा 18 मार्च 1937 को इस सम्बन्ध मे निर्णय करने के लिए दिल्ली मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। इस बार यह तय हुआ कि यदि प्रान्त के गवर्नर यह वादा करें कि वे वीटो या विशेषाधिकार का प्रयोग नही करेंगे, तभी कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बनाएगी। यह भी तय हुआ कि लाट साहब को यह वादा सार्वजनिक रूप मे करना पड़ेगा।

वायसराय द्वारा आश्वासन—पहली अप्रैल से नए विधान के अनुसार कार्य होने वाला था। पर कांग्रेस ने जो शर्त रखी, उसे सरकार ने स्वीकार नही किया, इसलिए सरकार ने अल्प सख्या वाले दलो को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए बुलाया, और मन्त्रिमण्डल बन गए। पर विधान के अनुसार 11 मे से 6 प्रान्तो मे मन्त्रिमण्डल न बनने के कारण विधान के व्यर्थ होने की नौबत आ गई। इसलिए सरकार की ओर से कांग्रेस से बातचीत चली। 21 जून को लार्ड लिनलिथगो ने यह घोषणा की कि कानून के अनुसार शासन कार्य मे मन्त्रिमण्डल को ही अधिकार प्राप्त है। बहुत कम मामलो म गवर्नर अपनी राय से काम कर सकते हैं, और जब वह ऐसे काम करें तो मन्त्रिमण्डल को यह अधिकार होगा कि वह यह साफ कर दे कि अमुक कार्य उनका किया हुआ नही है। इस समय तक कांग्रेस के अन्दर मन्त्रिमण्डल ग्रहण करने वालो की सख्या अधिक हो चुकी थी। 7 जुलाई को कार्यसमिति ने इस आश्वासन को यथेष्ट समझकर मन्त्रिमण्डल कायम करने का आदेश दे दिया।

तनख्वाह पाच सौ—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने मन्त्रिपद ग्रहण करते ही कराची के प्रस्ताव मे यह जो कहा गया था कि अधिक से अधिक तनख्वाह पाच सौ हो, उसे कार्य रूप म परिणित कर दिया। इसके अनुसार मन्त्रियो की तनख्वाह पाच सौ और भत्ता 250 रुपए तय हुआ।

क्रांतिकारी कैदी रिहा और उनका स्वागत—कांग्रेस ने अपनी चुनाव घोषणा मे वादा किया था कि सभी राजनीतिक कैदी रिहा कर दिए जाएगे। इसी वादे के अनुसार सयुक्त प्रान्त के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने काकोरी कैदियो को, जो गत 12 साल से जेलो मे बन्द थे, रिहा कर दिया। छटने पर काकोरी कदियो का देश मे बड़ा शानदार स्वागत हुआ। कानपुर तथा लखनऊ की नगरपालिकाओ ने उन्हे मानपत्र दिए तथा लाखो की भीड ने इन लोगो की वाणी सुनी। कांग्रेस, कम्यूनिस्ट, रायवादी, समाजवादी सभी स्वागत मे शरीक थे।

गांधीजी द्वारा स्वागत की निन्दा—उस अभूतपूर्व स्वागत से सरकार बहुत घबरा गई, और गांधीजी ने एक वक्तव्य देते हुए इस सबध मे किए गए सारे सार्वजनिक प्रदर्शनो को अशोभनीय करार दिया।

उन्ही दिनो अण्डमान के राजनैतिक कदी अनशन कर रहे थे। सारे देश में उनके लिए बड़ा जोश था। गांधीजी ने इसमे हाथ बटाया।

किसान सम्बन्धी कानून—कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो ने पद ग्रहण करते ही किसानों की भलाई के कानून के कार्य को उठाया, पर जिस तेजी से उन्होने इस काम को उठाया, उस तेजी से यह आगे नही बढ सका।

क्रांतिकारी कैदियों के सम्बन्ध मे खिंच—सयुक्त प्रान्त तथा बिहार के सभी राजनतिक कदी अभी तक छोडे नही गए थे। कुछ क्रातिकारी कदियो की रिहाई के सबध म सरकार ने अडगा लगा दिया। उधर देश मे इनकी रिहाई के लिए बराबर माग की जा रही थी। काग्रेस मन्त्रिमण्डल उन्हे छोडना चाहते थे, पर गवनर इसमे रोडा अटका रहे थे। फरवरी 1938 तक यह एक शासकीय सकट के रूप म परिणत हो गया और बिहार तथा सयुक्त प्रात के मन्त्रिमण्डलो ने गवर्नर के इस हस्तक्षेप के विरुद्ध मन्त्रि-पदो से इस्तीफा द दिया। यह स्मरण रह कि बीच मे 3 सितम्बर 1937 को सीमा प्रान्त के गैर काग्रेसी मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो चुका था, और वहा भी काग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम हो गया था। इसलिए जिस समय बिहार तथा सयुक्त प्रात क मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफा दिया, उसी समय यह साफ कर दिया गया कि अभा तो दो ही मन्त्रिमण्डलो न इस्तीफे दिए है पर आगे बाकी पाच काग्रेसी मन्त्रिमण्डल भी इस्तीफे द देंगे। इसी हालात मे हरिपुरा काग्रेस हुई। इसके वणन के पहले हम यह देख लें कि इस बीच और कौन सी घटनाए हुइ।

काग्रेस की वैदेशिक नीति—काग्रेस न जिस समय मन्त्रिमण्डल ग्रहण किया, उस समय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत तजी से बिगडने लगी थी। इस साल जुलाई के महीने मे जापान ने चीन पर हमला कर दिया था। उधर अबीसीनिया और स्पेन म लडाई जारी थी ही। भारतीयो की सहानुभूति प्रत्येक क्षेत्र म प्रगतिशील शक्तिया के साथ थी। 29,30,31 अक्टूबर को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का कलकत्त मे जो अधिवशन हुआ था, उसमे जापानी हमले की निन्दा की गइ। इस प्रकार काग्रेस की आखें बराबर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की ओर लगी रही।

लीग के साथ समझौते की चेष्टा—इस बीच की घटनाओ मे एक खास बात यह भी है कि लीग क साथ समझौते की चष्टा की गई। काग्रेस के अध्यक्ष जवाहरलाल इस सबध में जिन्ना से मिले, पर कोई नतीजा नहीं निकला। हम पहले ही दिखा चुके हैं कि इस समय तक मुस्लिम सीटो मे भी लीग को एक चौथाई सीटें नही मिली थी। एसी हालत म फजलुल हक सिकन्दर हयात, अल्लाबख्श आदि मुसलमानो के वास्तविक नेताओ से न मिलकर जिन्ना से मिलना कहा तक उचित हुआ, और कहा तक इसी गलती के कारण मुस्लिम लीग की बढोतरी हुई, यह विचारणीय है।

हरिपुरा अधिवेशन 1937

काग्रेस का अगला अधिवेशन बारदोली के हरिपुरा गाव मे 19 फरवरी स सुभाषचन्द्र बोस के सभापतित्व मे शुरू हुआ। सुभाष कुछ दिन पहले ही जेल से छूटे थे। उन्होने अपने भाषण मे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर प्रकाश डालत हुए यह स्पष्ट कर दिया कि लडाई का खतरा करीब है। उन्हान विशेषकर 1935 के एक्ट म उल्लिखित सघ शासन की निन्दा की। काग्रेस ने भी सघ शासन की इस योजना के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया।

क्रातिकारी कैदी छूटे—दो मन्त्रिमण्डलो के इस्तीफा देन म सरकार को झुकना पडा और हरिपुरा के बाद काग्रेस ने इन प्रान्तो म फिर मन्त्रिमण्डल ग्रहण कर लिया और जिन राजनतिक कैदियो के सबध मे झगडा था, वे रिहा कर दिए गए। इस प्रकार काग्रेसी प्रान्तो के सब क्रातिकारी कैदी छूट गए।

नेशनल प्लानिंग कमेटी—सुप्रसिद्ध योजना कमेटी (National Planning Committee) कायम हुई। इस कमेटी का उद्देश्य यह था कि प्रत्येक क्षेत्र म विज्ञान

तथा सगठन के द्वारा आगे बढा जाए। स्पष्ट कहा जाए, तो यह कमेटी गाधीजी द्वारा कल्पित ग्रामो की आत्मनिर्भरता नीति से भारत को ऊपर उठाकर एक आधुनिक औद्योगिक देश मे परिणत करना चाहती थी। जवाहरलाल नेहरू इस कमेटी के कर्णधार हुए। कांग्रेस सरकारों के अतिरिक्त बगाल, पजाब, सिन्ध की सरकारों ने तथा हैदराबाद, मैसूर, बडौदा, तिरुवाकुर, भोपाल आदि रियासतो ने इस कमेटी म भाग लिया। कमेटी को सब तरह के विद्वानो तथा विशेषज्ञो का सहयोग प्राप्त था। बहुत हितकर आकडों का सग्रह किया गया। कमेटी का उद्देश्य भारत का शीघ्रातिशीघ्र औद्योगीकरण ही नहीं, सब क्षेत्रो मे उन्नति करना था यह इसके विभागो के नाम मे ही व्यक्त होता है। विभागों के नाम इस प्रकार थे—(1) कृषि, (2) उद्योग (3) विभिन्न सम्प्रदायो की सख्या तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का निर्णय (4) यातायात तथा यातायात के साधनों की उन्नति, (5) व्यापार और राजस्व, (6) लोक कल्याण, और (7) शिक्षा। यह सारा काम एक कमेटी नहीं कर सकती थी, इसलिए विशेषज्ञो की अलग-अलग 27 उपसमितियां बना दी गई। कमेटी ने अपने सामने जो उद्देश्य रखे, व राष्ट्रीय निर्माण की दृष्टि से प्रगतिशील थे।

असम में भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल – असम म भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम हो गया। इस प्रकार 11 म से 8 प्रान्तो मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गए। इन मन्त्रिमण्डलों ने जिन तरीकों से काम किया, उनको चार हिस्सो मे बाटकर दिखाया गया है। कांग्रेस का उद्देश्य था—(1) लगान तथा मालगुजारी घटाना, (2) किसान को जमीन पर अधिकतर अधिकार देना, (3) उस कर्जदारी से बचाना, और (4) मजदूरो की उन्नति करना। कांग्रेस ने इनकी तरफ कदम बढाया। कांग्रेस के प्रधान नेता गाधीजी थे, इसलिए कुछ बातें उनके विशेष विचारो के अनुसार करने की कोशिश की गई। गाधीजी शराबबन्दी के पक्ष में थे। तदनुसार मन्त्रिमण्डलो ने इस सम्बन्ध मे काम शुरू किया। कुछ इलाकों में शराब बिकना, बनाना बन्द कर दिया गया। इसी प्रकार गाधीजी की शिक्षा सम्बन्धी वर्धा योजना को काम मे लाने की कोशिश की गई। मद्रास के मन्त्रिमण्डल ने अछूतोद्धार तथा हिन्दी प्रचार के क्षेत्र म काम किया। सयुक्त प्रान्त के मन्त्रिमण्डल ने ग्राम सुधार की योजना बनाई। इसम कोई सदेह नही कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने इण्डिया ऐक्ट 1935 तथा कांग्रेस की वर्गीय बनावट के बावजूद अनेक सुधारात्मक कार्य किए। मन्त्रिमण्डल के जमाने मे मजदूरो की कई हडतालें हुई।

यूरोप मे फासीवाद अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति क्रमश बिगडती चली जा रही थी। हिटलर एक दुर्दैव की तरह यूरोप के राजनतिक गगन म तपने लगा था। 1914 18 के युद्ध के बाद फ्रास तथा ब्रिटेन के पूजीपतियो ने जमन पूजीवाद को उठने न देने के लिए सिवा एक के सभी व्यवस्था कर ली थी। याने वहा के पूजीवाद का नष्ट करने के अलावा सब कुछ किया गया था। वे ऐसा क्यों करते, जब वे खुद ही पूजीवादी थे? जमन पूजीवाद जीवित और सबल था और उसके साथ वहा प्रचुर परिमाण मे कोयला, लोहा, बिजली तथा विज्ञान भी था। साथ ही एक ऐसा समाजवादी आन्दोलन था, जो यद्यपि इतना मजबूत नही था कि सरकार पर कब्जा कर ले, पर इतना मजबूत अवश्य था कि पूजीपतियो के शासन को खतरे मे डाल दे। साथ ही अंग्रेजी साम्राज्यवाद की शह थी। तो फिर फासीवाद के उदय म क्या कसर हो सकती थी? इन परिस्थितियो मे इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व मे फासीवाद का उदय हुआ। इधर जमनी म हिटलर एक के बाद एक आक्रमणात्मक कदम उठाता जा रहा था। उसने 1938 के सितम्बर म चेकोस्लोवाकिया का सूडेटन प्रान्त मांगा और यह उसे दे भी दिया गया।

परिस्थिति पर सुभाष बाबू—अब लडाई के बादल बिलकुल सिर पर थे। ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि ऐसे समय मे केन्द्र मे भी भारतीयो के साथ कुछ समझौता हो जाए, और 1935 के इडिया ऐक्ट के सघ वाले हिस्से को कुछ उलट फेर के साथ भारतीय ग्रहण कर लें। सुभाष ने इसकी परवा नही की, और अपने प्रत्येक व्याख्यान मे कडे शब्दो में सघ योजना की निन्दा की। उन्होंने यहा तक कहा कि यदि काग्रेस सघ योजना ग्रहण करे, तो वह अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे देंगे और इसके विरुद्ध सग्राम करेंगे।

त्रिपुरी काग्रेस 1939

इसी समय अगली काग्रेस के सभापति का चुनाव हुआ। चुनाव म सुभाष जीत गए। गाधीजी अब तक चुप थे, पर अब उन्होने कहा कि पट्टाभि की हार मेरी हार है। पर सुभाष तो चुने जा चुके थे। इन्ही परिस्थितियो मे 1939 मे त्रिपुरी काग्रेस का अधिवेशन 10,11,12 मार्च को हुआ। जब त्रिपुरी मे काग्रेस होन वाली थी, उस समय सुभाष बहुत बीमार थे (इसलिए मौलाना अबुलकलाम ने सभापतित्व किया) और दूसरे, उन्ही दिनो गाधीजी राजकोट के सम्बन्ध मे अनशन कर रहे थे। इन दिनो बोसवादी तथा गाधीवादियो का सम्बन्ध इतना खराब हो गया कि गाधीवादी कहते थे कि बोस बीमार नहा हैं लोगो की सहानुभूति पाने के लिए मक्कड मारकर पडे हैं। दूसरी तरफ लोगो ने यह कहा कि इस समय गाधीजी के अनशन का उद्देश्य अपनी तरफ काग्रेसजनो की सहानुभूति खीचकर सुभाष को नीचा दिखाना है।

पत प्रस्ताव— पहले यह भय था कि त्रिपुरी मे अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाया जाएगा पर यह प्रस्ताव नही आया। इसकी जगह पत प्रस्ताव रखा गया, जिसम अध्यक्ष से कहा गया कि आप महात्माजी की अनुमति से अपनी कार्यसमिति बनाए। काग्रेस समाजवादी दल इस प्रस्ताव पर अलग हट गया। इसी को सुभाष के प्रशसक त्रिपुरी का विश्वासघात कहते हैं। पत प्रस्ताव पास हो गया।

सुभाष का इस्तीफा और फारवड ब्लाक का सगठन—झगडा बढता ही गया और सुभाष कार्यसमिति न बना सके। पहले की कार्यसमिति के सदस्यो ने एक साथ इस्तीफा दे दिया। अब सुभाष के लिए परिस्थिति विकट हो गई। अन्त मे उन्हे इस्तीफा दे देना पडा, और राजेन्द्र बाबू काग्रेस के सभापति बनाए गए। इसी समय सुभाष ने फारवड ब्लाक नाम से नई सस्था का सगठन किया। इसका उद्देश्य पहले एक ब्लाक अर्थात् वामपक्ष के सयुक्त मोर्चे के रूप मे रहना था, पर वामपक्षी दलो ने जब सहयोग नही किया, तो मोर्चों की जगह धीरे धीरे यह एक दल मे परिणत हो गया। जिस समय फारवड ब्लाक बना था, उसमे और गाधीवादी दल मे सिवा इसके कोई विशेष सैद्धातिक मतभेद नही था कि फारवर्ड ब्लाक तेज चाल मे विश्वास करता था, गाधी गुट को नेतृत्व से हटाना चाहता था, और समझौते के विरुद्ध था।

कुछ आपत्तिजनक प्रस्ताव—1939 के जून मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने कुछ ऐसे प्रस्ताव पास किए जिनसे यह समझा गया कि काग्रेस के अन्दर के वामपक्षी दलो की स्वतन्त्रता पर आघात हुआ है। ये प्रस्ताव सर्वसम्मति से या बहुत बडी सम्मति से पास नहीं हुए थे। एक प्रस्ताव मे यह हिदायत भी गई कि प्रान्तीय काग्रेस कमेटी स अनुमति प्राप्त किए बगर कोई काग्रेसजन सत्याग्रह नही कर सकता। समझा गया कि इस प्रस्ताव से किसान तथा मजदूर सभाओ की स्वतन्त्रता छिन गई थी। दूसरे प्रस्ताव म काग्रेस मन्त्रिमण्डलो को प्रान्तीय काग्रेस कमेटी से स्वतन्त्र करके अखिल भारतीय पालियामेटरी सब-कमेटी के, जिसके प्रधान सरदार पटेल थे, अधीन कर दिया गया। इन दिनो कुछ प्रान्ता

मे वामपक्षियो का काग्रेस म जोर था।

प्रस्तावों का विरोध—इन प्रस्तावो के विरुद्ध क्या किया जाए इसका निर्णय करने के लिए सब मतस्थानीय वामपक्षियो की एक सभा लेफ्ट कसालिडशन कमेटी के नाम से हुई, जिसम तय हुआ कि 9 जुलाई को अखिल भारतीय रूप से इन प्रस्तावों का विरोध किया जाए। तदनुसार उस तारीख को सावजनिक सभाओ का ऐलान हुआ। आचाय कृपलानी तथा डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने धमकी दी कि यदि सूचना के अनुसार सभा की गई, तो अनुशासन की कारवाई की जाएगी। यद्यपि एम० एन० राय इस कमेटी मे शामिल थे, पर धमकी पाकर वह कायक्रम से ऐन मौके पर खिसक गए। और भी बहुत से वामपक्षी कन्नी काट गए। इसलिए यह वामपक्षी कमेटी टाय-टाय फिस्स हो गई।

अनुशासन की कारवाई—9 जुलाई की सभाएं कुछ हद तक सफल रहीं। भारत के एक कोने म लेकर दूसरे कोने तक सभाए हुई। एम० एन० राय के अतिरिक्त सब वामपक्षियो न इन सभाओ म भाग लिया। इस प्रदशन के फलस्वरूप कायसमिति की अगली बैठक म सुभाष पर अनुशासन की कारवाई की गई और उन्हे सब पदों से निकाल कर चार आने का सदस्य भर रहने दिया गया। उनके अलावा और जिन काग्रेसजनों ने 9 जुलाई की सभा मे भाग लिया था, उन पर अनुशासन की कारवाई करने का भार प्रान्तीय काग्रेस कमेटियो पर छोड दिया गया। उस समय सुभाष बगाल काग्रेस कमेटी के सभापति थे, किन्तु इस प्रस्ताव के बाद वे सभापति नही रह सकते थे। इस कारण वे उससे अलग हो गए।

बगाल में गडबड—बगाल प्रान्तीय काग्रेस कमेटी ने दूसरा सभापति चनना अस्वीकार किया पर सुभाष बाबू के बीच मे पडने से उन्ही के द्वारा नामजद श्री राजेन्द्र चन्द्र देव चुने गए। रामगढ के पहले बगाल म काग्रेस का कोई चुनाव न हो सका, और बगाल, रामगढ काग्रेस के अध्यक्ष के चुनाव मे भाग न ले सका। वहा कुछ काग्रसी नेता तथा करीब आधे एम० एल० ए० एड हॉक कमेटी की तरफ हो गए पर जनता सम्पूर्ण रूप से उनके विरुद्ध थी, इतनी कि एड हॉक कमेटी के लोग एक भी सावजनिक सभा नहीं कर सकते थे। इस प्रकार बगाल मे बराबर दो काग्रेस कमेटिया काम करती रही और जब नेतागण 1942 के बाद छूटे, तभी उनका मिलन हुआ।

वामपक्षी एकता की चेष्टा—सुभाष ने उस युग मे वामपक्षी शक्तियो को एकत्र करने की बहुत बडी चेष्टा की थी। वह चेष्टा सफल नहीं हुई, पर इस बात को भलाया नही जा सकता कि इस दिशा मे उन्होने एक बडा कदम रखा था।

9

द्वितीय महायुद्ध और कांग्रेस

हिटलर को बढ़ावा—हम पहले चेकोस्लोवाकिया के बलिदान द्वारा हिटलर रूपी दानव को तुष्ट करने की चेष्टा का उल्लेख कर चुके हैं। म्यूनिक पैक्ट में यह आशा थी कि इतने से हिटलर मान जाएगा, पर ऐसा नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि यूरोप में लड़ाई छिड़ने की स्थिति आ गई। रूस के नेता इस बात को जानते थे, और वे चाहते थे कि रूस और पश्चिमी लोकतंत्रों में समझौता हो जाए, जिससे हिटलर का विरोध किया जा सके पर अंग्रेज राजनीतिज्ञ इसे इस आशा से टालते रहे कि हिटलर रूस पर हमला करेगा। इसी धारणा के वशवर्ती होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जर्मनी के फासिस्टवाद को बढ़ाया था। हिटलर ने इटली तथा जापान के फासिस्ट राष्ट्रों के साथ एक कामिन्टर्न विरोधी पैक्ट कर रखा था, जिसके कारण उनके मन में यह सुनहली आशा थी।

रूसी जर्मन पैक्ट—इन आशाओं को व्यर्थ करने तथा तत्काल अपनी रक्षा करने के लिए सोवियत रूस ने फासिस्ट जर्मनी के साथ 23 अगस्त 1939 को अनाक्रमण संधि कर ली। स्मरण रहे कि सोवियत रूस पश्चिमी लोकतंत्रों के साथ जो संधि करना चाहता था, वह केवल अनाक्रमण संधि नहीं थी, बल्कि उस संधि में यह शर्त रखी जाने वाली थी कि यदि एक पर आक्रमण हो, तो दूसरा उसकी रक्षा के लिए आ जाए। पर, पश्चिमी लोकतंत्रों ने इसे मंजूर नहीं किया था। तब रूस को जर्मनी से पैक्ट करना पड़ा।

भारत सरकार भी लड़ाई में कूदी—जो हो इसी के बाद हिटलर ने पोलैंण्ड पर हमला कर दिया। ब्रिटेन तथा फ्रांस पोलैण्ड की रक्षा के लिए वचनबद्ध थे इसलिए यहीं से महायुद्ध छिड़ गया। ब्रिटेन के लड़ाई में कूदते ही भारत सरकार ने भी युद्ध घोषणा कर दी। इस मामले में भारत की ब्रिटिश सरकार ने न तो केन्द्रीय धारासभा की राय ली, और न प्रान्त के मन्त्रिमण्डलों की ही राय ली। सरकार इतने ही से संतुष्ट नहीं रही, बल्कि उसने अब प्रान्त की कांग्रेस सरकारों के सिर के ऊपर से काम करना शुरू किया।

कांग्रेस का रुख—कांग्रेस कार्यसमिति ने अगस्त 1939 के प्रारम्भ में ही अर्थात लड़ाई छिड़ने के तीन सप्ताह पहले ही यह प्रस्ताव पास किया था कि "कांग्रेस लोकतंत्र तथा स्वतंत्रता के पक्ष में है। कांग्रेस ने बार-बार यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया के सुदूर-पूर्व में फासिस्ट आक्रमण तथा चेकोस्लोवाकिया और स्पेन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा लोकतंत्र के साथ विश्वासघात किए जाने की निन्दा की है। ब्रिटिश सरकार की भूतकाल की नीति तथा इस समय के रवैये से यह ज्ञात होता है कि यह सरकार लोकतंत्र तथा स्वतंत्रता की पक्षपाती नहीं है, और यह किसी भी समय इन आदर्शों को तिलांजलि दे सकती है। ऐसी हालत में भारतवर्ष ऐसी सरकार के साथ न तो सहयोग कर सकता है। और न वह लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के लिए अपना धन-जन दे सकता है जबकि इस बात का खतरा है कि इन आदर्शों के साथ विश्वासघात किया जाएगा और जब कि उसे स्वयं भी लोकतांत्रिक स्वतंत्रता नहीं मिली है।' कांग्रेस कार्यसमिति ने सरकार की नीति के

विरोध मे केन्द्रीय धारासभा के काग्रेसी सदस्यो को हिदायत दी कि वे अगले अधिवेशन मे उपस्थित न हो।

सरकार द्वारा स्वतन्त्रता सकोच—त्रिपुरी काग्रेस म ही सुभाष बाबू ने अपने भाषण मे यह कहा था कि लडाई नजदीक आ ही रही है इसलिए यह मौका हाथ से जाने न दिया जाए, और 6 महीने की मुहलत देकर सरकार के खिलाफ लडाई छेड दी जाए। अन्य वामपन्थियो ने भी इसी आशय की बातें कही थी। जिस समय महायुद्ध छिडा, पडित जवाहरलाल नेहरू चुगकिंग मे थे। वह फौरन वापिस बुल ए गए। इस बीच भारत सरकार ने न केवल भारत की तरफ से लडाई छेड दी, बल्कि उन्होने कुछ आर्डिनेन्स भी लगा दिए, जिनसे प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलो के अधिकार बहुत कुछ छिन गए। ब्रिटिश ससद ने भी फौरन 1935 के ऐक्ट को सुधारते बल्कि बिगाडते हुए एक सशोधन पास कर दिया जिससे प्रान्तीय स्वायत्त शासन एक मज़ाक बन गया था।

काग्रेस शर्त के साथ सहायता पर तैयार — 14 सितम्बर को काग्रेस कायसमिति की बैठक मे भाग लेने के लिए जिन्ना को भी निमन्त्रण दिया गया था, पर वह नही आए। कायसमिति ने फासिस्टवाद और नात्सीवाद की निन्दा की, पर साथ ही वायसराय तथा ब्रिटिश सरकार ने जो कुछ किया था उसके प्रति भी विरोध जाहिर किया। काग्रस ने सहयोग देना स्वीकार किया, पर कहा कि सहयोग इन मानो मे ही हो सकता है। जबदस्ती सहयोग प्राप्त करना गलत है। कहा गया कि काग्रेस लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता के पक्ष मे है, पर भारतवष एक ऐसे युद्ध मे सहयोग नही दे सकता जिसका उद्देश्य तो लोकतत्र तथा स्वतन्त्रता बताया जा रहा है, परन्तु स्वय भारतवष मे ही जो कुछ मामूली नागरिक स्वतन्त्रता थी वह भी छीन ली गई है। यह कहा गया कि यदि युद्ध का उद्देश्य साम्राज्यवादी स्वार्थो, उपनिवेशो, स्थिर स्वार्थों की रक्षा है, तो भारत को ऐसे युद्ध से कोई मतलब नही हो सकता। रजवाडो के शासको की ओर से जो यह ऐलान किया था कि वे लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता की ओर से लडेंगे, कायसमिति ने इसकी समालोचना करते हुए कहा कि पहले वे अपनी रियासतो मे तो लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता स्थापित करें, फिर बढ-चढकर दूसरी बातें करें। कायसमिति ने बार-बार यह बात साफ कर दी कि वह ब्रिटेन को सहायता देने के लिए तैयार है, पर बिना शर्त नहीं।

मन्त्रिमण्डलों का इस्तीफा —ब्रिटिश सरकार ने इसका कोई उत्तर नही दिया। उधर 8 प्रान्तो मे काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो की हालत बुरी होती जा रही थी। गवनरो और मन्त्रियो मे खीचातानी बढ रही थी। 22 अक्तूबर को काग्रेस कायसमिति ने मन्त्रिमण्डलों को पद त्याग करने की हिदायत दी, और नवम्बर मे ही एक एक करके मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफा दे दिया।

दमनचक्र शुरू- मन्त्रिमण्डलो का इस्तीफा देना था कि दमनचक्र बहुत जोर से शुरू हो गया। पजाब की अहरार पार्टी तथा सयुक्त प्रान्त की यूथ लीग लडाई छिडने के बाद से ही युद्ध विरोधी प्रचार काय कर रही थी। चारो तरफ इन लोगो की तथा अन्य लोगो की गिरफ्तारिया शुरू हो गइ। अहरारो ने इस समय सबसे अधिक बहादुरी दिखलाई। स्मरण रहे कि अहरार मुस्लिम प्रधान सस्था थी।

रामगढ काग्रेस 1940

काग्रेस ने अब भी यह फैसला नही किया कि लडाई के विरुद्ध कुछ किया जाए। इसी अवस्था मे 1940 के 19 20 माच को मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता मे बिहार के रामगढ नामक स्थान मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। यह काग्रेस इस

कारण बहुत ही एतिहासिक रही कि इसके बाद कई सालो तक कांग्रेस के अधिवेशन की कोई नौबत ही नही आई। अध्यक्ष ने बडी योग्यता के साथ कांग्रेस की माग का स्पष्टीकरण किया, और यह बताया कि कांग्रेस साम्राज्यवादी तथा फासिस्ट तरीको के विरुद्ध है और उसे बहुत ही खुशी होगी यदि वह आजाद होकर फासिस्टवाद के विरुद्ध लड सके। मौलाना ने अपने भाषण म हिन्दू और मुसलमानो म सद्भाव के लिए भी विशेष अपील की। उन्होने कहा, "एक हजार वर्षों के संयुक्त जीवन से हम एक जाति म परिणत हो चुके हैं।"

रामगढ के निश्चय— इस कांग्रेस मे युद्ध समस्या पर यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि कांग्रेस समझती है कि ब्रिटिश सरकार इस युद्ध को किसी महान उद्देश्य की सिद्धि के लिए नही, बल्कि साम्राज्य की रक्षा के लिए कर रही है। कांग्रेस न घोषणा की कि पूर्ण स्वतन्त्रता के अलावा भारतीय किसी बात पर राजी नही हो सकते। कांग्रेस न अपने प्रस्ताव म साफ कह दिया कि भारतवर्ष का विधान भारतीयो का विधान सम्मेलन ही बना सकता है। उसने भारतवर्ष को विखडित करने के प्रयास का विरोध किया।

समझौता विरोधी सम्मेलन—रामगढ कांग्रेस के अवसर पर सुभाषचन्द्र बोस ने वहा एक समझौता विरोधी सम्मेलन किया। यह सम्मेलन बहुत ही सफल रहा, और इसमें समझौतामूलक नीति का विरोध किया गया। स्वामी सहजानद इसके प्रमुख व्यक्तित्व थे। जयप्रकाश इसम आने को थे पर वह नही आए, उलटे राहुल सांकृत्यायन को भी तार दे दिया कि आप न आए।

फारवार्ड ब्लाक का संग्राम— इस अवसर पर फारवार्ड ब्लाक न यह तय किया कि 6 अप्रैल स स्वतन्त्रता संग्राम छेड दिया जाए। बाद को सचमुच 6 अप्रैल को कुछ स्थानो म सत्याग्रह के ढग की बातें हुई। मजे की बात यह है कि बगाल मे जहा सुभाष स्वय मौजूद थे कुछ नही हुआ। सुभाष कारपोरेशन के चुनाव मे व्यस्त रहे, पर उत्तर भारत के कुछ स्थानो विशेषकर इलाहाबाद मे कोतवाली, जेल इत्यादि स्थानो पर झण्डा चढाने का आदोलन चला, और इसम करीब एक सौ व्यक्ति गिरफ्तार हुए। यूथ लीग ने यह आदोलन चलाया। अत यह कहा जा सकता है कि सुभाष द्वारा चलाया हुआ यह आदोलन सख्या की दृष्टि से सोलहो आने असफल रहा। इस आदोलन मे दूसरे किसी वामपक्षी दल ने भाग नही लिया। हा, कम्यूनिस्ट पार्टी ने युद्ध विरोधी पर्चेबाजी जारी रखी। कारपोरेशन से छुट्टी पाने के बाद सुभाष ने हालवेल मानुमेट तोडने का आदोलन चलाया, पर फजलुल हक ने चालाकी से मूर्ति ही रात को हटवा ली, इस कारण कई सौ व्यक्तियो की गिरफ्तारी के बाद आदोलन ठप्प हो गया।

आर० एस० पी० का जन्म—रामगढ मे ही अनुशीलन समिति के नेताओ की एक अखिल भारतीय बैठक हुई। अनुशीलन समिति बगाल की तपी हुई क्रातिकारी पार्टी थी। इस अधिवेशन म पार्टी का नाम भारतीय क्रातिकारी समाजवादी दल या आर० एस० पी० आई० रखा गया।

जून 1940 का सहयोग प्रस्ताव—सरकार का दमन चक्र जोरो के साथ चलने लगा। कांग्रेस के कुछ नेता सहयोग के लिए लालायित हो रहे थे राजगोपालाचारी इस प्रवृत्ति के प्रमुख नेता थे। इन्ही के नेतृत्व मे जून 1940 मे कांग्रेस कार्यसमिति ने यह कहा कि अभी सरकार इतना करे कि आदर्श रूप से पूर्ण स्वतन्त्रता को मान ले पर कार्य रूप म 1935 के इण्डिया ऐक्ट के अन्दर ही केन्द्र मे विभिन्न दलो की राष्ट्रीय सरकार बनाई जाए। वायसराय रहे, पर शक्ति इस सरकार के हाथ में रहे, तो कांग्रेस सरकार को लडाई चलाने में मदद देगी। महात्माजी न इस प्रस्ताव का इस कारण विरोध किया

कि उनका कहना था कि इस प्रकार युद्धोद्योग में शिरकत से अहिंसा की नीति टूट जाती है। पर कांग्रेस के इस नरम प्रस्ताव पर भी सरकार राजी नही हुई।

मौलाना आजाद उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे, इस कारण उन्होंने युद्ध से उत्पन्न कांग्रेस के चोटी के नेताओ मे अन्दर-अन्दर क्या लहरें प्रति लहरें उठी, उसका जो वर्णन दिया, उसे कुछ ब्योरे के साथ हम उनकी आत्मकथा से उद्धृत कर रहे हैं। वह लिखते हैं "कांग्रेस के इतिहास मे यह बहुत ही कांटे का समय था, पर इससे भी अधिक खतरनाक यह बात थी कि हम लोगो मे इस संबंध मे मतभेद थे। मैं कांग्रेस का प्रधान था, और मैं चाहता था कि भारत को लोकतन्त्रो के शिविर मे ले जाऊ, बशर्ते कि वह स्वतन्त्र कर दिया जाए। लोकतन्त्र एक ऐसा लक्ष्य था जिस पर भारतीय बहुत स्पष्ट भावनाएं रखते थे। पर लोकतन्त्री शिविर के साथ हो जाने के मार्ग मे एक ही रोड़ा था और वह था भारत की गुलामी। गांधीजी के लिए यह बात ऐसी नही थी। गांधीजी के लिए प्रश्न शांतिवाद का था न कि भारत की स्वतन्त्रता का। मैंने इस पर स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस शांतिवादी संगठन नहीं है, बल्कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए बनाई संस्था है। इसलिए मेरे अनुसार गांधीजी ने जो प्रश्न उठाया था, वह अप्रासंगिक था, पर गांधीजी ने अपनी राय नही बदली। उनका दृढ विश्वास यह था कि किसी भी हालत मे भारत को लड़ाई मे भाग नही लेना चाहिए।'

पर गांधीजी की यह बात सबको मान्य नही थी। इस पर कांग्रेस कार्यसमिति मे मतभेद हो गया। मौलाना आजाद लिखते हैं "प्रारम्भिक सोपानो मे जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, राजगोपालाचारी तथा खान अब्दुलगफ्फार खां मेरे साथ थे। राजेन्द्र प्रसाद आचार्य कृपलानी और शंकरराव देव पूर्ण रूप से गांधीजी के साथ थे। गांधीजी के साथ साथ उनका यह कहना था कि यदि यह मान लिया गया कि स्वतन्त्र भारत युद्ध मे भाग ले सकता है तो स्वराज्य के लिए भारत के शांतिमय संग्राम का आधार खत्म हो जाएगा। दूसरी तरफ मैं यह महसूस करता था कि स्वतन्त्रता के लिए आन्तरिक संग्राम तथा आक्रमण के विरुद्ध बाहरी संग्राम मे फर्क है। स्वतन्त्रता के लिए संग्राम करना एक बात थी और देश स्वतन्त्र हो जाने पर युद्ध करना दूसरी बात थी। मेरा यह कहना था कि इन दो तर्कों को मिलाना नही चाहिए।'

मौलाना के निकट अहिंसा केवल संग्राम का एक तरीका मात्र था। वह उससे हर हालत मे बंधे रहने पर विश्वास नही करते थे और जैसा कि उन्होंने अपने संस्मरण के प्रथम अध्याय मे दिखाया है वह पहले एक क्रांतिकारी थे और क्रांतिकारियो के साथ ही उनके राजनीतिक जीवन का सूत्रपात हुआ था।

मौलाना आजाद के संस्मरणो से पता चलता है कि किस प्रकार युद्ध के प्रभाव के कारण कार्यसमिति के नेता अपने विचार विकसित करते चले गए। वह लिखते हैं 'युद्ध के प्रति अपने रुख के संबंध मे कार्यसमिति के सदस्य लड़खड़ाते रहे। उनमे से कोई भी इस बात को भूल नही सकता था कि गांधीजी सैद्धांतिक रूप से युद्ध मे किसी भी तरह भाग लेने के विरोधी थे और न वे यही भूल सकते थे कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम उन्ही के नेतृत्व मे वर्तमान आकार प्राप्त कर सका था। पहली बार एक मौलिक प्रश्न पर वे उनसे मतभेद रख रहे थे और उन्हें अकेला छोड़ रहे थे। साधन के रूप मे अहिंसा मे दृढ विश्वास से उनके निर्णय पर असर आने लगा। पूना की सभा के एक महीने के अन्दर सरदार पटेल ने अपनी राय बदल दी और उन्होंने गांधीजी का रुख ग्रहण कर लिया। दूसरे सदस्य भी डावांडोल रहे। जुलाई 1940 मे डा० राजेन्द्र प्रसाद

तथा कार्यसमिति के कुछ सदस्यों ने मुझे लिखा कि वे युद्ध के संबंध में गांधीजी के विचारों में दृढ़ता के साथ विश्वास रखते हैं और वे चाहते हैं कि कांग्रेस उस पर बनी रहे। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे विचार भिन्न हैं और पूना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मेरा ही समर्थन किया था। इसलिए उनके मन में यह संदेह उठ खड़ा हुआ था कि उन्हें कार्यसमिति में इसलिए नामजद किया गया था कि राष्ट्रपति की (उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहते थे) सहायता करें, पर चूंकि एक मौलिक प्रश्न पर हमें उनका मतभेद था तो उनके लिए इस्तीफा देने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया था। उन्होंने इस विषय पर गहराई के साथ विचार किया था और हमें किसी तरह मुसीबत में न डालने के लिए वह तब तक कार्यसमिति के सदस्य बने रहने को तैयार थे, जब तक कि उनके मतभेद का कोई तात्कालिक व्यावहारिक असर नहीं होता। पर यदि ब्रिटिश सरकार ने मेरी शर्तों को स्वीकार कर लिया और युद्ध में भाग लेना एक सजीव प्रश्न हो गया, तो उनके सामने इसके सिवा कोई चारा नहीं रहेगा कि वे पदत्याग करें। उन्होंने यह भी लिखा कि यदि मैं इस स्थिति से सहमत होऊं तो वे कार्यसमिति के सदस्य बने रहने को तैयार हैं, नहीं तो इस पत्र को त्यागपत्र के रूप में लिया जाए। इस पत्र को पढ़कर मुझे बहुत धक्का सा लगा क्योंकि इस पर जवाहरलाल नेहरू, राजगोपालाचारी, आसफ अली और सैयद महमूद के अलावा सभी सदस्यों के हस्ताक्षर थे—यहां तक कि अब्दुल गफ्फार खां ने, जो पहले मेरे बहुत बड़े समर्थक थे, अब अपनी राय बदल दी थी। मुझे अपने साथियों से इस प्रकार के किसी पत्र की आशा नहीं थी। मैंने फौरन लिख दिया कि मैं पूर्ण रूप से उनके दृष्टिकोण को समझता हूं और उनकी स्थिति को मानता हूं।"

गांधीजी अपनी राय पर बने रहे, यहां तक कि जब वह लार्ड लिनलिथगो से मिले तो उन्होंने कहा कि ब्रिटेन के लोगों को अस्त्र सन्यास लेना चाहिए और उन्हें आध्यात्मिक शक्ति से हिटलर का विरोध करना चाहिए। इस पर लार्ड लिनलिथगो सकपका गए। जब गांधीजी जाने लगे, तो जैसा कि वह हमेशा करते थे, घण्टी बजाकर अपने ए॰ डी॰ सी॰ को साथ में कर देते थे जो उन्हें मोटर पर बिठाने आता था, पर इस अवसर पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। जब गांधीजी मौलाना से मिले, तो उन्होंने भद्रता से इस बात का जिक्र किया, तो मौलाना ने कहा कि आपका सुझाव बहुत ही अद्भुत था और वाइसराय जरूर इससे हक्के बक्के रह गए होंगे। इस पर गांधीजी खूब हंसे।

कुछ आगे जाकर बता दिया जाए कि जब मौलाना 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह वाली कैद से छूटे तो उन्होंने फौरन ही बारदोली में, जहां गांधीजी ठहरे हुए थे, कार्यसमिति की बैठक बुलाई। वहां उन्होंने यह अनुभव किया कि गांधीजी और उनमें मतभेद और बढ़ चुका है। वह लिखते हैं "मैं फौरन ही गांधीजी से मिलने गया और ऐसा मालूम हुआ कि हम लोगों में मतभेद बहुत बढ़ गया है। पहले केवल सिद्धांत संबंधी मतभेद था पर अब वह स्थिति को जिस तरह देखते थे और मैं जिस तरह देखता था, उसमें आधारभूत भिन्नता थी। गांधीजी अब दृढ़ता के साथ यह समझते थे कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र मानने के लिए तैयार और इच्छुक थी बशर्ते कि भारत युद्ध प्रयास में पूरी सहायता दे। उनका यह ख्याल था कि यद्यपि ब्रिटिश सरकार प्रमुख रूप से अनुदारवादी थी और मिस्टर चर्चिल उसके प्रधान मंत्री थे, फिर भी युद्ध अब इस मंजिल में पहुंच चुका था कि ब्रिटिश सरकार को भारत की स्वतंत्रता सहयोग के मूल्य के रूप में माननी ही पड़ेगी। पर इस संबंध में मेरे विचार बिलकुल भिन्न थे। मेरा विचार यह था कि ब्रिटिश सरकार ईमानदारी के साथ हमारा सहयोग चाहती थी, पर

वह भारत की स्वतन्त्रता स्वीकार करने के लिए अभी तैयार नही थी।"

इस संस्मरण मे मौलाना आजाद ने जहा गाधीजी के साथ अपने मतभेद स्पष्ट रूप से दिखलाए हैं, वहा यह भी दिखलाया है कि गाधीजी मे इस बात की अद्भुत प्रतिभा थी कि वे दो विरोधी मतो को एक प्रस्ताव मे दरशा कर दोनो को खुश कर सकते थे। यही बात बाद का कार्यसमिति मे जो प्रस्ताव रखा गया, उसमे देखी गई।

मौलाना आजाद ने यह भी दिखलाया है कि सुभाषचन्द्र बोस 26 जनवरी, 1941 के पहले ही भारत से सटक गए थे और इसका गाधीजी पर बडा प्रभाव पड़ा था। मौलाना आजाद लिखते हैं "गाधीजी स्पष्ट शब्दो मे युद्ध के परिणाम के सबध म कुछ कहते नही थे, पर उनके साथ बातचीत करते हुए हमे ऐसा मालूम हुआ कि वह धीरे धीरे मित्र पक्ष की विजय के सम्बन्ध म संदिग्ध हो चले थे। मैंने यह भी देखा कि सुभाष बोस के जर्मनी भाग जाने का उन पर भारी प्रभाव पडा था। पहले वह सुभाष बाबू के बहुत से कार्यों को पसद नही करते थे, पर अब मैंने देखा कि उनकी राय बदल चुकी है। उनके कुछ मन्तव्यो से मेरा यह मत बना होगा कि सुभाष बोस ने भारत से भागने म जो साहस तथा साधन-सम्पन्नता दिखलाई थी, उसकी वह प्रशसा करते थे। सुभाष बोस के प्रति प्रशसा भावना के कारण उनके अनजान म ही युद्ध स्थिति के सबध म उनके विचारो पर रग चढने लगा था।"

मौलाना आजाद ने तो यहा तक लिखा है कि यह प्रशसा भावना भी एक कारण था कि जब भारत मे क्रिप्स मिशन आया तो उस पर एक धुध पडी रही।

पहले हम देख चुके हैं कि किस प्रकार युद्ध स्थिति के सबध म महात्माजी के विचार बदले। पर आगे चलकर उनके विचार और किस तरीके से बदले, इस पर मौलाना आजाद लिखते हैं "जून 1942 मे मैं वर्धा गाधीजी से मिलने गया और उनके साथ लगभग पाच दिन रहा। उनके साथ जो बातचीत होती थी, उससे मैं यह समझ गया कि युद्ध के प्रारम्भ मे उन्होंने जो रुख लिया था, उससे वह बहुत दूर चले गए थे। बात यह है कि इन दिनो जापानी सेना जीत पर जीत प्राप्त कर रही थी और भारत सरकार भी यह समझती थी कि जापानी डायमण्ड हार्बर की तरफ से कलकत्ता पर हमला करेंगे और उस हालत मे भारत सरकार ने यह भी तय किया था कि किस प्रकार से पीछे हटा जाएगा। एक गुप्त गश्ती चिट्ठी प्रधान अधिकारियो को भेजी गई थी कि किस प्रकार वे कलकत्ता, हावडा और चौबीस परगना धीरे धीरे छोड दें और कौन सा रास्ता पकडकर चलें। रास्ते म कई जगह जापानियो के विरुद्ध प्रतिरोध होने वाला था। उस योजना के अनुसार पहला प्रतिरोध पद्मा नदी पर, दूसरा आसनसोल, तीसरा इलाहाबाद पर होने वाला था। यह भी तय हो चुका था कि जापानी हमले की हालत मे घर फूक नीति अपनाई जाए। यह भी तय था कि जमशेदपुर के इस्पात कारखाने को नष्ट कर दिया जाए।"

इस स्थिति मे गाधीजी का क्या मत रहा, इस पर मौलाना लिखते हैं 'मुझे आश्चर्य हुआ कि गाधीजी मुझसे मतभेद रखते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि जापानी सेना भारत मे आए तो वह हमारे शत्रु के रूप मे नही, बल्कि ब्रिटेन के शत्रु के रूप म आएगी। उनका कहना था कि यदि अंग्रेज फौरन भारत छोड जाए तो उनका विश्वास है कि जापान भारत पर आक्रमण नही करेगा। मैं उनके हर मत को नही मान सका और लम्बी बहसो के बावजूद हम किसी राय पर नही पहुच सके। मैंने देखा कि सरदार पटेल के भी विचार वही हैं जो गाधीजी के हैं और शायद उन्होंने ही गाधीजी पर यह प्रभाव डाला था।"

गाधीजी पर नई रोशनी—मौलाना ने बहुत सी बातें ऐसी लिखी हैं जिनसे

गांधीजी के नेतृत्व पर काफी नई रोशनी पड़ती है। पर 1942 के आन्दोलन के संबंध में उन्होंने लिखा है "गांधीजी यह सोच रहे थे कि इस मोड़ पर कोई न कोई आन्दोलन चलाना चाहिए, पर मैंने जब यह पूछा कि प्रतिरोध का कार्यक्रम क्या हो तो उनके पास कोई स्पष्ट विचार नहीं था। एकमात्र बात जो उन्होंने कही, वह यह थी कि इस बार लोग स्वेच्छा से जेल नहीं जाएंगे। उन्हें चाहिए कि वे गिरफ्तारी का प्रतिरोध करें और तभी गिरफ्तारी स्वीकार करें जब शारीरिक रूप से इसके लिए बाध्य हो जाएं।"

कार्यसमिति के अन्य सदस्यों में से अधिकांश के मन में भी इस आंदोलन के संबंध में कोई स्पष्ट विचार नहीं था। मौलाना ने लिखा है 'वे बहुत कम मौकों पर किसी बात पर विचार करते थे और किसी भी हालत में वे गांधीजी के निर्णय के सामने अपने निर्णय को प्रधानता नहीं देते थे। इस रूप में उनके साथ तर्क करना लगभग व्यर्थ था। हमारी सारी बातचीत के बाद जो कुछ वह कह सके, वह यही था कि हमें गांधीजी पर पूरा विश्वास रखना चाहिए। उनका कहना था कि यदि हम उन पर विश्वास रखें तो वह कोई न कोई रास्ता निकाल लेंगे। उन्होंने इस संबंध में 1930 के नमक सत्याग्रह आन्दोलन का उदाहरण दिया, कि जब वह शुरू हुआ था तो कोई भी नहीं जानता था कि क्या होगा। सरकार स्वयं उस आंदोलन को तुच्छ समझती थी। परन्तु नमक सत्याग्रह आन्दोलन को बहुत बड़ी सफलता मिली और सरकार को शर्तें मानने पर राजी होना पड़ा। सरदार पटेल और उनके साथियों का कहना था कि इस बार भी गांधीजी को उसी प्रकार सफलता मिलेगी। मैं मानता हूं कि इस प्रकार की तर्क प्रणाली से मुझे संतोष नहीं होता था।'

जबर्दस्त परन्तु क्षणिक मतभेद—इस मौके पर मौलाना और गांधीजी में बहुत जबर्दस्त मतभेद हो गया जिसका संस्मरण में इस प्रकार उल्लेख किया गया है "5 जुलाई को हमारी बातचीत शुरू हुई और कई दिन तक चलती रही। इससे पहले कई अवसरों पर कई विषयों के संबंध में मुझ से गांधीजी का मतभेद हो चुका था। पर इससे पहले कभी हमारा मतभेद इतना पूर्ण नहीं हुआ था। यह उस समय सीमा तक पहुंच गया जब उन्होंने मुझे इस आशय का एक पत्र भेजा कि मेरा मत उनसे इतना भिन्न है कि हम एक साथ काम नहीं कर सकते और यदि कांग्रेस चाहती है कि गांधीजी आंदोलन का नेतृत्व करें तो मुझे कांग्रेस का अध्यक्ष पद त्याग देना चाहिए और कार्यसमिति से भी अलग हो जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि यही बात जवाहरलाल भी करें। मैंने फौरन ही जवाहरलाल को बुलाया और उन्हें गांधीजी का पत्र दिखलाया। सरदार पटेल भी आ गए और जब उन्होंने पत्र पढ़ा तो उन्हें भी बड़ा धक्का सा लगा। वह फौरन गांधीजी के पास गए और उन्होंने उनके इस रुख का जबर्दस्त विरोध किया। पटेल ने यह बताया कि यदि आजाद अध्यक्ष पद से अलग हो जाते हैं और जवाहरलाल और मैं कार्यसमिति में इस्तीफा दे देता हूं तो देश पर उसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ेगा। उस हालत में न केवल जनता का बुद्धिभ्रंश होगा बल्कि कांग्रेस की भी जड़ें हिल जाएंगी। गांधीजी ने यह पत्र मुझे 7 जुलाई को भेजा था, पर दोपहर के समय उन्होंने मुझे बताया। उन्होंने एक लम्बा भाषण दिया जिसका सार यह था कि उन्होंने सवेरे जल्दबाजी में वह पत्र लिखा था। अब उन्होंने उस विषय पर और भी सोचा है और वह उस पत्र को लौटाना चाहते हैं। मुझे उनकी बात माननी पड़ी। जब 3 बजे कार्यसमिति की बैठक हुई तो पहली बार जो गांधीजी ने कही, वह यह थी कि एक अनुतप्त पापी मौलाना के पास लौट आया है।"

इसके बाद किस तरह आंदोलन चला और सब नेता गिरफ्तार हुए, गांधीजी अलग रखे गए, परन्तु बाकी नेता अहमदनगर गढ़ में रखे गए, इन बातों को हम देखेंगे। इन्हीं

दिना मौलाना की पत्नी और बहन का देहान्त हुआ जिसका बडा मार्मिक वर्णन सस्मरण मे बहुत थोडे मे किया गया है। इसके बाद गाधीजी एकाएक छोड दिए गए क्योंकि अनशन से वह बहुत कमजोर हो चुके थे। मौलाना ने लिखा है कि गाधीजी ने यह समझा कि छूटने का कारण यह था कि ब्रिटिश नीति मे कुछ तबदीली हुई है पर बाद की घटनाओ ने यह दिखला दिया कि वह गलती पर थे। इसके बाद मौलाना लिखते हैं कि गाधीजी ने इस अवसर पर जो सरकार से बातचीत करने की चेष्टा की, वह भी गलत थी।

नेहरू और मौलाना सही साबित—मौलाना लिखते हैं "जब मैं 1957 में यह लिख रहा हू और पहली घटनाओ पर दृष्टिपात कर रहा हू तो मैं एक बात यहा बिना कहे नही रह सकता कि उनके घनिष्ट अनुयायियो में हिंसा बनाम अहिंसा के मामले में बहुत आश्चयजनक परिवतन हुए थे। सरदार पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद आचाय कृपलानी, डॉ० प्रफुल्ल घोष कायसमिति से उस समय इस्तीफा देना चाहते थे जबकि कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया था कि यह उस हालत मे युद्ध मे योगदान करेगी यदि ब्रिटेन भारत को स्वतत्र कर दे। उस समय उन्होंने मुझे यह लिखा था कि उनके लिए अहिंसा एक धम था जो भारतीय स्वतत्रता से कही अधिक महत्वपूर्ण था। पर जब भारत 1947 मे स्वतत्र हो गया तो उनमे से एक ने भी यह नही कहा कि भारतीय सेना तितर बितर कर देनी चाहिए। इसके विपरीत उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय सेना भी हिन्दुस्तान पाकिस्तान मे बाट दी जाए और भारत सरकार के तात्कालिक नियत्रण म रख दी जाए। स्मरण रहे कि उन दिनो के कमाण्डर इन चीफ ने जो यह प्रस्ताव किया था, उसके यह बिलकुल खिलाफ था। कमाण्डर इन चीफ ने सुझाव दिया था कि तीन साल तक यह सयुक्त सेना या एक सयुक्त कमान हो, पर वे इस पर राजी नही हुए थे। यदि अहिंसा सचमुच उनका धम था तो वह उस सरकार में जिम्मेदारी का पद कैसे ग्रहण कर सकते थे, जो सेना पर 100 करोड से ऊपर खच करती है। सच तो यह है कि इनम से कुछ सेना पर खच बढाना न कि घटाना चाहते थे और इस समय यह खच लगभग 200 करोड है कायसमिति म जवाहरलाल ही एक मात्र व्यक्ति थे जिनका मुझसे पूण रूप से मत मिलता था। मैं समझता हू कि घटनाओं ने उनकी और मेरी स्थिति को ही बल पहुचाया।"

उस समय कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद के ये सस्मरण बहूमूल्य हैं और हम भीतरी झाकी मिलती है।

मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान का नारा—कांग्रेस तो यह सब कर रही थी। उधर मुस्लिम लीग अपनी खिचडी अलग पका रही थी। हम पहले ही कह चुके हैं कि कवि मुहम्मद इकबाल किस प्रकार सवइस्लामवादी हो चुके थे। पर यह परिवतन आकस्मिक नही था। 1930 मे इलाहाबाद म हुई मुस्लिम लीग की बठक मे अध्यक्षीय भाषण म वह कह चुके थे 'मैं चाहता हू कि पजाब उत्तर पश्चिम सीमा प्रात सिंध बलूचिस्तान एक राष्ट्र म सम्मिलित हो। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर या उसके बाहर आत्मशासन और उत्तर पश्चिम भारत का एक ठोस मुस्लिम राष्ट्र मुझे ऐसा लगता है, मुसलमानो का अन्तिम भाग्य है कम से कम उत्तर पश्चिम भारत का।'

बीज तो इसके पहले से मौजूद था। 1940 की मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान को अपना ध्येय करार दिया। उसे अग्रेजी साम्राज्यवाद से लडना महत्त्वपूण नही लगा जसा कि इन शब्दो से—'ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर या बाहर" जाहिर है।

वैयक्तिक सत्याग्रह—अन्त मे कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया। कहना

न होगा कि लड़ने का यह कोई बेअसर तरीका नहीं था। इस सत्याग्रह में चुने हुए कांग्रेस जन "इस लड़ाई में मदद देना हराम है" कहकर या कहने की चेष्टा करते हुए गिरफ्तार होते थे। आंदोलन के संचालकों के अनुसार यह आंदोलन प्रतीकवादी था। नेहरू जी प्रथम वैयक्तिक सत्याग्रही होने वाले थे पर वह सत्याग्रह बिना किए गिरफ्तार हो गए और सत्याग्रह करने के पहले ही एक व्याख्यान के कारण वह जेल पहुंच गए। तब आचार्य विनोबा भावे प्रथम वैयक्तिक सत्याग्रही हुए।

फिर भी एकदम व्यर्थ नहीं—यह नहीं कहा जा सकता कि वैयक्तिक सत्याग्रह आंदोलन बिलकुल व्यर्थ था। कोई भी संग्राम एकदम व्यर्थ नहीं जाता, चाहे वह प्रतीकवादी ही क्यों न हो। न कुछ करने से प्रतीकवादी संग्राम ही अच्छा था। अब ऐसी हालत पहुंच गई थी कि युद्ध के विरुद्ध उठाई हुई उंगली भी हितकर थी। जब वैयक्तिक सत्याग्रह के फलस्वरूप भारत के जगत प्रसिद्ध व्यक्ति तथा कल के प्रांतीय मंत्री और मुख्य मंत्री गिरफ्तार होने लगे, तो इससे संसार के सामने यह बात साफ होती गई कि भारत के वास्तविक प्रतिनिधि लड़ाई के साथ नहीं हैं।

सरकार पर असर नहीं—जहां तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का संबंध है, उसने इस आंदोलन की कुछ परवाह नहीं की। सरकारी दमन जारी रहा। 1941 में सत्याग्रही कैदियों की संख्या बहुत बढ़ गई। संयुक्त प्रांत में सबसे अधिक लोगों ने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया। और प्रांतों में तो वैयक्तिक सत्याग्रह सचमुच वैयक्तिक रहा, पर संयुक्त प्रांत में यह जन आंदोलन में परिणत हो गया। अन्य प्रांतों में जब सत्याग्रह करने पर ही गिरफ्तारी नहीं हुई, तो लोग सत्याग्रह करते करते दिल्ली की ओर चले।

रूस पर आक्रमण और कम्युनिस्ट—22 जून को हिटलर ने यूरोप जीतने के बाद रूस पर हमला कर दिया। स्मरण रहे कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के सब लोग जेलों में पहुंच चुके थे। देवली कैंप में अनेक कम्युनिस्ट नजरबन्द थे। वे अभी तक युद्ध विरोधी थे। सच तो यह है कि दिसम्बर 1941 तक, जब तक कि इंगलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी से हिदायत नहीं आई कि अब युद्ध का समर्थन करना है क्योंकि यह 'जन युद्ध है,' तब तक वे युद्ध विरोधी ही रहे। इसके बाद वे एकाएक युद्ध के पक्षपाती हो गए। अब उनके निकट युद्ध का चरित्र बदल गया। उसके बाद वे युद्धोद्योग में मदद देने लगे, और 'जन युद्ध' के सिद्धान्त का प्रचार करने लगे। रायवादी तथा एम० एन० राय तो पहले ही जन मोर्चे से अलग हो गए थे, और सरकार के साथ काम कर रहे थे। उनका कहना था कि युद्ध फासिज्म विरोधी है। इसी कारण वह कांग्रेस से निकाल भी दिए गए थे।

जापानी आक्रमण और कांग्रेस—7 दिसम्बर, 1941 को जापान भी युद्ध में कूद पड़ा और उसने बात की बात में अमेरिका का पर्ल हार्बर ले लिया। धीरे धीरे उसने दक्षिण पूर्वी एशिया के सब देशों को भी हड़प लिया। 30 दिसम्बर 1941 को कार्यसमिति ने सरकार की तरफ बहुत तपाक से हाथ बढ़ाया। इस सम्बन्ध में अपनी सचाई दिखाने के लिए कार्यसमिति ने गांधीजी को नेतृत्व से मुक्ति दी। जापानी आक्रमण का फायदा उठाने के बजाय कांग्रेस सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार थी। और इस सम्बन्ध में उसकी इच्छा ऐसी ईमानदारीपूर्ण थी कि अपने नेता को भी अलग करने से नहीं झिझकी।

सुभाष फरार—इस साल की घटनाओं को समाप्त करने के पहले यह बता दिया जाए कि इस साल के प्रारम्भ में 1941 की 26 जनवरी के दिन सुभाष अपने कलकत्ते के मकान से गायब पाए गए। वह कुछ दिन पहले अनशन के कारण मेडिकल

ग्राउड पर रिहा हुए थे। सुभाष की इस फरारी के ऐतिहासिक परिणाम क्या हुए, इसका हम बाद का वर्णन करेंगे।

क्रिप्स प्रस्ताव—पूर्व मे युद्ध की हालत बहुत जल्दी खराब होती जा रही थी। यद्यपि सरकार अब तक कांग्रेस के सब अनुरोधों को ठुकराती रही थी, पर मार्च को रगून जापानियो के कब्जे म चले जाने से एसी परिस्थिति आ गई कि ब्रिटिश सरकार युद्धोद्योग म कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए तैयार हो गई। तदनुसार 11 मार्च को क्रिप्स मिशन की घोषणा हुई और सर स्टैफोर्ड क्रिप्स 23 मार्च 1942 को कुछ प्रस्ताव लेकर नयी दिल्ली आये। क्रिप्स प्रस्तावो का आशय यह था कि भारतवर्ष एक यूनियन या सयुक्त राष्ट्र बने। प्रस्ताव मे कहा गया था कि युद्ध खत्म होने के बाद ही भारतवर्ष को जिम्मेदार सरकार दी जाएगी। योजना मे लीग को भी, जिसने अब तक पाकिस्तान को अपना उद्देश्य घोषित कर दिया था, खुश करने की कोशिश की गई थी। इसमें प्रांतो तथा रियासतो को यह स्वतन्त्रता दी गई थी कि वे सयुक्तराष्ट्र म जब चाहें तभी शामिल हो।

गांधीजी ने इस प्रस्ताव को 'दिवालिया बैक पर बाद की तारीख लगा हुआ चैक' घोषित किया। क्रिप्स प्रस्ताव के समय वयक्तिक सत्याग्रह बन्द था। आश्चर्य की बात है कि इसी युग मे कांग्रेस समाजवादी दल ने शायद कांग्रेस का अनुकरण कर अपने को युद्ध के प्रति निष्पक्ष घोषित किया था। क्रिप्स मिशन के बारे मे मजेदार बात यह है कि पहले क्रिप्स कुछ देना चाहते थे पर एकाएक उनको विलायत से कोई हिदायत आ गई—शायद जीत की सभावना पक्की हो गई थी— और वह फिर कड़े पड़ गए।

कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा स्पष्टीकरण—क्रिप्स प्रस्ताव की असफलता के कारण अब कांग्रेस के सामने इसके सिवा कोई चारा नही रहा कि लडाई छेडे। वार्ता को भग करते हुए *मौलाना अबुलकलाम आजाद ने यह साफ कह दिया कि एसा मालूम होता है* कि सरकार भारतवर्ष की ठीक ठीक रक्षा नही करना चाहती, उसे बस इसी बात की फिक्र है कि साम्राज्य कायम रहे। इन्ही दिनो सुभाष जापानी अधिकृत देशो से रेडियो पर भाषण दे रहे थे। सब यही चाहते थे कि धोखेबाज अंग्रेजो को कोई मदद न की जाय।

फौज मे भर्ती जारी—अवश्य इसके साथ ही यह भी बता दिया जाए कि हजारो की तादाद मे लोग सरकारी फौज तथा अन्य युद्ध सम्बन्धी नौकरियो मे भर्ती हो रहे थ। एक देश जिसमे आधे पेट भर खाने को नही पाते हैं, उसम जसे एक तरफ साम्राज्यवादी युद्ध का विरोध अनिवार्य था उसी तरह इस प्रकार भर्ती भी अनिवार्य थी। भर्तियो की सफलता के कारण यह समझना कि जनता मे ब्रिटिश विरोध कम था, गलत होगा।

अगले सग्राम पर गांधीजी—*गांधीजी न 1942 की* 19 जुलाई को अगले सग्राम का खाका खीचते हुए कहा, 'इस बार मैं मागकर जेल नही जाने वाला हूं। इस सग्राम म मागकर जेल जाना नहीं है। मागकर जेल जाना बहुत ही नरम चीज होगी। अवश्य अब तक हमने माग कर जेल जाने का व्यापार कर रखा था। अब की बार मेरा इरादा यह है कि चीज को जहा तक हो सके शीघ्र तथा छोटा किया जाए।" इसी परिस्थिति म बम्बई मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ।

अगस्त प्रस्ताव—इसी अधिवेशन म बहुत सोच विचार के बाद अ० भा० कां० कमेटी म वह प्रस्ताव पास हुआ, जो कांग्रेस के इतिहास म 'अगस्त प्रस्ताव' नाम से मशहूर हुआ। प्रस्ताव का सार यो है

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने रूसी और चीनी मोर्चों पर स्थिति के बिगडने को निराशा के साथ देखा है, और वह रूसियों और चीनियों की उस वीरता की प्रशसा करती है जो उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा म प्रदर्शित की है। जो लोग स्वतत्रता के लिए प्रयत्न कर रह है और आक्रमण के शिकार व्यक्तियों से सहानुभूति रखत हैं, उन सबका खतरा नित्य प्रति बढता जा रहा है। यह उस नीति की जाच पडताल अनिवार्य कर देता है, जिसके मित्र राष्ट्र पोषक हैं। इस नीति का आधार स्वतत्रता उतना नही है, जितना कि साम्राज्यवादी परम्पराओ और प्रणालियो का कायम रखना है। साम्राज्य को अधिकार मे रखना शासक सत्ता की शक्ति बढान के बजाय एक भार और शाप बन गया है। आधुनिक साम्राज्यवाद की सर्वोत्कृष्ट क्रीडाभूमि भारत इस प्रश्न की कसौटी बन गया है क्योंकि भारत की स्वतत्रता स ही ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रो की परीक्षा होगी। इस प्रकार इस दश मे ब्रिटिश शासन के अन्त हान पर युद्ध का भविष्य और स्वतत्रता तथा लोकतत्र की सफलता निभर है। आज क खतरे को देखत हुए भारत को स्वतत्र कर दन और ब्रिटिश आधिपत्य को समाप्त कर दने की आवश्यकता है। भविष्य के लिए किसी प्रकार की प्रतिज्ञाओ से परिस्थिति म सुधार नहीं हो सकता। इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी भारत स ब्रिटिश शासन का हटा लेन की माग को दोहराती है। भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हो जान पर एक अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जाएगी, और स्वतत्र भारत मित्र राष्ट्रो का मित्र बन जाएगा। अस्थायी सरकार दश के मुख्य दलो और वर्गों के सहयोग से बनाई जा सकती है। अन्य किसी बात को आधार मानकर ससार की समस्याए सुलझाई नही जा सकती। कमेटी का मत है कि ससार की भावी शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्थित उन्नति क लिए एक विश्व सघ बन। इस प्रकार का विश्व सघ स्थापित हो जाने पर समस्त देशो मे नि शस्त्रीकरण हो सकेगा तथा सेनाओ की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया तथा भ्रमपूर्ण आलोचनाओ से स्पष्ट हो गया है कि भारतीय स्वतत्रता की माग का भी विरोध किया जा रहा है, यद्यपि यह वर्तमान खतरे का सामना करने के लिए और अपनी रक्षा तथा इस आवश्यक घडी मे चीन और रूस की सहायता कर सकन के लिए की गई है। चीन और रूस स्वतन्त्रता की बडी मूल्यवान निधि है और उनकी रक्षा होनी चाहिए इसलिए कमेटी इस बात के लिए बडी उत्सुक है कि उसम किसी प्रकार की बाधा न पडे, और मित्र राष्ट्रो की आत्मरक्षा करने की शक्ति म कोई विघ्न न हो। कार्यसमिति ने ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रो से ईमानदारी के साथ जो अपील की थी, उसका अभी तक कोई उत्तर नही मिला है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी फिर ब्रिटेन तथा मित्र राष्ट्रो से अपील करना चाहती है। भारत की स्वतत्रता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से कमेटी अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक से अधिक विस्तृत पमाने पर एक विशाल सग्राम आरम्भ करने की स्वीकृति देती है जिससे दश गत 22 वर्षों के शान्तिपूर्ण सग्राम मे सचित समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके। भारतीयो को याद रखना चाहिए कि अहिंसा इस आन्दोलन का आधार है। अन्त मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी यह बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि सग्राम के द्वारा वह कांग्रेस के लिए ही सत्ता प्राप्त करना नही चाहती, सत्ता पर समस्त भारतीयो का अधिकार होगा।"

करो या मरो —यह प्रस्ताव 'भारत छोडो प्रस्ताव के नाम से है
कांग्रेस के अधिवेशन मे जवाहरलाल न इसे पेश किया और सरदार पटेल
किया। प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करते हुए नेहरू ने साफ साफ कह दि
धमकी नही है। यह तो एक निमन्त्रण है। इसके द्वारा हमने बताया

है। हमने सहयोग का हाथ आगे बढ़ाया है। पर इसके पीछे एक साफ इशारा भी है—कि यदि कुछ बातें नहीं हुई तो परिणाम क्या हो सकता है। यह स्वतंत्र भारत के सहयोग का दावतनामा है। किसी दूसरी शर्त पर हमारा सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता। उसके अलावा हमारा प्रस्ताव केवल संघर्ष तथा लड़ाई का वादा करता है।"

महात्माजी ने इस अवसर पर भाषण देते हुए 'करो या मरो' का नारा दिया, जो चिनगारी साबित हुआ, जिससे सारे देश में तुमुल अग्निकाण्ड मच गया। सहयोग के लिए हाथ बहुत ज्यादा बढ़ाया गया था, तीन साल तक प्रतीक्षा के बाद संग्राम का नारा आया।

10

1942—1945 उथल-पुथल के वर्ष

अगस्त क्रांति का आरम्भ—सुप्रसिद्ध अगस्त प्रस्ताव 8 अगस्त को रात म पास हुआ, और उसी रात अर्थात अग्रेजी हिसाब के अनुसार कुछ घण्टो बाद 9 अगस्त को बम्बई म एकत्रित सब नेता गिरफ्तार कर लिए गए। नेताओ की गिरफ्तारी से देश मे विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई। यह कोई नही सोचता था कि इतनी जल्दी सरकार हमला बोल देगी। सरकार ने अपने ख्याल से ठीक ही किया था, पर काग्रेस के नेता इसके लिए पूर्णत तयार नही थे। अगले दिन अर्थात 9 तारीख को गाधीजी ने प्रत्येक प्रात से कुछ खास कायकर्ताओ को बुलाया था जिसमे वे अपना कायक्रम बताने वाले थे, पर उसका मौका ही नही आया।

स्पष्ट कायक्रम नहीं—नतीजा यह हुआ कि देश को ठीक-ठीक कायक्रम नही दिया जा सका। फिर भी कुछ बातें हवा मे थी, और देश ने उन पर अमल किया। सबसे पहली बात तो कानून भग कर जुलूस निकालना वगैरह देश के सामने था ही। इसके अतिरिक्त कुछ जिम्मेदार काग्रेसियो ने तोड फोड के सम्बन्ध मे जो हिदायतें दी थी, वे भी इस सम्बन्ध में आगे के आन्दोलन को एक दिशा देने मे समथ हुई। यह ऐतिहासिक बात है, और इससे इन्कार करने का कोई कारण नही है कि जिम्मेदार काग्रेसियो ने तोड फोड के सम्बन्ध म हिदायतें दी थी।

आंध्र की गश्ती चिटठी—ऐसी हिदायतो म आन्ध्र की गश्ती चिटठी है, जिसमे काग्रेसजनो स तार काटने की सिफारिश की गई थी। सरकार ने इस गश्ती चिटठी को पकड लिया था, और इसका हवाला देकर यह प्रमाणित करने की चेष्टा की गई कि अव्यवस्थित भीड नही बल्कि काग्रेस के नेता रेल और तार मे हस्तक्षेप और तोड फोड के लिए जिम्मेदार थे। इस विषय पर सरकारी प्रस्ताव यो था—"कौंसिल सहित गवनर जनरल को इस बात का पता रहा है कि कुछ दिनो से काग्रेसजनो ने बराबर गरकानूनी और कुछ क्षेत्रो मे हिंसात्मक कारवाइया की हैं। ऐसी कारवाइयो मे रेल, तार, याता यात तथा समाचार के साधनो मे तोड फोड, हडतालो की तैयारी, सरकारी फौजो का वरगलाना तथा युद्ध की तैयारियो मे विशेषकर भरती मे बाधा देना था।"

तोड फोड के लिए कौन जिम्मेदार भारत सचिव एमरी ने नेताओ की गिरफ्तारी का समथन करते हुए एक भाषण दिया, जिसमे बताया गया कि काग्रेस तोड फोड मूलक काय करना तय कर चुकी है।

बहुत से लोगो को तो इसी भाषण से ज्ञात हुआ कि काग्रेस का ऐसा कायक्रम है। इस प्रकार से जस भी जो कायक्रम लोगो को मालूम हो सका उस कायक्रम को चलाने के लिए चन्दा भी किया गया। कही कही पर तो प्लास वगैरह भी बाटे गए। यह कहना सत्य का अपलाप होगा कि ऐसा केवल वामपथियो ने ही किया या उन लोगो ने किया जो राजनैतिक काय मे बल प्रयोग मे विश्वास रखते हैं। वामपथियो मे अधिकाश तो

पहले ही धर लिए गए थे, यदि वे बाहर होते तो शायद तोड फोड ही करते, पर उनमे से बहुत थोडे बाहर रह गए थे। इस आदोलन मे हिंसात्मक या कथित हिंसात्मक जो भी काय हुए, उनमे बचे खुचे वामपक्षी तथा दक्षिणपक्षी सभी काग्रसियो ने हिस्सा लिया।

जनता की क्रातिकारी बुद्धि—पर इस आदोलन मे सबसे अधिक भाग नेताओ का नही जनता का ही रहा। जनता ने सरकार की चुनौती को स्वीकार कर लिया। जनता ने इस आदोलन के दौरान नई-नई तकनीको की सृष्टि की। कही गोली का सामना करने के लिए लोग सीना तान देते या लेट जाते, तो कही पीछे हटकर फिर रात को हमला करते। बडे बडे क्रातिकारी जिन कामो को करने मे यह नही समझ पाते कि कैसे किया जाए उन सब विशेषज्ञतापूर्ण कामो को, जैसे तार काटना, इन्जन तोडना, थाने पर कब्जा करना आदि को जनता ने अपनी बुद्धि से किया।

जनता पर नेहरू—जवाहरलाल ने बाद को एक व्याख्यान मे कहा था 'यद्यपि 9 अगस्त को ही सब नेता गिरफ्तार हो गए थे, फिर भी जनता ने सरकार की चुनौती स्वीकार कर ली और साहसपूर्ण तरीके से तुर्की-बतुर्की जवाब दिया। नेताओ की गिरफ्तारी पर क्रोध तथा आवेश मे जनता ने बहादुरी के साथ बमबाजी, मशीनगन के गोले तथा लाठिया बर्दाश्त की। उनके हृदयो पर स्वतत्रता के लिए जो अमिट ज्वाला धधक रही थी, वह साहसी तथा वीरतापूर्ण कृत्यो मे पल्लवित हुई।'

काग्रेस मे कम्युनिस्ट—जब फासिस्टवाद के उद्भव के कारण रूस ने संयुक्त मोर्च का नारा दिया था, तब से कम्युनिस्ट पार्टी के लोग काग्रेस मे काम करने लगे और यह मानना पडेगा कि उन्होने अच्छा काम किया। सन् 34 मे कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी करार दी गई थी। कम्युनिस्ट पार्टी ने काग्रेस समाजवादी दल को अपना मच बनाया और कई जगह तो काग्रेस समाजवादी दल के सभी लोग भीतर भीतर कम्युनिस्ट थे। ऐसा नही कि यह उन्होने छिप कर ही किया, काग्रेस समाजवादी नेता इसको जानते थे, पर उन्होने इस बात पर कोई विशेष ध्यान नही दिया। काग्रेस समाजवादी दल ने इस प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी को खुला मच देकर उसे जीवित रखा। अस्तु, कम्युनिस्ट पार्टी काग्रेस के अन्दर काम करती रही। 1941 मे जून मे जब जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया उस समय भी वे अपने साम्राज्यवाद विरोधी रुख पर डटे रहे। इन दिनो जेलो मे वे बराबर कहते रहे कि नही, हम कभी अपना रुख नही बदलेंगे। पर बाद को जैसा कि हम इगित कर चुके हैं जब कम्युनिस्ट इटरनेशनल से हिदायत आ गई, तभी उन्होने 'जन युद्ध' का नारा दिया और बयान देकर जेलो से छूटे। जब 1942 मे काग्रेस ने लडाई छेड दी, तो उन्होने इसका विरोध किया।

पूर्व के दोलनों से भिन्न—इसमे सदेह नही कि अधिकाश स्थानो की जनता ने हत्या तोड फोड आदि मे भाग नही लिया, पर उन लोगो ने तो किसी काम मे भी भाग नही लिया। इसमे सदेह नही कि यह आन्दोलन गुण रूप मे 1921 1930, 1931 तथा 1940 के आदोलनो से भिन्न था। इस आदोलन के दौरान जो वीर तथा शहीद सामने आए उनके कृत्यो मे ही इस बात का अनुमोदन हो सकता है।

बलिया की घटनाए—जिस बलिया की बहुत ख्याति हुई उसकी घटनाए या हैं—9 अगस्त की शाम को गाधीजी तथा अन्य नेताओ की गिरफ्तारी की खबर बलिया पहुची। 10 अगस्त को शहर मे पूर्ण हडताल रही। 11 अगस्त को छात्रो ने एक जुलूस निकालकर कोतवाली की ओर जाना चाहा पर सिटी मजिस्ट्रेट ने उन्हे चेतावनी दी कि वे ऐसा न करें। छात्रो ने इस चेतावनी को मानने से इकार किया, इस पर उन पर लाठी चार्ज हुआ और कई लोगो को मरम चोटें आइ। उसी रात को छात्रों के घरो की

तलाशिया हुई और 40 छात्र गिरफ्तार कर लिए गए।

12 तथा 13 अगस्त को सब तार कट गए, स्टेशन जला दिए गए और सरकारी सम्पत्ति नष्ट कर दी गई। 14 अगस्त को बलिया जिला सारी दुनिया से कट चुका था। 15 अगस्त को सरकारी इमारतो पर हमले हुए, नगर पोस्ट आफिस लूट लिया गया और जिला काग्रेस कमेटी का दफ्तर, जिस पर 10 अगस्त से पुलिस का कब्जा था, जनता के अधिकार मे आ गया। 16 अगस्त को पुलिस ने शहर मे मनमाने तौर पर गोलिया चलाइ, जिसमे नौ शहीद हुए और अनेक घायल हुए। 10 अगस्त को रसडा तहसील के थाने तथा खजाने पर जनता ने हमला कर दिया। पुलिस ने यहा फिर गोलिया चलाइ, जिनमे वहा कई खेत रहे। 18 अगस्त को जनता ने बासडीह तहसील के खजाने को लूट लिया तथा वहा के थाने मे आग लगा दी। जनता ने बैरिया थाने पर भी हमला कर दिया। इस पर पुलिस साढे चार घटे तक गोलिया चलाती रही। 19 मरे तथा कई घायल हुए।

सारे जिले पर जनता का कब्जा हो गया था।

19 अगस्त को यह प्रस्ताव पास किया गया कि बलिया शहर पर हमला किया जाय, जिला मजिस्ट्रेट को पकड लिया जाय, तथा जेल पर हमला करके काग्रस नेताओ को छुडा लिया जाय। पर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने चीतू पाडे को, जो उन दिनो जेल मे बद थे, जेल से मुक्त कर उनके हाथो मे आत्मसमर्पण कर दिया।

ढिढोरा पीट कर अब बलिया की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई और तीन दिन तक बलिया मे जनता का राज्य रहा।

22 अगस्त को सेना आ गई और जनता के साथ कई बार डट कर लडाई करने के बाद बलिया पर फिर अधिकार कर लिया गया। 1 सितम्बर को बलिया के इचार्ज अफसर ने लाट साहब को एक तार भेजा जिसमे कहा गया कि बलिया पर फिर से अधिकार कर लिया गया है।

मेदिनीपुर की क्राति—मेदिनीपुर मे भी जनता ने पहले तो जुलूस निकाला, फिर जब उसके साथ छेड छाड हुई, तो दूसरे ढग अख्तियार किए। सूताहाट्टा थाना के इचार्ज ने जुलूस वालो से तितर बितर होने को कहा पर जनता ने उसे गिरफ्तार कर लिया और पुलिसवालो को गोली न चलाने का मौका देकर उनके हथियार छीन लिए। क्रातिकारी जनता इलाके भर मे फैल गई। कुछ सरकारी इमारतो मे आग लगा दी गई। रास्ते बन्द कर दिए गए, तार काट दिए गए। विद्युत वाहिनी ने सारा इतजाम अपने हाथो मे लिया।

क्राति का दमन—यदि हम और विवरण दें, तो वह स्वय ही एक ग्रन्थ हो जाएगा। जो घटनाए बलिया तथा मेदिनीपुर मे हुई, वे कुछ परिवर्तित रूप मे सतारा आदि स्थानों मे भी हुई। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले, बिहार बगाल का मेदिनीपुर, असम, बम्बई शहर अहमदाबाद तथा सतारा इस आदोलन मे सबसे आगे रहे।

छ महीने तक के आकडे—उस समय के सरकारी आकडे यो है

पुलिस तथा फौज की गोलियो से मरे	940 व्यक्ति
पुलिस तथा फौज की गोलियो से घायल	1630 ,,
गोलिया चली	538 बार
गिरफ्तारी	60000 व्यक्ति
नजरबन्द	18000 ,,

फौज बुलाई गई	60 बार
हवाई जहाज से बम गिराए गए	6 स्थानों में
दिसम्बर तक बरबाद स्टेशन	318
गिराई हुई गाडी	59
तोड-फोड द्वारा रेल की क्षति	रुपए 18,00,000
मोटर लारियो की क्षति	रुपए 9,00,000
स्टेशनो की इमारतो की क्षति	रुपए 6,50,000
डाकखाने जिन पर हमले हुए	954
टेलीफोन तथा तार काटे	12000 जगह

इसके अतिरिक्त और भी हानि हुई जिसको सही तौर पर दिखाया नही गया है। इन आकडो मे बहुत कमी है। किसी भी आकडे से परिस्थिति की भयकरता का अनुमान नही हो सकता। 1942 की क्राति 1857 से कहीं अधिक व्यापक और भयकर थी। यह जन क्राति थी।

नजरबन्दी से गाधीजी का पत्र—गाधीजी नजरबन्द हो गए, पर वह आगाखा प्रासाद के अखबारो के जरिए से देश की घटनाओ पर निगरानी रखते रहे। 14 अगस्त से ही उन्होने लार्ड लिनलिथगो से पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। 14 अगस्त के पत्र मे उन्होने लिखा कि भारत सरकार को कम से कम तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए थी जब तक मैं जन आदोलन शुरू न करता। मैंने सार्वजनिक रूप से यह कहा था कि निर्दिष्ट कार्यपद्धति ग्रहण करने के लिए मैं आपको पत्र लिखूगा। गाधीजी ने इस पत्र मे यह साफ बताया कि उस पत्र व्यवहार से जो नये मामले निकलते, उन पर फिर पत्र व्यवहार हो सकता था। उन्होने यह भी लिखा कि काग्रेस ने यह आदोलन अत्यन्त मित्रतापूर्ण उद्देश्यो से शुरू किया है। 23 सितम्बर को गाधीजी ने फिर लिखा कि "इसके विरुद्ध जो कुछ कहा गया है, मेरा यही कहना है कि काग्रेस की नीति सम्पूर्ण रूप से अहिंसात्मक है। ऐसा मालूम होता है कि सब नेताओ की गिरफ्तारी के कारण जनता को इतना रोष आया कि उसका आत्म सयम नष्ट हो गया।' सरकार ने इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया।

सरकार के सदेह पर गांधीजी क्षुब्ध—गाधीजी ने 1942 के अतिम दिन वायसराय को एक पत्र लिखा कि सरकार के मन मे मेरी अहिंसा पर जो सदेह है, उससे मैं बहुत क्षुब्ध हू। उन्होने यह भी लिखा कि ऐसे मौके पर सत्याग्रही के लिए एक ही तरीका है, वह उपवास के द्वारा शरीर को कष्ट दे।

अनशन की घोषणा—हम इस पत्र व्यवहार के ब्यौरे मे जाने की आवश्यकता नही है। इस पत्र व्यवहार के फलस्वरूप एक तरफ गाधीजी अपनी बात कहते रहे, दूसरी तरफ सरकार अपनी बात कहती रही, और अन्त मे गाधीजी ने यह लिख भेजा कि 9 फरवरी से मैं अहिंसा के सम्बन्ध मे अपने विश्वास को प्रगट करने के लिए अनशन करूगा। इसके उत्तर मे इस बार वायसराय ने नही बल्कि भारत सरकार के एडीशनल सेक्रेटरी टाटेनहम ने लिखा कि भारत सरकार को बहुत अफसोस है कि आप 21 दिन का अनशन करने जा रहे हैं और भारत सरकार ने यह तय किया है कि आप अनशन के दौरान मे बाहर जा सकते हैं।

बगाल मे दुर्भिक्ष—1942 के 16 अक्टूबर को बगाल के दक्षिणी जिलो, विशेष कर मेदिनीपुर और चौबीस परगने मे, इतना प्रबल तूफान आया कि हजारो लोग बेघर

बार हो गए, और खेत नष्ट हो गए। पर इसके कारण मेदिनीपुर वाला पर, 1942 के आदोलन म भाग लेने के कारण जो भयकर अत्याचार हो रहे थे, उनमे कोई कमी नहीं आई। इसका परिणाम यह हुआ कि वहा दुर्भिक्ष शुरू हो गया। मेदिनीपुर म तो बहुत कुछ प्राकृतिक कारणो से दुर्भिक्ष का सूत्रपात हुआ था पर 1943 म सारा बगाल एक भयकर दुर्भिक्ष के पजो मे फस गया, यह प्राकृतिक कारणो म नही बल्कि सरकार की अव्यवस्था तथा अत्याचार क कारणो से था।

1942 का प्रतिशोध—यह कहा गया है कि बगाल म 1943 का जो दुर्भिक्ष पडा, वह 1942 मे बगाल मे जो क्रातिकारी काय हुए थे उनके प्रतिशोध मे डाला गया था। सब बातो को तोलने पर प्रतीत होता है कि इसम सत्य का एक बडा अश है। कम स कम इतना तो बिलकुल सत्य है कि सरकार की सैनिक तथा असैनिक नीति के कारण यह दुर्भिक्ष पडा, यदि सरकार चाहती तो इसे रोक सकती थी।

सरकार द्वारा जबर्दस्ती 'डिनायल' की नीति – लडाई म शत्रु पक्ष क हाथ युद्ध के साधन न लग जाए इस कारण युद्धो मे शत्रु सना के सामन पीछे हटते हुए जितनी भी चीजें लडाई के लिए उपयोगी हो सकती है, उनको नष्ट कर दिया जाता है। इसी को 'स्कार्च्ड अथ पालिसी' कहते हैं, याने शत्रु सेना जब आगे बढती है तो उसे केवल जली मिट्टी मिलती है। 15 फरवरी, 1942 को ही सिंगापुर जापानियो के हाथो म चला गया था। और जापानी सेना तेजी के साथ भारत की ओर आगे बढती चली आ रही थी। जापानी भारत के करीब आ गए थे। ब्रिटिश सरकार की सिट्टी पिट्टी गुम हो रही थी। इसी क परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार की तरफ से जली मिट्टी नीति का नारा दिया गया, याने भारतीयो से कहा गया कि तुम लोग इस बात के लिए तयार हो जाओ कि जापानियो की आहट पाते ही अपनी सारी सम्पत्ति को अग्नि देवता के हवाले कर दो। इस सम्बन्ध मे रूस तथा अन्य देशो की बात और थी। वे समझते थे कि यह लडाई उनकी है, इस कारण वे बिना किसी हिचकिचाहट के जली मिट्टी की नीति का अनुसरण करते थे। परन्तु भारतीय इस युद्ध को अपना नही समझते थे, इसी कारण उनमे जली मिट्टी नीति का स्वागत नही हुआ। स्वय महात्मा जी ने इस नीति को हिंसामूलक कह कर इसका विरोध किया। परतु ब्रिटिश सरकार जापानियो से इतनी डरी हुई थी कि उसने इसका नाम बदलकर 'डिनायल' की नीति कर दिया, और चूकि जनता तयार नही थी, इसलिए उसने जबरदस्ती असम तथा बगाल के लोगो की नावें, साइकिलें आदि यातायात के सब साधन छीन लिए। उन्हे डर था कि जापानी इनका उपयोग करेंगे।

नावों के अभाव से दुर्भिक्ष—लोगो के पास नावें बिलकुल नहीं रह गई थी। नौकरशाही को यह समझना चाहिए था कि बगाल मे मछली पकडना खेती के ही बराबर महत्त्वपूर्ण रोजगार है, और यह काम तभी ढग से हो सकता है जब नावें हो। इसलिए नावें छीनकर जनता से उनकी रोटी का सबसे बडा साधन छीन लिया गया था। पहले रोज सैकडो मन मछली पकडी जाती थी, और उससे सैकडो आदमी पलते थे। इसलिए इस काय के बन्द हो जाने से भी दुर्भिक्ष को बल मिला।

दुर्भिक्ष के अन्य कारण—युद्ध के कारण लाखो आदमी बर्मा तथा अराकान से आकर बगाल मे इकट्ठे हो गए थे। इस प्रकार उनका बोझ भी बगाल ही पर था। बगाल के औद्योगिक केन्द्रो म बाहर से आए लाखो आदमी बस गए थे। बर्मा से चावल आना बन्द हो गया था। बगाल मे यत्र-तत्र बीसियो हवाई अड्डे बन जाने के कारण खेती की जमीन मे कमी हो गई थी। फिर जापान से मोर्चा लेने के लिए इस समय बडी-बडी

सेनाएं बंगाल में डटी हुई थी। यह भी दुर्भिक्ष का एक कारण था। शत्रु आए तो उन्हें धान वगैरह न मिले, इसलिए बहुत से जिलों से धान बिलकुल हटा दिया गया था।

लड़ाई के कारण दुर्भिक्ष—इस प्रकार यह दुर्भिक्ष सम्पूर्ण रूप से लड़ाई के कारण था। मजे की बात यह है कि ऐसे समय में भी सरकार ने इस डर से कि वहां आगे दुर्भिक्ष की हालत और खराब न हो और फिर फौज को भूखों मरने की नौबत न आए, एक तरफ तो जल्दी जल्दी जो कुछ भी धान आदि मिला उसे खरीद लिया, और दूसरी तरफ बाहर धान भेजा जाना भी जारी रखा।

नजीमुद्दीन मन्त्रिमण्डल में दुर्भिक्ष और सट्टा—इस समय कोई भी मन्त्रिमण्डल होता, वह शायद ही कुछ कर पाता, क्योंकि सरकार स्वयं मन्त्रिमण्डल के सिर पर से सब काम कर रही थी। फिर भी यदि जनप्रिय मन्त्रिमण्डल होता, तो परिस्थिति को सम्हालता—जैसे कुछ समय बाद अन्तरकालीन सरकार ने 1946-47 के कराव सिर पर आए दुर्भिक्ष को सम्हाल लिया। 29 मार्च 1943 को बंगाल में फजलुल हक का मन्त्रिमण्डल सरकार ने निकाल बाहर किया, और इसके स्थान पर सर नजीमुद्दीन का मन्त्रिमण्डल बना। नजीमुद्दीन बिलकुल सरकारी पिट्ठू था। इसके अतिरिक्त इस मन्त्रिमण्डल ने इस्फहानी आदि कुछ पूंजीपतियों को बंगाल सरकार की तरफ से खाद्य द्रव्यों का एकाधिकार भी दे दिया, और इन लोगों ने दुर्भिक्ष से अपने को मालामाल कर लिया।

लीगी मन्त्रिमण्डल ने मुसलमान मारे—यद्यपि इस दुर्भिक्ष से इस्फहानी मुसलमान पूंजीपति ही मालामाल हुए क्योंकि मन्त्रिमण्डल ने उन्हीं को आगे बढ़ाया, पर स्वयं दुर्भिक्ष में जो लोग मरे, उनमें मुसलमानों की ही ज्यादा संख्या थी। इस प्रकार लीगी मन्त्रिमण्डल की गलत नीति के कारण हिन्दुओं की तुलना में मुसलमान अधिक मरे। इससे यह बात साफ हो जाती है कि लीगी मन्त्रिमण्डल आम मुसलमानों के लिए चाहे जितना भी दम भरे, पर वह वास्तव में लीगी पूंजीवादियों तथा नवाबों की ही संस्था थी।

सुभाष जर्मनी में—हम पहले ही बता चुके हैं कि सुभाष अपने घर से गायब हो गए थे। कुछ लोगों ने कहा कि वे शायद संन्यासी हो गए हैं। बड़े बड़े लेख लिखे गए, और अन्त में यह पता लगा कि वे काबुल के रास्ते भारतवर्ष से निकल गए थे और काबुल में कुछ दिन रहने के बाद जर्मनी पहुंच गए थे।

रासबिहारी के कार्य—इस लड़ाई के पहले से ही सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस के नेतृत्व में जापान में भारत की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन करने वाली एक संस्था काम कर रही थी। इस संस्था का उद्देश्य द० पू० एशिया के भारतीयों को स्वतन्त्रता के लिए संगठित करना तथा विदेशों में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए लोकमत उत्पन्न करना था। जिस समय 1937 में चीन पर जापान ने हमला किया था, उस समय रासबिहारी ने इस हमले का यह कहकर समर्थन किया था कि चीन पर दूसरे विदेशियों का कब्जा है इससे अच्छा है कि जापान का कब्जा हो जाए। जहां तक भारत का सम्बन्ध था वे अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक उसकी स्वतन्त्रता चाहते थे और वे यह समझते थे कि मौका पड़ने पर जापान भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में मदद देगा। इसी धारणा से वे बराबर काम करते रहे।

आजाद हिन्द फौज—पहले महायुद्ध में यह चेष्टा हुई थी कि लड़ाई में जो भारतीय सिपाही कैद होकर जर्मनी पहुंच जाते थे, या जर्मनों के हाथ में पड़ जाते थे उनको लेकर प्रथम आजाद हिन्द फौज का संगठन हुआ था। इस बार जब 1942 में जापानी मलाया पहुंच गए और बहुत से भारतीय सिपाही उनके हाथों कैद हो गए, तब फिर इनको संगठित करने का प्रयत्न हुआ। मेजर फूजीवारा ने वादा किया कि भारतीयों को

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सहायता दी जाएगी। इस पर 9 और 10 मार्च को सिंगापुर में मलाया के देशभक्त भारतीयों की एक सभा हुई। रासबिहारी ने इसको और सगठित रूप देने के लिए टोकियो मे मार्च के अन्तिम सप्ताह मे जापानी अधिकृत देशों के भारतीयों की एक सभा बुलाई। यह सभा उन्ही के सभापतित्व मे हुई, और इंडिया इंडिपेंडेंस लीग जोरो के साथ काम करने लगी। स्मरण रहे कि यद्यपि जापानी भूमि पर तथा जापान की देख रेख में यह सभा हुई, फिर भी यह स्पष्ट कर दिया गया कि लीग का उद्देश्य भारत में स्वतन्त्रता स्थापित करना है, और इस स्वतन्त्रता मे किसी भी विदेशी शासन का प्रभाव न रह सकेगा। सभा में यह भी घोषित कर दिया गया कि "भारतीय नायकों के अधीन केवल आजाद हिंद सेना के द्वारा भारत पर सैनिक अभियान होगा। इंडिपेंडेंस लीग एक कार्य समिति बनाएगी, जिसे यह अधिकार होगा कि वह आवश्यकता के अनुसार जापान से स्थल सैनिक, जल सैनिक, तथा वायु सैनिक सहायता ले।" यह भी तय हुआ कि भारत का भावी विधान बनाने का एकमात्र अधिकार भारत के प्रतिनिधियों को ही होगा।

आजाद हिन्द फौज और जापान सरकार मे तनातनी—पहली आजाद हिन्द फौज का सगठन कैप्टन मोहन सिंह के नेतृत्व में हुआ। कप्टन मोहनसिंह ने इस फौज का सगठन इंडिपेंडेंस लीग की तरफ से किया। प्रारम्भ से ही लीग ने अपनी नीति स्वतन्त्र रखी। जापानी नेता चाहते थे कि यह सस्था तथा इसके द्वारा सगठित फौज उनके हाथ की कठपुतली होकर रहे, पर ऐसा नही हो सका। नतीजा यह हुआ कि 1942 के दिसम्बर मे जापान तथा आजाद हिन्द फौज के कर्नल एस० एन० गिल जापानियो के हाथ गिरफ्तार हो गए। इंडिपेंडेंस लीग ने इसका प्रतिवाद करने के लिए यह तय किया कि जब जापानियो को मनमानी ही करना है, तो वे जो चाहे सो करें, लीग की आवश्यकता नही है। कार्यसमिति ने इस्तीफा दे दिया। रासबिहारी को अभी तक जापान पर विश्वास था, इसलिए लीग की कार्यसमिति ने कहा कि वे खुद टोकियो जाए, और वहा से जापान सरकार द्वारा सब बातो का स्पष्टीकरण करवाए।

सुभाष के आने से नया जोश—जापानियो ने भी इस बात की चेष्टा की कि लीगी नेताओं को नीचा दिखाने के लिए एक दूसरा सगठन कायम किया जाए। इस प्रकार लीग और जापानी सरकार में गड़बड़ी चलती रही। अब सुभाष के महान् व्यक्तित्व के कारण जापान अधिकृत देश के भारतीयो मे एक नई उमग पैदा हुई। 4 जुलाई को पूर्वी एशिया के भारतीयो का एक सम्मेलन हुआ जिसमे सुभाष बाबू सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुन गए, और आजाद हिन्द फौज नए जोश के साथ बनने लगी। डाक्टर लक्ष्मीनाथम के नेतृत्व में स्त्रियों की भी आजाद हिन्द फौज बन गई और इसका नाम झासी की रानी ब्रिगेड रखा गया।

सुभाष का मन्त्रिमण्डल—21 अक्टूबर, 1943 को आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की गई। सुभाष बाबू इसके सर्वाधिनायक, फौजी तथा वैदेशिक मन्त्री और प्रधान सेनापति हुए। श्री एस० ए० अय्यर प्रचार मन्त्री हुए, कैप्टेन डा० लक्ष्मी महिला विभाग की मन्त्री हुई। लेफ्टिनेंट कर्नल श्री ए० सी० चटर्जी अर्थ मन्त्री हुए, और लेफ्टिनेंट कर्नल अजीज अहमद, लेफ्टिनेंट कर्नल एन० एल० भगत कर्नल जे० के० भोसले लेफ्टिनेंट कर्नल गुलजारा सिंह, लेफ्टिनेंट कर्नल एम० जेड० कियानी, लेफ्टिनेंट कर्नल ए० पी० लोकनाथम, लेफ्टिनेंट कर्नल ईमान कादिर, लेफ्टिनेंट कर्नल शाहनवाज सेना के प्रतिनिधि हुए, श्री आनन्दमोहन सहाय विशिष्ट सेक्रेटरी हुए। श्री रासबिहारी बसु प्रधान सलाहकार हुए। इनके अतिरिक्त सर्वश्री करीम गनी, देवनाथ दास, डी० एस० खा, ए०

जेलिया, जे० थिवी, और सरदार ईशर सिंह सलाहकार और श्री ए० एन० सरकार कानूनी सलाहकार हुए। जब रगून जापानियों के कब्जे में आ गया तो 1944 की 7 जनवरी को आजाद हिन्द फौज का प्रधान दफ्तर उठकर रगून चला गया। इस फौज में करीब 50 हजार सैनिक थे।

आजाद हिन्द फौज पीछे हटी —मार्च के मध्य भाग में यह फौज बर्मा की सीमा को पार कर भारत भूमि पर पहुंची, और पहली बार भारत की स्वतन्त्र भूमि पर स्वतंत्र तिरंगा फहराया। कई कारणों से इनका आगे बढ़ना सम्भव नहीं हुआ, और इन्हें पीछे हटना पड़ा। इसके बाद जापान की हार शुरू हो गई, और बराबर आजाद हिन्द फौज को भी पीछे हटना पड़ा। 23 अप्रैल, 1945 को जापानियों को रगून छोड़कर जाना पड़ा।

नेहरू तथ्यों से प्रभावित —जिन दिनों आजाद हिंद फौज के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं था, उन दिनों यह समझा जाता था कि आजाद हिंद फौज जापानियों के हाथ की कठपुतली है। इसी धारणा के वशवर्ती होकर जवाहरलाल ने 1944 में छूटने के बाद भी यह कहा था कि यदि आजाद हिंद फौज भारत में आए तो मैं उसके विरुद्ध लड़ने वाला प्रथम व्यक्ति होऊंगा। पर जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उन्होंने जो समझा था वह गलत है, तो उन्होंने आजाद हिंद फौज को बढ़ाया, 'जय हिंद' को भारत के घर घर में पहुंचा दिया और फौज के कैदियों को छुड़ाने में कोई कसर नहीं रखी। यह उनके खुले दिमाग का द्योतक तो है ही, साथ ही आजाद हिंद फौज के लिए बहुत प्रशंसा की बात है।

कम्युनिस्ट तथ्य से दूर—भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने आजाद हिन्द फौज को 'पांचवां दस्ता' यानी जासूस घोषित किया और अपने अखबारों में सुभाष को टोजो का कुत्ता बनाकर कार्टून निकाला।

नई क्रांतिधारा—आजाद हिंद फौज केवल भारतीय स्वतन्त्रता की एक गौरवमय चेष्टा ही नहीं थी बल्कि इसने बाद की भारतीय राजनीति पर कुछ बहुत गहरे प्रभाव भी डाले। इसने भारत में एक नवीन क्रांतिकारी धारा को जन्म दिया। जनता में आजाद हिंद फौज की प्रशंसा के कारण ब्रिटिश भारतीय फौज में जिन भयंकर विस्फोटों का सूत्रपात हुआ, और बराबर होता रहा, उनके कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत से पैर उखड़ने में बहुत सहायता मिली। सरकार को फौज में विश्वास नहीं रहा, इसी कारण उसे बाद को अपने आप भारत छोड़ने की एक तारीख तय करनी पड़ी। आजाद हिंद फौज ने साम्प्रदायिक एकता का महान आदर्श उपस्थित किया।

एटलांटिक अधिकार पत्र—1943 के अंत तक यह लगने लगा था कि महायुद्ध में विजय अंग्रेजों की ही रहेगी। इटली में सेनापतियों ने विद्रोह कर दिया और इटली ने आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मनी का भी दम फूलने लगा था परन्तु जापान मजबूत था। इसी साल एटलांटिक महासागर में एक स्थान पर मिलकर चर्चिल और रूजवेल्ट ने एक अधिकार पत्र बनाया जिसमें परतन्त्र जातियों के लिए स्वतन्त्रता का वादा किया गया था। इस अधिकार पत्र के कारण परतन्त्र जातियों, विशेषकर भारतीयों में खुशी की लहर दौड़ गई, पर चर्चिल ने जल्द ही ब्रिटिश संसद में स्पष्ट कर दिया कि भारतीयों पर यह अधिकार पत्र लागू नहीं होता, यह केवल उन जातियों पर लागू होता है जो युद्ध के दौरान पराधीन हो चुकी हैं। कहना न होगा कि इससे भारतीयों को विशेष ठेस नहीं लगी क्योंकि वे जानते थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इरादे काले हैं। बाद को पता लगा कि एटलांटिक अधिकार पत्र नामक कोई योजना थी ही नहीं। यह महज एक गप्प थी

या कह लीजिए लडाई जीतने का कौशल था।

भारतीयो की तरफ से बराबर यह माग हो रही थी कि काग्रेसी नेता छोडे जाए, परन्तु भारत सचिव एमरी की तरफ से यह घोषणा होती रही कि जब तक अगस्त प्रस्ताव वापिस नही लिया जाता, तब तक उनके छूटने का कोई प्रश्न नही उठता। नतीजा यह हुआ कि दोनो पक्ष जहा के तहा रहे, और ज़िच बनी रही।

कस्तूरबा का देहान्त—22 फरवरी 1944 को महात्मा गाधीकी सुयोग्य सहधर्मिणी राष्ट्रमाता कस्तूरबा गाधी का देहान्त हो गया। सरकार उन्हे छोडने के लिए तयार थी, परन्तु उन्होने पति के पास रहकर मरना ही श्रेयस्कर समझा।

गाधी ववेल पत्र व्यवहार—इसके बाद गाधीजी और लाड वेवेल म कुछ पत्र व्यवहार हुए, जिनमे राजनैतिक विषयो पर भी आलोचना हुई। इस आलोचना के फल स्वरूप ऐसा लगा कि वातावरण कुछ सुधर रहा है। दोनो तरफ से कुछ ऐसी बातचीत हुई जिसमे यह मालूम पडा कि समझौते की गुजाइश है। गाधीजी ने 9 अप्रैल, 1944 के पत्र म लाड ववल का लिखा "आपके पत्र का मन्तव्य यह है कि काग्रेस शासन मे सहयोग करे, और यदि ऐसा न कर सके तो भविष्य के लिए योजना बनाने मे हाथ बटावे। मेरी राय म इसके लिए यह जरूरी है कि दोनो दलो मे समता और पारस्परिक विश्वास हो। पर यहा तो समता का अभाव है और पग पग पर हम यह दखते है कि सरकार काग्रेस पर अविश्वास रखती है। इस सबके साथ इस तथ्य को भी जोड लीजिए कि काग्रेसजनो म यह विश्वास नही है कि ब्रिटिश सरकार भारत की भलाई को सोचने मे समय है। विश्वास का यह अभाव भारत ने बहुत सालो तक ब्रिटेन का जो रवैया देखा उसी के कारण उत्पन्न हुआ है। क्या इस बात के लिए समय नही आ गया कि आप भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियो के जरिए भारत की जनता से बातचीत करें, न कि उनसे यो ही सहयोग मागें। यही बातें अगस्त प्रस्ताव मे अन्तर्निहित थी।

'उस प्रस्ताव मे जो माग की गई थी, उसकी पृष्ठभूमि मे हिंसा नही बल्कि आत्म-बलिदान था। जिस किसी ने भी, चाहे वह काग्रेसजन हो या और कोई, आचरण मे इस नियम के विरुद्ध काय किया, उसे अपने कार्य के लिए काग्रेस के नाम के इस्तेमाल का अधिकार नही था। पर मैं देख रहा हू कि जैसे लाड लिनलियगो अगस्त प्रस्ताव स चौंकते थे वस ही आप इस प्रस्ताव से शकित हैं। मैंने इस सम्बन्ध मे अपना मत परिवर्तन नही किया है। आप जो यह कहते हैं कि अगस्त प्रस्ताव का असर यह हुआ कि युद्धोद्योग मे बाधा पहुची, सो मैं इसे समझने में असमर्थ हू। काग्रेसजनो का एकाएक गिरफ्तार करने के फलस्वरूप जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, उसकी जिम्मेदारी सपूण रूप स सरकार पर है। आपका इस सम्बन्ध मे यह कहना है कि आपको भारत की रक्षा कर सकने मे हमारी सामर्थ्य पर अविश्वास था और इसलिए आपने हमारी इस कथित सामरिक दुर्गति से फायदा उठाना चाहा।'

गाधीजी मुक्त तोड-फोड की निन्दा—इस प्रकार गाधीजी और लाड वेवल म पत्र-व्यवहार हो रहा था कि इसी बीच गाधीजी बीमार हो गए, जिसके फलस्वरूप सरकार ने उन्हे 6 मई को रिहा कर दिया। इसके पहले श्रीमती सरोजिनी नायडू भी छूट चुकी थी। गाधीजी ने छूटने के बाद कडे शब्दो मे 1942 की क्रान्ति की निन्दा की। इसके पहले श्रीमती सरोजिनी नायडू ने यह बयान दिया था कि "काग्रेस ने कोई आदोलन शुरू नही किया, आदोलन इस कारण शुरू हुआ कि लोग तश मे आ गए थे। काग्रेस किसी ऐसे काय का समथन नही करती, जो अहिंसा के विरुद्ध पडता है।"

गाधीजी ने भी छिपकर काम करने की निन्दा की। उन्होने पचगनी से 28

जुलाई को एक बयान देते हुए कहा कि "अक्सर लोग मुझसे पूछा करते हैं कि मैं छिपकर काम करने का समर्थन करता हू या नहीं। इनमे तोड फोड तथा गैर कानूनी साहित्य का प्रकाशन भी है। मुझे बताया गया है कि कुछ कार्यकर्ताओ के फरार हुए बगर कुछ किया ही नही जा सकता था। कुछ लोगो ने यह भी सुझाव दिया है कि इस प्रकार सम्पत्ति नाश को, जिसमे यातायात तथा समाचारो के आदान प्रदान के साधनों का विनाश भी है, अहिंसा मे समझा जाना चाहिए बशर्ते इसमे किसी का खून न हो। मुझे यह भी बताया गया है कि दूसरी जातियो ने बल्कि इससे कही ज्यादा ऐसा किया है। मेरा कहना है कि जहा तक मुझे मालूम है, किसी जाति ने सचेत रूप से स्वाधीनता प्राप्ति के साधन के रूप मे सत्य और अहिंसा का उपयोग नही किया है। उस मानदण्ड से नापकर मैं बिना किसी हिचकिचाहट के यह कहता हू कि अहिंसा मे ऐसे कार्यों का स्थान नही होना चाहिए। तोड फोड और सम्पत्ति का विनाश हिंसा ही है तथापि यह दिखलाया जा सकता है कि इन कार्यों से जनता मे कुछ जोश फैला —पर मुझे इसमे सन्देह नही कि ऐसे कार्यों से कुल मिलकर आदोलन को नुकसान ही हुआ।"

नौकरशाही पर अच्छा असर—स्मरण रहे कि अभी तक महायुद्ध चल रहा था, इसलिए गाधीजी के इन बयानो का नतीजा नौकरशाही पर अच्छा ही हुआ होगा, और उसे बहुत कुछ आश्वासन ही मिला होगा। फिर भी सरकार ने कोई विशेष रुख नही लिया। सरकार आदोलन को दबा चुकी थी, अब उसे काहे की परवाह थी?

नजरबन्दी से ही लीग से समझौते की चेष्टा—गाधीजी बैठे रहने वाले व्यक्ति नही थे। ज्यो ही वे कुछ अच्छे हुए, उन्होने चेष्टा की कि मुस्लिम लीग से समझौता हो जाए। 1943 की मई मे ही, जब वे नजरबन्द थे, उन्होंने अखबारो मे पढा था कि जिन्ना ने कहा है कि यदि गाधीजी हिन्दू मुस्लिम समस्या को सुलझाना चाहते है तो उन्हे चाहिए कि वह मुझसे पत्र-व्यवहार करें। इस पर अमल करते हुए गाधीजी ने 1943 को 4 मई को जिन्ना को एक पत्र लिखा, जिसमे उनसे यह कहा कि क्यो न मैं और आप मिलकर इस समस्या का ऐसा समाधान निकालें जो सबको मान्य हो। गाधीजी ने यह पत्र नजरबन्दी की हालत मे लिखा था, इसलिए यह पत्र केवल सरकार के ही जरिए जा सकता था। भारत सरकार ने इस पत्र को जिन्ना के पास भेजने से इन्कार कर एक विज्ञप्ति प्रकाशित की। जिन्ना को भी यह समाचार दे दिया गया कि ऐसा एक पत्र रोक लिया गया है। छोटी सी बात होते हुए भी इस सम्बन्ध में यह बता दिया जाए कि जिन्ना ने इससे पहले यह भी डीग मारी थी कि उनके नाम भेजा हुआ पत्र रुक नही सकता। पर जब इस प्रकार एक अत्यन्त निर्दोष पत्र रुक गया, तो वह चुप्पी साध गए। जिन्ना की नीति मे सरकार से युद्ध करना था ही नही।

वार्ता का परिणाम नहीं—अब जब गाधीजी छूटे, तो उन्होंने उसी वार्ता के सूत्र को फिर से उठा लिया। गाधीजी कई रोज जा-जाकर जिन्ना के घर पर मिलते रहे और घण्टो उनसे बातचीत की पर नतीजा कुछ नही निकला, क्योकि जिन्ना अपनी पाकिस्तान की माग पर डटे रहे। बल्कि पहले से कडवापन और अधिक बढा। स्थिति यह है कि गाधीजी ने जिस प्रकार यह बातचीत चलाई, उससे जिन्ना की साख पहले से अधिक बढी।

कस्तूरबा ट्रस्ट—गाधीजी के छटते ही कुछ लोगो ने यह विचार व्यक्त किया कि उनकी पत्नी कस्तूरबा गाधी के नाम पर एक ट्रस्ट कायम किया जाए जिसका उद्देश्य स्त्रियो की उन्नति करना हो। बात की बात मे सवा करोड रुपये जमा हो गए। महात्मा जी ने एक ट्रस्टी मण्डल बनाकर सारा धन उसके हाथ मे दे दिया। इस कोष की तरफ से देश मे चारो तरफ स्त्रियो की उन्नति के लिए सस्थाए खोली गइ। इस ट्रस्ट की देख रेख मे स्त्रियो मे काम की जो योजना बनी, उसका आधार ग्रामो का स्वावलम्बन है।

11

महायुद्ध का अन्त और स्वराज्य

जमनी की हार—1945 के शुरु मे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति साफ होने लगी। रूस ने हिटलरी सेना को खदेडते खदेडते जमनी तक पहुचा दिया। इधर जब चर्चिल ने देखा कि रूस आगे बढता चला जा रहा है, और वह जहा जहा बढ रहा है वहा वहा समाजवाद की स्थापना हो रही है, तो जल्दी से दूसरा मोर्चा कायम कर दिया। इस प्रकार उस झगडे का सूत्रपात हुआ जो अब तक चालू है—ससार दो भागो म बट गया।

शिमला कान्फ्रेंस—जून 1945 म कार्यसमिति के बाकी सदस्य भी छोड दिए गए। इसके बाद ही काग्रेस और सरकार मे बातचीत चली, जो शिमला कान्फ्रेंस के नाम से मशहूर है। इस कान्फ्रेंस मे जो बातचीत होने वाली थी उसके सम्बन्ध मे लाड वैवेल ने कहा कि किसी एक सम्प्रदाय के विरोध से अधिवशन भग नही किया जाएगा। परन्तु जिन्ना साहब ने जिद पकडी कि मुस्लिम लीग ही मुसलमानो की एकमात्र प्रतिनिधि सस्था है और उन्होने काग्रेस द्वारा किसी मुसलमान के भेजे जाने का विरोध किया। जिन्ना इस जिद पर डटे रहे और शिमला कान्फ्रेंस खत्म हो गई। लाड वैवेल ने गाधी जी के तरीके पर इस कान्फ्रेंस की असफलता का बोझ अपने ऊपर ले लिया। परिणाम यह हुआ कि जिच ज्यो की त्यो कायम रही। जिन्ना के कारण सरकार को फिर एक बार यह कहने का मौका मिला कि आपसी झगडो के कारण वह अधिकार नही दे सकी, वरना वह तो तैयार थी।

चुनाव की तैयारी महायुद्ध के बाद इगलैंड म श्रमिक सरकार बनने पर बडे लाट ने एलान किया कि धारासभाओ के जिस चुनाव को लडाई के कारण स्थगित रखा गया था, वह अब कराया जाएगा। जिस लहजे मे चुनाव का एलान किया गया उससे यह भी कुछ झलक आई कि चुनाव के नतीजे को देखकर सरकार अपने कर्तव्य का निर्णय करेगी। काग्रेस तथा लीग ने चुनाव की जोरदार तैयारी शुरू की।

आजाद हिंद फौज की प्रतिक्रिया—इन्ही दिनो आजाद हिन्द फौज की घटनाए विश्वस्त रूप से मालूम होने लगी और फौज के प्रमुख नेता शाहनवाज, सहगल तथा ढिल्लन पर लाल किले म मुकदमा चलने को हुआ। पडित जवाहरलाल नेहरू ने इन बहादुरो के विषय को उठा लिया, और इतने जोर का आन्दोलन किया कि एकबार भारतभर म जयहिन्द और आजाद हिन्द फौज के अलावा और कुछ सुनाई नही देता था। प्रत्येक चुनाव सभा मे आजाद हिंद फौज का उल्लेख किया जाने लगा, और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी गई, मानो आजाद हिंद फौज की रिहाई और चुनाव दोनो एक ही बात है। देश म बहुत ज्यादा जोश फैला, यहा तक कि यह जोश सेना मे भी व्याप्त हो गया। सेना के जोश के कारण सरकार को आजाद हिंद फौज के इन तीन अफसरो को रिहा कर देना पडा, और शेष के साथ नरमी का व्यवहार करना पडा। सरकार ने खुली अदालत

मे आजाद हिंद फौजियो पर मुकदमा इस कारण चलाया कि लोगो को नसीहत दी जाए पर जन आदोलन के कारण सरकार को लेने के देने पड गए। जब फौज पर भरोसा नही रहा, तब एक तरह से यही से साम्राज्यवाद का बिस्तर गोल होने लगा।

श्रमिक सरकार का आगमन —1945 की जुलाई मे ब्रिटेन मे चुनाव हुआ। श्रमिक दल नही चाहता था कि फौरन चुनाव हो, पर प्रतिक्रिया की प्रतिमूर्ति मदमाते चर्चिल ने सोचा कि जमनी पर हमारे ही नेतत्व मे विजय प्राप्त हुई है, इस कारण चुनाव मे भी विजय हमारी ही रहेगी। उन्होने जल्दी से चुनाव करवा दिया, और चुनाव के लिए समाजवाद बनाम पूजीवाद को विषय बनाकर समाजवाद के विरुद्ध प्रचार किया। वह स्वय तो चुने गए पर उनकी पार्टी हार गई। मिस्टर ऐटली के नेतत्व मे श्रमिक सरकार की स्थापना हुई।

जापान भी पराजित—जब तक सोवियत रूस ने जापान के विरुद्ध युद्ध घोषणा नही की थी, पर 1945 के 8 अगस्त को उसने भी जापान के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया और लाल सेना को मचूरिया के अन्दर भेज दिया। यद्यपि इसमे और अणु बम के इस्तेमाल म कोई सम्ब ध नही था, पर इसी दिन अमेरिका ने हिरोशिमा पर अणु बम डाल दिया और यह नगर बिलकुल ध्वस्त हो गया। इस घटना के तुरन्त बाद नागासाकी पर भी अणु बम डाल दिया गया। यह शहर भी बात की बात मे नष्ट हो गया। इस पर जापान ने हथियार डाल दिए और 2 सितम्बर को हार मानते हुए सधिपत्र पर दस्तखत कर दिए। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध अतिम रूप से समाप्त हो गया।

आम चुनाव—1945 के अन्त मे सब धारासभाओ का चुनाव हुआ। इन चुनावों म हिन्दू सीटो से कांग्रेस तथा मुस्लिम सीटो से मुस्लिम लीग विजयी हुइ। दोनो के मुकाबले मे खडी शेष सभी सस्थाए बिलकुल हार गइ। कम्युनिस्ट पार्टी ने भी कुछ उम्मीदवार खडे किए थे, पर एकाव के अलावा वे भी सभी क्षेत्रो म हार गए।

1942 पर काग्रस – इन दिनो आजाद हिंद फौज के वीरो की बहुत जबदस्त आवभगत तथा प्रशमा हो रही थी। साथ ही 1942 के शहीदो तथा वीरो की भी प्रशसा हो रही थी। दिसम्बर म कायसमिति ने अहिंसा पर फिर से प्रस्ताव पास किया और यह बतला दिया कि 1942 के तथा आजाद हिंद फौज के वीरा की प्रशसा करत हुए भी अहिंसा की नीति पहले की तरह कायम है। कलकत्ते मे कायसमिति ने अपनी बठक म यह प्रस्ताव पास किया "1942 के अगस्त म मुख्य काग्रेसियो की गिरफ्तारी के बाद नेतत्वहीन जनता ने बागडोर अपने हाथो मे ले ली और स्वत स्फूत रूप से काम किया। यदि जनता को बहुत सी वीरता तथा कुर्बानी के कार्यों के लिए श्रेय प्राप्त है तो दूसरी तरफ उसने ऐसे भी काय किए जो अहिंसा के अन्दर नही आ सकते' इसलिए काय समिति के लिए यह जरूरी हो गया है कि सबके पथ प्रदशन के लिए वह यह साफ कर दे कि अहिंसा के अन्दर सावजनिक सम्पत्ति को जलाना तारो का काटना, गाडियो को पटरी से उतारना तथा आतक फलाना नही आते। कायसमिति का यह निश्चित मत है कि 1920 मे काग्रेस म अहिंसा सम्ब धी जो प्रस्ताव पास हुआ था, और जिसकी समय समय पर व्याख्या होती रही और जिसके अनुसार इन वर्षों म काय हुआ था उसी के कारण भारत का सिर ऊचा हुआ है।'

आजाद हिंद फौज पर काग्रेस —कायसमिति ने आजाद हिन्द फौज के सम्बध मे यह प्रस्ताव पास किया 'काग्रेस इस पर गव करते हुए भी कि विदेशा म अभूतपूर्व परिस्थितियो मे श्री सुभाषचन्द्र बोस ने जिस आजाद हिंद फौज का सगठन किया, उसके लोगों ने कुर्बानी, अनुशासन, देशभक्ति, बहादुरी तथा अपनी सद्भावनाओ का प्रदशन किया,

तथा यह मानते हुए भी कि काग्रेस के लिए यह उचित तथा ठीक है, जिन फौजियो पर मुकदमा चल रहा है, उनकी पैरवी की जाए, और इस फौज के ऐसे लोगो को जिनको मदद की जरूरत है मदद की जाए। काग्रेसियो को यह नही भूलना चाहिए कि इन लोगा की परवी करने तथा इन लागो को मदद देने का यह अथ नही है कि काग्रेस किसी तरह स्वराज्य प्राप्त करने की अपनी अहिंसा सम्ब धी नीति से विचलित हो गई है। इस प्रकार काग्रस न 1942 तथा आजाद हिंद फौज के सम्ब ध मे अपने वक्तव्य को स्पष्ट कर दिया। यह वही पुरानी नीति थी।

'एक दल, एक नेता' का नारा—जब से काग्रेस के नेता छूटे, कुछ विशिष्ट नेता जसे सयुक्त प्रान्त म कृष्णदत्त पालीवाल तथा बम्बई म पाटिल, शकरराव देव, यहा तक कि सरदार पटेल ने भी 'एक दल, एक नेता' का नारा दिया। 1942 तथा उसके बाद कम्युनिस्टो ने जो रवैया अख्तियार किया था, उससे काग्रेस के अन्दर इस नारे का उठना स्वाभाविक हो गया था। पर साथ ही साथ कुछ लोगो ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे केवल कम्युनिस्ट पार्टी ही नही बल्कि किसी भी पार्टी को काग्रेस मे रहने देना नही चाहते। इस पर बहुत जोर की बहस छिडी। दोनो तरफ से तक दिए गए। इसी समय कम्युनिस्ट काग्रस से निकाल तो दिए ही गए, पर साथ ही काग्रेस के विधान को इस तरीके से ढालने की बातचीत चल पडी जिससे उसमे कोई अ य दल न रह सके। बाद को काग्रेस ने एक विधान समिति बनाकर यह टेढा प्रश्न उसके सुपुर्द कर दिया।

नवम्बर प्रदर्शन के कारण अहिंसा सम्बन्धी प्रस्ताव—काग्रेस ने अहिंसा का जो पाठ लिया उसकी विशेषकर इसलिए जरूरत पडी थी कि नवम्बर मे कलकत्ते मे छात्रों का एक प्रदशन हुआ था जिसने बिलकुल क्रातिकारी ढग अख्तियार करके एक बार फिर 1942 के दश्य दिखला दिए थे। इस अवसर पर छात्रो पर गोली चली, पर वे पीछे नहीं हटे। फलत छात्रो ने बहुत सी सैनिक लारियो को जला दिया, और तोड फोड के अय काय किए। इस प्रदशन से सरकार बिलकुल किंकर्तव्यविमूढ हो गई।

फरवरी का नौसैनिक विद्रोह—फरवरी 1946 मे बम्बई मे भारतीय नौसेना के नौजवानो न एकाएक विद्रोह कर दिया। तलवार नामक एक जहाज मे नौसेना को शिक्षा दी जाती थी। इसी जहाज से विद्रोह फैला। 11 फरवरी को गोरे अफसर कमाडर किंग न नौविद्या शिक्षार्थियो को 'कुत्ते का बच्चा' तथा 'कुली का बच्चा' कहकर गालिया दी। ऐसी गालिया तो हमेशा से दी जाती थी, और भारतीय नौसनिक उस वर्दा श्त भी कर लते थे, पर आजाद हिंद फौज का प्रभाव बढने के कारण लोगो मे ज्यादा जोश था। इस कारण इस पर लोग बहुत नाराज हुए। जिन लोगो को गाली दी गई थी उन्होने अर्जी वगैरह भेजी, पर इसका कोई असर नही हुआ। 18 फरवरी को उन्हे बहुत रद्दी नाश्ता मिला, इस पर 'तलवार' के ग्यारह सौ नौसनिको न हडताल कर दी। इस पर कमाडर किंग ने उन्हे धमकाया, पर इसका कोई असर नही हुआ। दोपहर के बाद नौसनिको ने एक सभा की, जिसमे उन्होने अपनी माग तय की। इन मागो म उनकी निजी मागें—अच्छा खाना, कमाडर किंग के विरुद्ध कार्यवाही गोरे और भारतीय सनिको की बराबर तनख्वाह आदि मागें तो रखी ही, साथ ही सब राजनतिक कैदियो तथा आजाद हिंद फौजियो की रिहाई की माग की और कहा कि सारी भारतीय फौज हिन्दशिया से वापिस बुलाई जाए। इस प्रकार उन्होने अपनी राजनतिक बुद्धि का परिचय दिया। 19 फरवरी तक सारी भारतीय नौसेना मे हडताल फल गई। 20 हजार नौ सनिक तथा 20 बडे जहाज और 100 के करीब छोटे जहाजो के लोग हडताल मे शामिल हो गए। कई जगह जहाजो पर तिरगा, लीगी हरा तथा लाल झण्डे लगा दिए गए और

जहाजो पर विद्रोहियो का अधिकार हो गया।

कराची से सिंगापुर तक भारतीय नौसैनिकों म यह हडताल फैल गई। एक दिन बाद हडतालियो ने बम्बई की सडको पर क्रातिकारी नारो के साथ जुलूस निकाला। एडमिरल राने विद्रोहियो से बातचीत करने आए और मागें भी लिख ले गए पर उन्होने जाते ही 309 नौसैनिको को गिरफ्तार कर लिया। 21 तथा 22 फरवरी का स्थिति भयानक हो गई और सशस्त्र युद्ध की नौबत आ गई। कराची म भी सशस्त्र युद्ध हुआ। गोरो ने नौसनिको को गोलियो से भून दिया। फिर भी हडताल चलती रही। अन्त म सरदार पटेल ने स्वय आकर आत्मसमपण कर देने को कहा, तभी विद्रोह शान्त हुआ। सरदार ने आश्वासन दिया कि विद्रोहिया को कोई सजा नही दी जाएगी, पर बाद को बहुत मे विद्रोही नौसैनिको को बहुत कडी सजाए दी गइ और हजारो निकाल भी दिए गए।

फरवरी प्रदशन—फरवरी मे आजाद हिन्द फौज के रशीद की सजा क विरुद्ध बम्बई, कलकत्ता तथा अन्य स्थानो मे प्रदशन हुआ। लारिया आदि जलाई गइ जिसमे फिर एक बार कलकत्ता म नवम्बर प्रदर्शन की बात ताजी हो गई। इस अवसर पर लीग तथा काग्रेस की जो एकता देखने मे आई, वह अभूतपूर्व थी। लगा कि देश की परिस्थिति बहुत ही क्रातिकारी है, लीग जैसी प्रतिक्रियावादी सस्था को भी क्राति का साथ देना पडा। सरकार के लिए सबसे खतरनाक बात यह थी कि भारतीय सेना म भी अशान्ति फल गई थी और सेना राजनैतिक नारे देने लगी थी। 18 फरवरी को नौसैनिक विद्रोह शुरू हुआ और 19 को ऐटली की तरफ से घोषणा हुई कि कैबिनेट मिशन भारत जा रहा है।

ससदीय मिशन तथा कैबिनेट मिशन—शिमला कान्फेंस मे तो सरकार नही झुकी थी, पर अब परिस्थिति को सम्हालने के उद्देश्य से एक के बाद एक ससदीय मिशन तथा कैबिनेट मिशन भारतवष म आए और समझौते की वार्ता चलाइ। ससदीय मिशन जमीन की जाच कर गई, और फिर कैबिनेट मिशन प्रस्ताव लेकर मई 1946 म आया। मिशन के नेता के रूप मे सर स्टैफोर्ड क्रिप्स आए थे। भारतीय नेताओ के सामने इस मिशन ने जो प्रस्ताव रखा, उसका सार यह था—(1) भारतवष की एक यूनियन बने, जिसमे ब्रिटिश भारत तथा रियासतें हो, यूनियन के हाथो मे वदेशिक विभाग, आत्मरक्षा, परिवहन और समाचार आदान प्रदान के काय हो और इसे यह अख्तियार हो कि इन कार्यों के लिए धन को उगाह सके। (2) यूनियन की एक धारासभा तथा कायकारी विभाग हो, जो ब्रिटिश भारत तथा रियासतो के प्रतिनिधियो के द्वारा बने हो। किसी विषय म यदि कोई बडा साम्प्रदायिक मामला धारासभा म उठे तो उसके फसले क लिए उपस्थित प्रतिनिधियो की बहुसख्या तथा दो बडे सम्प्रदायो के मत की जरूरत होगी। (3) यूनियन के विषयो के अतिरिक्त सारे विषय प्रान्ता के हाथो मे रहेंगे। (4) यूनियन को जो शक्तिया दी जाए उनके अतिरिक्त बाकी सभी शक्तिया रियासतों के हाथो म होगी। (5) प्रान्त इस बात के लिए स्वतत्र होग कि व धारासभाओ तथा कायकारी विभाग के साथ ग्रप बनाए, और प्रत्येक ग्रुप को इस बात का अख्तियार होगा कि वह एक साथ जिन प्रान्तीय विषयो को चाहे ले सके। (6) यूनियन तथा ग्रुपो के विधान मे ऐसी व्यवस्था हो कि वे धारासभा की बहुसख्या से शुरू मे हर दस साल बाद विधान के पुनर्विवेचन की माग रखें।

इन्ही सूत्रो के इद गिर्द नेताओ तथा मिशन म बातचीत हुई।

कायसमिति का प्रस्ताव – 24 मई को काग्रेस कायसमिति ने एक बहुत लम्बा प्रस्ताव पारित किया, जिसम कहा गया कि मिशन ने जो चित्र पश किया है और जिस पर उन्होने अन्तर्कालीन सरकार म भाग लेने के लिए कहा है, वह स्पष्ट नही है। काग्रेस

कायसमिति का उद्देश्य तथा लक्ष्य यह है कि भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त की जाय, सीमित अधिकार होने पर भी केन्द्र म शक्तिशाली सरकार स्थापित की जाय, प्रान्तो को पूण स्वायत्त शासन दिया जाय, केन्द्र तथा देश के अन्य भागो मे लोकतान्त्रिक व्यवस्था हो। प्रत्येक व्यक्ति को सुविधा देने तथा उसका विकास करने के लिए उसके मौलिक अधिकार स्वीकार किए जाए तथा प्रत्येक सम्प्रदाय को वहत्तर ढाचे के अन्दर रहकर अपनी इच्छानुसार जीवन चलाने के लिए बराबर सुविधा दी जाय। कार्यसमिति को दुख है कि लक्ष्य के साथ ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावो का सामजस्य नही है।

कायसमिति ने कहा कि यदि सरकार सचमुच अन्तर्कालीन सरकार को स्वराज्य की पहली सीढी बनाना चाहती, तो उसके प्रस्ताव कुछ और ही होते। कायसमिति ने यह भी कहा कि सविधान सम्मेलन ही भारतवष के विधान का निर्माण कर सकता है और सरकार यदि ईमानदार है, तो उसे अन्तर्कालीन सरकार को पूरी जिम्मेदारी देनी चाहिए।

बातचीत भग - इसके बाद बडे लाट लाड वबेल काग्रेस तथा लीग से इस विषय पर बात करने लगे कि वे अन्तर्कालीन सरकार मे सहयोग करें और इस बीच सविधान सम्मेलन का चनाव आदि हो जो अतिम विधान का निर्माण कर। बडे लाट ने चेष्टा की कि काग्रेस और लीग अन्तर्कालीन सरकार मे बराबर सीटें लें, पर इस पर काग्रेस राजी नहीं हो सकी और बातचीत भग हो गई। फिर भी अनौपचारिक बातचीत चलती रही और नए नए प्रस्ताव किए जाते रहे।

26 जून को काग्रेस कायसमिति ने अपने प्रस्ताव मे कहा कि प्रस्तावित अन्तकालीन सरकार के हाथो म इतनी ताकत होनी चाहिए कि वह स्वतत्र राष्ट्र के तुल्य हो और फिर वही स्वतत्र राष्ट्र मे परिणत हो सके। कहा गया कि किसी प्रकार की अन्तर्कालीन या अन्य किसी प्रकार की सरकार बनाने मे काग्रेस अपना राष्ट्रीय अधिकार नही छोड सकती। कायसमिति ने कहा कि "अन्तर्कालीन सरकार के हाथ मे शक्ति तथा अधिकार होना चाहिए। यह जिम्मेदार हो, भले ही कानूनन सम्पूर्ण रूप से स्वतत्र न हो, पर व्यवहारिक रूप स अवश्य स्वतत्र हो। ऐसी सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी रहेगी न कि और किसी के प्रति। काग्रेस कोई अन्यायपूण समता नहीं मान सकती और न यह स्वीकार कर सकती है कि किसी साम्प्रदायिक दल को यह अधिकार दे दिया जाए कि वह जिस बात को चाहे रद्द कर दे। इस कारण समिति 16 जून के बयान के अनुसार अन्तर्कालीन सरकार मे भाग नही ले सकती।"

समिति न सविधान सम्मेलन म भाग लेकर भारत का सविधान बनाना स्वीकार किया, पर साथ ही यह कहा कि इस बीच प्रतिनिधि स्थानीय जिम्मेदार सरकार की स्थापना होनी चाहिए क्योकि गैरजिम्मेदार सरकार के रहते हुए न तो दुर्भिक्ष पर ही रोक थाम हो सकती - और न सविधान सम्मेलन का काय हो सकता है। कायसमिति ने सविधान सम्मेलन के सम्बन्ध मे भी यह कहा कि भारतीयो के वोटो से सविधान सम्मेलन का निर्माण होना चाहिए सविधान सम्मेलन के अधिकार पर कोई रोक टोक न हो, और सविधान सम्मेलन विभक्त भारत नहीं बल्कि सयुक्त भारत के सविधान की रचना करे।

सविधान सम्मेलन का निर्वाचन—सविधान सम्मेलन का निर्वाचन जल्दी ही जुलाई म हो गया। यह सविधान सम्मेलन सावजनिक वोट पर नही, बल्कि धारासभाओ के सदस्यो के द्वारा चुना गया। चुनाव मे पहले की तरह एक सीमाप्रान्त के अलावा सब जगहो से मुसलमान सीटो से लीगी और हिन्दू सीटो से काग्रेसी आए। लीग ने चुनाव मे

तो हिस्सा लिया, पर बाद को कह दिया कि संविधान सम्मेलन में हिस्सा नहीं लेगी। यहां से संविधान सम्मेलन के सफल होने में संदेह हो गया।

अन्तर्कालीन सरकार में कांग्रेस—कुछ बातचीत के फलस्वरूप कांग्रेस ने अन्तर्कालीन सरकार में भाग लेना मंजूर कर लिया और 2 सितम्बर, 1946 को जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने अन्तर्कालीन सरकार में भाग लेना शुरू किया। इस दिन सारे देश में कांग्रेसियों ने खुशी मनाई और चूंकि लीगी इसमें शरीक नहीं हुए, सारे भारत के मुसलमानों ने हड़ताल मनाई तथा काले झंडे दिखाए। अन्तर्कालीन सरकार में कांग्रेस की शिरकत के कारण ही इस बार भारत बंगाल दुर्भिक्ष के बदतर संस्करण से बच गया।

बाद को लीग भी शामिल—लीग ने बाद में जब देखा कि अन्तर्कालीन सरकार में जाने से अड़ंगा लगाने की नीति अधिक सफल हो सकेगी, तब लीग के नेताओं ने बड़े लाट के साथ बातचीत के दिखावे के बाद अन्तर्कालीन सरकार में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

मेरठ कांग्रेस 1946

1940 की रामगढ़ कांग्रेस के बाद नवम्बर 1946 में मेरठ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। आचार्य कृपलानी इस अधिवेशन के सभापति बनाए गए। रामगढ़ से लेकर 1946 तक अबुलकलाम आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष रहे, इसके बाद नेहरू सामने आए और मौलाना आजाद की जगह कांग्रेस के प्रवक्ता हुए। ऐसा क्यों और कैसे हुआ इस सम्बन्ध में स्पष्ट कुछ पता नहीं, पर उन दिनों एक अफवाह यह थी कि जिन्ना को बार बार कांग्रेस के सभापति या अध्यक्ष से मिलना पड़ता था और जिन्ना ने मौलाना को स्वीकार नहीं किया था। इस पर चुनाव हुआ और नियमानुसार प्रांतीय कांग्रेसों से सिफारिशें मांगी गई। अधिकांश प्रांतों ने सरदार पटेल का नाम भेजा, दो ने राजेन्द्र बाबू का नाम दिया, और किसी भी प्रांत से नेहरू का नाम नहीं आया। आचार्य कृपलानी ने पत्रकार दुर्गादास से कहा "मैं जानता था कि महात्माजी जवाहरलाल को चाहते थे, इसलिए मैंने स्वयं नेहरू का नाम यह कहकर रखा कि कुछ दिल्ली वाले नेहरू को चाहते हैं।"

पर अन्तर्कालीन सरकार में जाने के बाद उनका दल प्रवक्ता रहना अनुचित समझा गया। यह अधिवेशन बहुत ही सफल होता, परन्तु अगस्त में लीग ने 'डायरेक्ट एक्शन' नाम से जिस असभ्य आंदोलन का सूत्रपात किया था, उसके कारण आबहवा बहुत गंदी हो गई थी। ऐन मौके पर गढ़मुक्तेश्वर में कुछ बखेड़ा भी हो गया। इसके अतिरिक्त दुर्भिक्ष की हालत के कारण यह अधिवेशन शानदार न हो सका। आचार्य कृपलानी ने अपने व्याख्यान में यह स्पष्ट किया कि इस बीच जो दमन हुआ उसके बावजूद कांग्रेस पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली हुई है। मेरठ अधिवेशन का सबसे सनसनीपूर्ण क्षण वह था जब नेहरूजी ने यह बताया कि अंतर्कालीन सरकार में वायसराय और लीग के षड्यन्त्र के कारण ऐसी परिस्थिति हो गई है कि किसी भी समय कांग्रेस को उससे निकल कर संग्राम का सूत्रपात करना पड़ सकता है। अधिवेशन में कांग्रेस के विधान के सम्बन्ध में एक समिति भी बना दी गई।

नेहरू तथा जिन्ना की विलायत यात्रा—लीग ने अंतर्कालीन सरकार का बायकाट कर रखा था। लीग और कांग्रेस में कोई समझौता हो सकता है या नहीं जिससे लीग 9 दिसम्बर से शुरू होने वाले संविधान सम्मेलन में भाग ले सके, यह जानने के लिए मि०

एटली ने जवाहरलाल नेहरू तथा जिन्ना को विलायत बुलाया। पहले तो नेहरू ने कहा कि जाना व्यर्थ है क्योंकि लीग ने 16 मई की घोषणा का स्वीकार कर लिया है अर्थात संविधान सम्मेलन में भाग लेने की शर्त को मानकर ही अन्तर्कालीन सरकार में हिस्सा लेना शुरू किया है—इसलिए बेकार की बातचीत से कोई फायदा नहीं है। 26 नवम्बर को नेहरू ने लार्ड वेवल को लिखा कि लन्दन जाने का अर्थ ही यह है कि फिर सारी बात पर चर्चा की जाए। नेहरू ने कहा कि वह इसके लिए तैयार नहीं हैं। फिर 9 दिसम्बर से संविधान सम्मेलन की बैठक होने जा रही है। यदि उस वक्त तक वापस न आ सके, तो संविधान सम्मेलन स्थगित कर दिया जाएगा, और इस पर तरह तरह के खतरनाक प्रचार होंगे, जिसमें बहुत नुकसान होगा। प्रधान मंत्री ने इस पर यह लिखा कि 9 दिसंबर से संविधान सम्मेलन का अधिवेशन हो, यही उद्देश्य लेकर चर्चा होने जा रही है। इसलिए कैबिनेट मिशन की योजना को त्याग देने अथवा संविधान सम्मेलन के अधिवेशन को स्थगित करने का कोई प्रश्न नहीं है। प्रधान मंत्री ने लिखा कि कैबिनेट मिशन योजना को बदलना या स्थगित करना लक्ष्य नहीं है, बल्कि उसे सफल बनाना ही लक्ष्य है। फिर भी जवाहरलाल ने जाने से इन्कार किया। परन्तु जब ऐटली ने फिर अनुरोध किया और यह वादा किया कि 9 दिसम्बर के पहले ही वह लौट आएंगे, तब वह राजी हुए।

अब नेहरू राजी हो गए तो जिन्ना राजी नहीं हुए। जिन्ना ने कहा कि पण्डित नेहरू को जो आश्वासन दिए गए हैं, यदि वे सही हैं तो उनके जाने का कोई अर्थ नहीं होता। इस पर प्रधान मंत्री ने लिखा कि किसी भी दृष्टिकोण से देखें तो चर्चा में कोई दबाव नहीं होना चाहिए। इस पर जिन्ना भी जाने के लिए राजी हो गए। परन्तु लन्दन में हुई इस चर्चा का कोई नतीजा नहीं निकला और नेहरू तथा जिन्ना दोनों जैसे गए थे वैसे ही लौट आए। पहले कांग्रेस में कुछ ऐसी राय हुई कि विवादग्रस्त विषय फेडरल कोर्ट के सुपुर्द कर दिए जाएं पर बाद को कांग्रेस ने यह इरादा छोड़ दिया।

संविधान सम्मेलन—9 दिसम्बर को यथारीति संविधान सम्मेलन की कार्यवाही शुरू हुई। प्रसिद्ध विद्वान श्री सच्चिदानंद सिन्हा अधिक उम्र होने के नाते इस अधिवेशन के अध्यक्ष बने और उन्हीं की अध्यक्षता में स्थायी अध्यक्ष के रूप में राजेन्द्र प्रसाद का चुनाव हुआ। नेहरू जी ने पहले ही पत्रों को वक्तव्य देते हुए कह दिया था कि संविधान सम्मेलन सर्वप्रभु संस्था है। सम्मेलन के कुल सदस्यों की संख्या 385 थी। इनमें सीधे कांग्रेस तथा कांग्रेस के द्वारा नामजद 207 सदस्य थे। 14 अन्य सदस्यों के कांग्रेस के साथ काम करने की उम्मीद थी। इन 385 सीटों में रियासतों की 93 सीटें नहीं जोड़ी गई। संविधान सम्मेलन ने स्थायी अध्यक्ष चुनने के बाद उप समितियों का निर्माण किया और उनका कार्य चलने लगा। 13 सितम्बर को नेहरू ने प्रस्ताव रखा कि भारतवर्ष एक गणतांत्रिक तथा प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र बनेगा।

6 दिसम्बर की घोषणा—9 दिसम्बर से संविधान सम्मेलन का अधिवेशन शुरू होना था, पर 6 दिसम्बर को ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि प्रान्तों के ग्रुपिंग को मानकर ही सम्मेलन कार्य कर सकता है। कहना न होगा कि यह प्रस्ताव संविधान सम्मेलन की प्रभुता पर हस्तक्षेप था। अभी संविधान सम्मेलन ने कुछ काम नहीं किया था कि उस पर ऊपर से यह हुक्मनामा आया, यह कोई अच्छा लक्षण नहीं था। पर कांग्रेस कार्यसमिति ने यह सोचकर कि सरकार कहां तक जाती है यह देखा जाए, इस घोषणा को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस के नेता शायद सोचते थे कि कुछ प्रान्तों को न सही, परन्तु बाकी प्रान्तों को ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता देती है या नहीं, यह देखा जाए। स्मरण रहे, इस घोषणा के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने 16 मई की घोषणा के विरुद्ध मन्तव्य दिया

था। उस घोषणा में कहा गया था कि किसी भी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को यह अधिकार न होगा कि वह किसी अगले कदम में बाधा पहुंचाए, पर इस घोषणा में यह कहा गया कि सरकार इस बात के लिए तैयार नहीं है कि किसी भी अनिच्छुक अंग पर संविधान सम्मेलन के फैसले को लागू किया जाए। यद्यपि कांग्रेस ने 6 दिसम्बर की घोषणा को मान लिया, फिर भी जिन्ना तथा उनकी पार्टी ने सम्मेलन में भाग लेने से इन्कार कर दिया। कांग्रेस ने फिर भी इस आशा से कि शायद लीग को सुबुद्धि आ जाए नेहरू वाले प्रस्ताव को बिना पारित किए ही, 23 दिसम्बर को कुछ आरम्भिक कारवाई करने के बाद, अधिवेशन को स्थगित कर दिया। असम के नेताओं ने कांग्रेस कार्यसमिति के बावजूद यह तय किया कि वे ग्रुपिंग में शरीक नहीं होंगे।

कलकत्ता हत्याकांड अगस्त 1946 से लीग ने बंगाल में जो कार्यपद्धति चलाई थी, उसके कारण बंगाल के हिंदुओं की हालत बहुत खराब हो गई थी। 16 अगस्त को जिस दिन लीग का कथित 'डायरेक्ट एक्शन' दिवस शुरू हुआ, उस दिन लीगियों ने भयंकर रूप से हिंदुओं की हत्या करने का कार्यक्रम उठाया। यही नहीं, लीगी सरकार ने पुलिस को भी लोगों की मदद के लिए नहीं जाने दिया। नतीजा यह हुआ कि कलकत्ता में हिंदू बुरी तरह मारे गए और तीन दिन बाद जब हिन्दू भी अपने प्रथम विस्मय से जागकर आत्मरक्षा के लिए उठ खड़े हुए, तो पुलिस ने हस्तक्षेप शुरू किया।

नोआखाली और बिहार के दंगे—इसके बाद लीग ने नोआखाली में संगठित तरीके से हिन्दुओं का नाश आरम्भ किया। इस बार लीगियों ने स्त्रियों को भगाना तथा लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनाना भी शुरू किया। पुलिस ने सताए हुए लोगों की बिलकुल मदद नहीं की बल्कि अपराधियों की मदद की। लोगों में इतना आतंक छा गया कि वे गांव और घर छोड़कर भागने लगे। गांधीजी को लोगों ने जाकर नोआखाली की खबरें बताई, तो वह भारी संकट सहकर नोआखाली पहुंचे और जनवरी में उन्होंने गांव गांव का दौरा करना शुरू किया। उनका उद्देश्य हिन्दू मुस्लिम मेल कराना था। बंगाल के लीग द्वारा आरम्भ किए दंगों की प्रतिक्रिया स्वरूप बिहार में बहुत भयंकर दंगे हुए, जिनमें मुसलमान बहुसंख्या में मारे गए। दंगा बंगाल और बिहार दोनों में हुआ पर बिहार में सरकार ने दंगाइयों को दबाया और मुसलमानों की रक्षा की। बंगाल में सरकार ने दंगों में प्रत्यक्ष भाग लिया और फिर दंगा खत्म होने के बाद न अपराधियों को पकड़ा और न भगाई हुई औरतों का पता लगाने में मदद दी। इन भगाई हुई स्त्रियों में से हिंदू स्त्रियां ले बसरा तक ले जाए जाने की खबर बाद को मिली। गांधीजी नोआखाली के बाद अन्य दंगापीड़ित क्षेत्रों का दौरा करने लगे, परन्तु उधर नोआखाली से पीठ फेरते ही वहां फिर भयंकर अत्याचार शुरू हो गया।

फिर बंग भंग का नारा—बंगाल की लीगी सरकार की साम्प्रदायिक नीति तथा खुल्लम खुल्ला मुसलमान दंगाइयों और अपराधियों के साथ पक्षपात करने के कारण बंगाल के हिंदुओं तथा राष्ट्रीय विचार के लोगों में यह धारणा जोर पकड़ गई कि लीगी सरकार के अधीन रहना दुर्भाग्य ही होगा। इस कारण जो बंगाली हिन्दू कभी बंग भंग के विरुद्ध अपना प्राण तक देकर लड़े थे अब इस बात के लिए मजबूर हुए कि बंग भंग का नारा दें। ऐसे लोगों ने यह नारा दिया कि बंगाल के पश्चिमी जिले जिनमें हिंदुओं की बहुसंख्या है एक प्रांत के रूप में संगठित किए जाएं। यह आंदोलन दिन ब दिन जोर पकड़ता गया। अंत में बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने भी इस नारे का समर्थन किया। मजे की बात यह है कि जब यह आंदोलन जोर पकड़ने लगा, तो लीग के नेता बृहत्तर बंगाल का नारा देने लगे और कहने लगे कि बंगाली जाति के एक बने रहने में ही भलाई है। ये लोग भूल

थे कि इनके सिद्धांत के अनुसार बंगाली जाति का तो कोई अर्थ ही नहीं होता क्योंकि जातियां तो मुस्लिम और हिन्दू दो ही हैं। ये लोग यह भी भूल गए कि उनके लिए तो एक ही शब्द है, पाकिस्तान, और वृहत्तर बंगाल का कोई अर्थ नहीं होता।

एशिया सम्मेलन—मार्च, 1947 में मुख्यत जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नों से दिल्ली में अखिल एशिया सम्मेलन बुलाया गया। एशिया के प्रत्येक देश ने इस सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि मण्डल भेजा तथा भारत की सब पार्टियों ने इसके साथ पूरा सहयोग किया। केवल भारतीय मुस्लिम लीग ने इसका बायकाट किया। इस प्रकार अखिल एशिया सम्मेलन का बायकाट कर लीग के नेताओं ने सारे एशिया के प्रतिनिधियों के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि उनके विचार बहुत ही संकीर्ण हैं। उन्होंने इस सम्मेलन पर यह दोष लगाया कि यह एक विशेष पार्टी अर्थात् कांग्रेस की तरफ से किया जा रहा है, इसलिए वे इसमें शरीक नहीं हो सकते। यह द्रष्टव्य है कि इस सम्मेलन में बाहर से जो प्रतिनिधि आए उनमें बहुत से मुसलमान थे। इसमें 30 देशों से 230 प्रतिनिधि आए थे। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए नेहरूजी ने कहा कि यूरोप तथा अमेरिका के अखबारों में यह शंका प्रकट की गई है कि यह सम्मेलन गोरी जातियों के विरुद्ध है, जो गलत है। हम एक दुनिया के आदर्श के लिए काम करेंगे।

एशिया सम्मेलन के कार्य—सम्मेलन में किसी देश की आन्तरिक राजनीति पर कोई आलोचना नहीं की गई। ऐसा इसलिए किया गया कि कहीं किसी समस्या पर आपसी झगड़ा उठ खड़ा न हो। श्रीमती सरोजिनी नायडू इस सम्मेलन की सभानेत्री थीं। सम्मेलन में इंडोनेशिया के क्रांतिकारी नेता डाक्टर शहरयार सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। अवश्य अन्य देशों से जो प्रतिनिधि आए थे, वे भी अपने अपने देश के बड़े नेता थे। सम्मेलन के फलस्वरूप एशियाई देशों में मित्रतापूर्ण वातावरण उत्पन्न हुआ। इस सम्मेलन से 'एशिया छोड़ो' का साम्राज्यवाद विरोधी नारा भी निकला।

जून 1948 तक भारत छोड़ने की घोषणा—इस सम्मेलन के पहले ही 27 फरवरी, 1947 को मिस्टर ऐटली ने यह घोषणा की थी कि जून 1948 तक ब्रिटिश सरकार भारत छोड़ देगी। इस घोषणा में मिस्टर ऐटली ने कहा "अनेक वर्षों से ब्रिटेन की एक के बाद एक सरकार भारत में स्वायत्त शासन प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करती आ रही है। इस नीति का अनुसरण करने के कारण भारतीयों में क्रमश जिम्मेदारी बढ़ती गई है और आज यह हालत पहुंच चुकी है कि शासन व्यवस्था तथा भारतीय सशस्त्र सेना भारतीय कर्मचारियों पर बहुत कुछ निर्भर है। शासन सुधार के क्षेत्र में भी हम देखते हैं कि ब्रिटिश संसद ने 1919 और 1935 में भारतीयों को यथेष्ट अधिकार दिए।" इस प्रकार शासन सुधार का इतिहास देने के बाद घोषणा में कहा गया कि जून 1948 के पहले जिम्मेदार भारतीयों के हाथों में सत्ता सौंप देने का सरकार निश्चित इरादा कर चुकी है। जो सरकार भारतीयों के समर्थन से बनेगी, और जो सरकार न्याय के सिद्धांतों के अनुसार भारत का शासन कर सकेगी, और शांति स्थापित कर सकेगी, ब्रिटिश सरकार उसके हाथों में जिम्मेदारी देने के लिए उत्सुक है। अगले साल तक इस विराट जिम्मेदारी को लेने के लिए सब दलों को झगड़े मिटाकर एक हो जाना चाहिए। सम्पूर्ण रूप से प्रतिनिधिमूलक संविधान सम्मेलन जिस विधान की रचना करेगा, ब्रिटिश सरकार अपनी संसद में उसे समर्थन देगी। यदि इस बीच वैसा संविधान नहीं बन पाया, तो ब्रिटिश सरकार किसके हाथों भारतीय केंद्रीय सरकार की ताकत दे, इसे बाद का सोचा जाएगा। जून 1948 तक शायद पूरी शासन शक्ति दे पाना संभव न हो, इसलिए पहले से उसकी तैयारी करनी चाहिए। असैनिक शासन व्यवस्था कुशल हो और भारत

देश की रक्षा ढग स की जाए, इसका आयोजन बहुत जरूरी है। देशी रियासतो के सबध मे घोषणा मे कहा गया कि ब्रिटिश सरकार सार्वभौम शक्ति की हैसियत से जो शक्ति रखती है तथा उनके साथ उसके जो सबध है, उन्हे पूरे तरीके से शक्ति हस्तातरित करने से पहले ब्रिटिश सरकार नही छोडेगी। भारत मे ब्रिटेन के व्यापारिक तथा औद्योगिक स्वार्थों की भी रक्षा करने की बात कही गई।

घोषणा का असर—इस घोषणा के पहले अन्तर्कालीन सरकार म लीग तथा काग्रेस का सबध इतना कड़ुवा हो चुका था कि काग्रेस के नेता यह खुलआम धमकी देने लगे थे कि या तो लीग 16 मई 1946 की घोषणा मानकर सविधान सम्मेलन म भाग ले या वह अन्तर्कालीन सरकार छोडकर चली जाए, परतु इस घोषणा से यह परिस्थिति बदल गयी।

पजाब मे दगा—एटली की घोषणा के बाद ही पजाब म यूनियनिस्ट मत्रिमण्डल के नेता खिजिर हयात खा ने यह कहकर इस्तीफा दे दिया कि इस घोषणा से परिस्थिति इतनी बदल गई है कि अब उनका मुख्यमत्री रहना उचित नही लगता। पता नही कि यह बात पहले से तय थी या नही मत्रिमण्डल के इस्तीफा देते ही लीग की तरफ से भय कर साम्प्रदायिक दगे शुरू हो गए, और हजारो निरीह लोग मारे जाने लगे। लीग की असेम्बली पार्टी मत्रिमण्डल बनाने मे असमर्थ रही। दगो के कारण पजाब के सिक्ख तथा हिन्दुओ ने भी पजाब के विभाजन का नारा दिया और काग्रेस कार्यसमिति ने उसे स्वीकार भी कर लिया। हिन्दू मुस्लिम दगे कराके लीग ने मुस्लिम नेशन' के लिए अलग होमलैंड की अपनी माग पूरा करा ली।

स्वराज्य—साथ ही देश का विभाजन—एक तरह से 3 जून, 1947 को ही भारतवर्ष को स्वराज्य प्राप्त हो गया। युग युग की लदी हुई जजीर खनखनाकर गिर पडी। इससे देश म अपार हर्ष की लहर दौड गई। परतु साथ ही देश का जो दो हिस्सो पाकिस्तान और हिन्दुस्तान म विभाजन हुआ। इसस देश की सारी समझदार जनता, विशेषकर राष्ट्रीयतावादी तथा समाजवादी हिस्सा बहुत दुखी हुआ। कुछ समाजवादी तो अखण्ड हिन्दुस्तान के नारे मे विश्वास रखते थे परतु अधिकाश जातियो के आत्म निर्णय म, यहा तक कि अलग राष्ट्र बनाने की हद तक आत्म निर्णय मे, विश्वास करते थ। परतु व भी भारतवर्ष के धार्मिक विभाजन के विरुद्ध थे। वे समझते थे कि धार्मिक विभाजन का समाजवाद मे कोई स्थान नही है। आश्चर्य की बात है कि अपने को समाजवाद का एक मात्र ठेकेदार समझने वाली कम्युनिस्ट पार्टी की इस सबध म नीति ढुलमुल ही रही। कम्युनिस्ट पार्टी ऐसे गोलमोल शब्दो मे अपनी नीति व्यक्त करती रही कि विरुद्ध मताव लम्बियो को उसके सबध मे परस्पर विरोधी धारणाए उत्पन्न होती रही। फिर इस सबध म भी उसकी नीति बराबर बदलती भी रही।

काग्रेस के नेताओ ने देश के धार्मिक विभाजन को यह समझकर ग्रहण किया कि इसस कम से कम आपसी झगडे का अन्त हो जाएगा। तीन जून को दिल्ली से इसी कार्य के लिए विशेष रूप से भेजे गए वायसराय लार्ड माउटबेटन ने ब्राडकास्ट किया जिसम उन्होने भारतवर्ष का औपनिवेशिक पद प्राप्त होना और उसका दो राष्ट्रो म विभाजित होना घोषित किया। इसके बाद जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषित किया कि काग्रेस इस घोषणा को यह समझकर स्वीकार करती है कि इस प्रकार शायद बिछडे हुए हिस्सो के जुडने म शीघ्रता हो। पटेल भी इसी राय पर पहुच चुके थे।

उन दिनो के कम्युनिस्ट नेता—याद रहे, उस समय कम्युनिस्ट पार्टी एक ही थी और टूटकर टुकडे टुकडे नही हो पाई थी। श्री बिपिनचन्द्र द्वारा सम्पादित पुस्तक 'दि

इडियन लेफ्ट' के अनुसार कम्युनिस्ट पार्टी के मत्री श्री पी० सी० जोशी ने बड़े गर्व के साथ लिखा "केवल हमारी पार्टी ने काग्रेस-लीग एकता के लिए चेष्टा की। हमने जेहादी जोश में काग्रेसजनो में पाकिस्तान की माग को और लीगियो में काग्रेस माग को जनप्रिय बनाया।" कहना न होगा कि यह प्रचार हास्यास्पद था। परतु दूसरे कम्युनिस्ट नेता जोशी की तरह धूर्त नही थे। कभी कभी उनके मुह से सत्य निकल ही पडता था। प्रमुख कम्युनिस्ट नेता अधिकारी ने कहा "यदि हम यह कहते है कि लीग का प्रभाव प्रतिक्रिया वादी और साम्प्रदायिक था, तो उसका अर्थ यह है कि मुस्लिम जनता कभी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना तक पहुची ही नही।' कम्युनिस्ट नेताओ ने इस सबध में बराबर जो दुरगी बातें की, उनमे उनका मानसिक दिवालियापन तथा साथ ही बेईमानी प्रकट होती है। यहा ब्यौरे में न जाकर हमने केवल एक दो नमूने ही पेश किए हैं जिनसे नेहरू का यह वक्तव्य प्रमाणित होता है कि "कम्युनिस्ट जिन्ना की मागो के सपूर्ण समर्थक है।" य सारी गलतिया इस कारण होती चली गई कि भारतीय कम्युनिस्टो ने लेनिनवादी जातियो के आत्म निर्णय (स्तालिन ने जिसका विस्तार किया) सिद्धात को जबदस्ती पाकिस्तान मागने वाले कट्टर मुसलमानो पर लागू कर दिया, जबकि वास्तव मे इस कम्युनिस्ट सिद्धात मे धार्मिक आधार पर जाति की स्वीकृति नही है। अवश्य कम्युनिस्ट पूरा जोर लगाते तो भी पाकिस्तान रुक नही जाता, ऐसा मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि कम्युनिस्टो की गलत स्थापनाओ के कारण बहुत से मुसलमान जो शायद गुमराह न होते, गुमराह होते चले गए। वे प्रगतिशील भी बने रहे और पाकिस्तानी भी। इससे पाकिस्तान और भारत दोनो को गहरी हानि पहुची। बाद को जो घटनाए हुई, उनकी रोशनी में यह जानना दिलचस्प होगा कि कम्युनिस्ट उस समय अकालियो की अलग पजाब की माग के विरुद्ध थे। कोई पूछे कि क्यो ? यदि आत्मनिर्णय सिद्धात कट्टर मुसलमानो पर लागू हो सकता है, तो वह उसी तर्क से सिक्खो पर भी लागू हो सकता है।

थकावट सिद्धात—दुर्गादास ने लिखा है "अतिम विश्लेषण मे काग्रेस के नेता या अन्य सभी दल कुल मिलाकर इतना थक चुके थे कि आगे सग्राम चलाने को तैयार न थे। कुछ यह भी डर था कि ब्रिटेन के अगले चुनाव मे श्रमिक दल आ पाए या न आ पाए।' इस 'थकावट सिद्धात' का समर्थन एक अग्रेजी लेखक लिओनार्ड मास्ले ने भी अपनी पुस्तक 'लास्ट डेज आफ दि राज' मे किया है, पर साथ ही उसने यह भी कहा है कि नेहरू और पटेल माउटबेटन द्वारा लटकाए हुए गाजर से प्रलुब्ध नही थे।

लीग तथा उसके नेताओ को जो जरा भी जानता था, वह कभी यह आशा नही कर सकता था कि जिस रूप मे पाकिस्तान मिला, उस रूप मे वह किसी भी प्रकार उनको सतुष्ट कर सकता था। जिस सस्था ने नोआखाली तथा कलकत्ता मे सगठित तरीके से हिन्दू विनाश तथा उनकी स्त्रियो को भगाने का कार्यक्रम चलाया था, उनसे यह आशा करना कि वे शक्ति हाथ मे आ जाने पर साधु हो जाएगे तथा लोकतात्रिक तरीके से चलेंगे दुराशा मात्र थी।

जूनागढ कश्मीर—जूनागढ तथा कश्मीर की घटनाओ और पूर्वी बगाल द्वारा असम और पश्चिमी बगाल की भूमि पर चढाई से यह स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान का बनना झगडे घटाने मे सहायक न होकर झगडो का पैमाना बढाने मे सहायक हुआ। जो झगडे पहले बहुत कुछ दगो के रूप तक सीमित रह सकते थे अब उनके युद्धो मे परिणत होने की सभावना उत्पन्न हो गई। कश्मीर पर हुए हमले के सबध मे यह अच्छी तरह साबित हो चुका है कि इस हमले मे पाकिस्तान का हाथ था। पाकिस्तान इन आक्रमण

कारियों को खाना पीना, अस्त्र शस्त्र, सभी कुछ दे रहा था। इस आक्रमण का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने पेश हुआ पर उसने पक्षपात से काम लिया।

फिर पाकिस्तान बनने के दौरान पश्चिमी पंजाब के अगणित हिंदू तथा सिक्ख मारे गए तथा जो बचे उन्हें वहां से खदेड़ दिया गया। जवाब में पूर्वी पंजाब के मुसलमानों के साथ भी ऐसा ही किया गया, जिसका नतीजा एक तो यह हुआ कि कड़वापन बढ़ा और भारतीय संघ के लिए एक ऐसा प्रश्न उत्पन्न हो गया कि सारा धन इसी में खर्च होने लगा। राष्ट्र निर्माण की किसी योजना को कार्यान्वित करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रही क्योंकि बिना धन के किसी योजना को कार्यान्वित करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

स्वतंत्रता का आवाहन— भारत के प्रथम प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्रता का आवाहन करते हुए आकाशवाणी से कहा "आज एक शुभ और मुबारक दिन है। जो स्वप्न हमने बरसों से देखा था, वह कुछ हमारी आंखों के सामने आ गया। चीजें हमारे कब्जे में आई। दिल हमारा खुश होता है कि एक मंजिल पर हम पहुंचे। यह हम जानते हैं कि हमारा सफर खतम नहीं हुआ अभी बहुत मंजिलें बाकी हैं, लेकिन, फिर भी, एक बड़ी मंजिल हमने पार की और यह बात तय हो गई कि हिंदुस्तान के ऊपर कोई गैर हुकूमत अब नहीं रहेगी। हमारा मुल्क आजाद हुआ, सियासी तौर पर एक बोझा जो बाहरी हुकूमत का था वह हटा। लेकिन आजादी भी अजीब-अजीब जिम्मेदारियां लाती है और बोझे लाती है। अब उन जिम्मेदारियों का सामना हमें करना है और एक आजाद हैसियत से हम आगे बढ़ना है और अपने बड़े-बड़े सवालों को हल करना है। सवाल बहुत बड़े हैं। सवाल हमारी सारी जनता का उद्धार करने के हैं, हमें गरीबी को दूर करना है बीमारी को दूर करना है, अनपढ़पन को दूर करना है और आप जानते हैं, कितनी और मुसीबतें हैं जिनको हमें दूर करना है। आजादी महज एक सियासी चीज नहीं है। आजादी तभी एक ठीक पोशाक पहनती है, जब उससे जनता को फायदा हो। आजकल हमारे सामने ये आर्थिक सवाल बहुत सारे हैं बहुत काफी जमा हुए हैं, जो हमारी गुलामी के जमाने के हैं। बहुत कुछ पिछली लड़ाई की वजह से पिछली बड़ी लड़ाई जो दुनिया में हुई और उसके बाद जो हालात दुनिया में हुए हैं, उसकी वजह से ये सवाल जमा हैं। खाने की कमी है कपड़े की कमी है और जरूरी चीजों की कमी है और ऊपर से चीजों के दाम बढ़ते जाते हैं जिससे जनता की मुसीबतें बढ़ रही हैं।'

12

स्वराज्य के बाद कांग्रेस सत्ता में

स्वराज्य के बाद कांग्रेस की स्थिति स्वाभाविक रूप से बदल गई। किसी भी संस्था के लिए वह दिन अच्छा होने के साथ ही बुरा भी होता है जब उसका लक्ष्य पूरा हो जाता है क्योंकि उसके बाद उसके अस्तित्व का कारण (Raison d'etre) समाप्त हो जाता है। ब्रजकिशन चांदीवाला और तेंदुलकर के अनुसार महात्मा गांधी ने कांग्रेस को समाप्त कर लोक सेवक संघ बनाने की एक योजना बनाई थी, जो कार्यसमिति की अगली बैठक में पेश की जाती। परन्तु इसी बीच महात्माजी एक धर्मांध हिंदू के हाथों मारे गए, और यह योजना एक दस्तावेज मात्र रह गई। हां, यह पूरी योजना गांधीजी की शहादत के करीब दो सप्ताह बाद उनके पत्र 'हरिजन' (15 2 48) में छपी।

लोकसेवक संघ —इस परिपत्र में महात्माजी ने कहा था "कांग्रेस अपने वर्तमान रूप और आकार यानी प्रचार के माध्यम और संसदीय यंत्र के तौर पर अपनी उपयोगिता खो चुकी है। भारत को अभी अपने शहरों और कस्बों से अलग सात लाख गांवों के लिए सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी प्राप्त करनी है।"

इस योजना के अनुसार पांच बालिग पुरुष और स्त्रियों की मूल पंचायती इकाई बनाई जाती। इस प्रकार की पंचायतें पिरामिड के ढंग पर ऊपर उठती चली जाती। प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए खादी पहनना तथा मद्यपान से बचना जरूरी होता। संघ के अन्तर्गत ये स्वयं शासित संस्थाएं होतीं—

(1) चर्खा संघ, (2) ग्रामोद्योग संघ, (3) हिंदुस्तानी तालीमी संघ, (4) हरिजन सेवक संघ तथा (5) गोसेवा संघ।

देश के निर्माण की यह अच्छी योजना थी और यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता तो दलबंदी से बहुत सीमा तक बचा जा सकता था। परंतु तथ्य यह है कि कांग्रेस के नेताओं ने कांग्रेस के विलीनीकरण की आवश्यकता नहीं समझी। इस सम्बन्ध में मनोरंजक बात यह है कि गांधीजी ने 27 जनवरी को 'कांग्रेस की स्थिति' शीर्षक से एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा था कि कांग्रेस को मरने नहीं दिया जा सकता। वह तभी मरेगी जब राष्ट्र मरेगा। प्रतीत होता है कि महात्माजी स्वयं अभी दुराहे पर खड़े थे, किसी निश्चय पर नहीं पहुंचे थे।

पाकिस्तान की रचना —पाकिस्तान जिस प्रकार बना, वह बताया जा चुका है। वह मुसलमानों के होमलैंड या वतन के रूप में सामने आया, परन्तु लगभग चार करोड़ मुसलमान फिर भी भारत में रह गए। इस प्रकार पाकिस्तान का बनना इन मुसलमानों के साथ धोखा ही हुआ। यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो चार करोड़ मुसलमान भारत में रह गए उनमें से सभी भारत के प्रति प्रेम करने के कारण ही यहां रहे। उनके द्वारा दिए गए वोट इसका प्रमाण है। इसके अलावा, लोग कोई भी नई बात, विशेषकर घरबार छोड़कर एकदम नई जगह जाकर बसना, पसंद नहीं करते। इस प्रकार की कई

बातें इसके अन्दर थी। आजादी से पहले भारत में मुसलमान किसी भी तरह से, बहकावे में आकर ही सही मुस्लिम लीग को अपने लगभग सारे वोट दे देते थे, परन्तु देखा जाए तो असलियत कुछ और ही थी। यो राष्ट्रीय आंदोलन में कुछ मुसलमान बहुत ईमानदारी के साथ थे, पर इनमें से एक आध मुसलमान ही इस योग्य था कि वह मुसलमान वोटों से किसी धारासभा में चुना जा सके। हाफिज मोहम्मद इब्राहीम आदि कुछ कांग्रेसी मुसलमान ही इतना दबदबा रखते थे कि वह अपने हल्के से मुस्लिम वोटों पर चुने जा सकें। जो चार करोड़ मुसलमान भारत में रह गए, वे एक प्रकार से बड़ी अजीब स्थिति में पड़ गए। यद्यपि उनमें से बहुतों ने, जैसा कि मुस्लिम लीग को उनके वोट देने से ज्ञात होता है, मुस्लिम होमलैण्ड के सपने देखे थे, पर जब स्वप्न सामने आया तो वे प्रमाद या आलस्य से पीछे हट गए।

कश्मीर युद्ध —कश्मीर में राजा हिन्दू था, जो स्वराज्य के बाद स्वयं स्वतंत्र होने का सपना देख रहा था। परन्तु जब पाकिस्तान ने उस पर हमला कर दिया, तो उसने भारत की मदद मांगी और कश्मीर कानूनी रूप से भारत का अंग बन गया यद्यपि वह एक मुस्लिम प्रधान प्रांत था। उस समय के कश्मीरी नेता राष्ट्रवादी थे। वे राजा के साथ इस शर्त पर मिल गए कि कश्मीर में जनता द्वारा चुनी हुई सरकार बनेगी। कश्मीर युद्ध में पाकिस्तान को मुंह की खानी पड़ी और यदि नेतागण उस समय और थोड़ी हिम्मत दिखाते, तो युद्ध विराम रेखा का टंटा नहीं रहता, पूरा कश्मीर ही भारत में मिल जाता।

यहां देखने की बात यह है कि पाकिस्तान के नेता कश्मीर को तो हड़पना चाहते थे, पर उन्होंने चार करोड़ मुसलमानों से यह नहीं कहा कि तुम यहां आ जाओ। उन्हें मुस्लिम जनता से कोई प्रेम नहीं था, उन्हें तो साम्राज्य चाहिए था।

केवल कांग्रेस के नेता ही नहीं सभी लोगों ने पाकिस्तान के जन्म को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार किया। कई बुद्धिमान लोग यह भी सोचते थे कि देश का जन्म चाहे किसी भी तरह हुआ हो, पर हुकूमत की भूख पूरी हो जाने पर शायद सारा झगड़ा निबट जाएगा। पर इस उम्मीद पर पहली बार पानी तब फिर गया, जब पाकिस्तान बनने के साथ ही वहां भयंकर मारकाट हुई और हिन्दुओं को मार भगाया गया। हां, पूर्वी पाकिस्तान में काफी हिन्दू रह गए।

कश्मीर का भारत में होना पाकिस्तान के मुंह पर एक थप्पड़ की तरह रहा। यों यहां बता दिया जाए कि आर्थिक दृष्टि से कश्मीर का भारत में होना कोई फायदे का सौदा नहीं था। करोड़ों रुपये उस पर खर्च हुए और बराबर होते रहे हैं। पाकिस्तान के लिए भी वह आर्थिक फायदे का सौदा नहीं होता, कम से कम बहुत ज्यादा तक नहीं। फिर भी पाकिस्तान कश्मीर को लेने के लिए तड़पता रहा। क्यों? उसकी वजह यह है कि पाकिस्तान जिस अवैज्ञानिक बुनियाद पर बना उस पर भारत में कश्मीर रहने से आंच आती है जबकि भारत के धर्मनिरपेक्षता की बुनियाद पर निर्मित होने के कारण उसमें कश्मीर रहने से उसे बल मिलता है। यह बात यहां अवश्य कह देनी चाहिए कि भारत केवल मुंह से धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं रहा बल्कि वह सब तरह से अपने यहां धर्म निरपेक्षता को बल पहुंचाता रहा। जहां पाकिस्तान में यह नियम है कि कोई भी गैर मुसलमान पाकिस्तान का राष्ट्रपति नहीं हो सकता भारत में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। सच तो यह है कि भारत में बड़े से बड़े ओहदों पर अहिन्दू हमेशा रहे हैं।

पहला पाक हमला - किन परिस्थितियों में पाकिस्तान और भारत का यह पहला युद्ध छिड़ा, आइये यह देखें। गांधीजी अभी हमारे बीच थे और उन्होंने इस युद्ध

को आशीर्वाद दिया था। आचार्य कृपलानी ने लिखा है "अक्सर यह पूछा जाता है कि अहिंसा के पुजारी गांधीजी ने कश्मीर मे फौज भेजने का समर्थन किया, सो बात यह है कि गांधी एक अहिंसावादी सरकार को परामर्श नहीं दे रहे थे, बल्कि एक ऐसी सरकार को सलाह दे रहे थे जो वध स्वार्थ की रक्षा के लिए फौज रखती थी।" भारत किसी भी हालत में किसी देश से युद्ध नहीं करना चाहता था और लोगों मे यह धारणा बन गई थी कि भारत किसी भी हालत मे युद्ध नहीं करेगा। बाद में शायद अयूब के मन मे भी यही धारणा बैठ गई।

स्वराज्य के बाद गांधी — पाकिस्तान द्वारा आक्रमण के पहले ही वातावरण काफी खराब था। यह अजीब बात है कि चार करोड़ मुसलमान भारत मे थे, कम से कम उनके स्वार्थ को देखकर पाकिस्तान को भारत पर हमला नहीं करना चाहिए था। जब स्वराज्य के बाद देश भर मे साम्प्रदायिक मारकाट चालू हुई, तो गांधीजी को बहुत दुख हुआ। 15 अगस्त, 1947 के बाद उन्होंने सिर्फ एक ही काम पर ध्यान दिया था — हिंदुओं और मुसलमानों मे वैमनस्य दूर करना। उन्होंने उस अंधकारमय वातावरण में यह संदेश दिया —"मेरे धर्म की कोई भौगोलिक रेखाएं नहीं हैं। यदि इसमे मेरा विश्वास सच्चा है तो भारत के प्रति मेरा जो प्रेम है, वह भौगोलिक सीमाओं मे आगे जाने वाला साबित होगा। मेरा जीवन तो इसलिए अर्पित है कि मैं अहिंसा धर्म के द्वारा भारत की सेवा करूं।"

स्वराज्य के बाद शांति यात्रा —वह हिंदुओं और मुसलमानों में प्रेम भावना उत्पन्न करने के लिए बिहार गए नोआखाली गए अपने शिष्यों को लाहौर और जहां तहां भेजा। जब गांधीजी की हत्या हुई उस समय श्रीमती सुशीला नैयर लाहौर मे काम कर रही थी। उस समय लाहौर पाकिस्तान का भाग बन चुका था तथा हिंदुओं और मुसलमानों में बहुत वैमनस्य था।

गांधीजी का अनशन —जब गांधीजी ने देखा कि बातों का किसी पर असर नहीं हो रहा है, यहां तक कि सरकार मे भी कुछ लोग ऐसे हैं, जो उनकी बातों को नहीं मान रहे हैं तो उन्होंने अनशन का आश्रय लिया। कुछ लोग यह समझते थे कि अनशन सरदार वल्लभ भाई पटेल के विरुद्ध है, जो गृह मंत्री थे। इस संबंध में गांधीजी ने यह कहा 'सरदार अपने क्षेत्र मे बहुत बड़े है और बड़े योग्य प्रशासक हैं। यह सच है कि सरदार ने मेरे अधीन राजनैतिक शिक्षा का आरंभ करने की नम्रता दिखाई, परन्तु जैसा कि उन्होंने मुझे बताया, ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि उन दिनों भारत में जिस प्रकार का सार्वजनिक जीवन प्रचलित था और जिस प्रकार की राजनीति चलती थी, उसमें वे भाग नहीं ले सकते थे। जब उनके हाथ मे शक्ति आई, तो उन्होंने देखा कि वह अहिंसा के तरीकों को सफलता के साथ कार्यान्वित नहीं कर सकते। पहले वह इसी अहिंसा से बहुत भारी सफलता प्राप्त करते थे, यह दूसरी बात है। रही मेरी बात, सो मैंने यह आविष्कार किया है कि मैंने तथा मेरे साथ के लोगों ने जिसे अहिंसा का नाम रखा था, वह असली वस्तु नहीं थी, बल्कि वह उसकी एक क्षीण प्रतिमा थी, जिसका नाम 'सविनय अवज्ञा' था। स्वाभाविक रूप से सविनय अवज्ञा' शासक के लिए किसी मतलब की नहीं है।"

इसके बाद उन्होंने कहा "जैसा कि मैंने बहुत ही साफ शब्दों मे कहा है, मेरा उपवास भारत में रहने वाले मुस्लिम अल्पसंख्यकों के पक्ष मे है और इसलिए यह आवश्यक रूप से भारत के हिंदुओं और सिखों और पाकिस्तान के मुसलमानों के विरुद्ध है। इसी प्रकार यह पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों के लिए है जिस तरह कि यह भारत के

मुसलमान अल्पसंख्यकों के लिए है।"

पचपन करोड़ का मामला—भारत सरकार ने इस अनशन पर एक विज्ञप्ति प्रकाशित करते हुए कहा कि सरकार जहां तक संभव है, राष्ट्रीय कल्याण को ध्यान में रखते हुए ऐसे सब कारणों को दूर करने के लिए उत्सुक है जिनसे साम्प्रदायिक वैमनस्य पैदा होते हैं। गांधीजी के अनशन के तीसरे दिन भारत सरकार ने पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये देने का निश्चय कर लिया।

55 करोड़ का यह मामला क्या था इस सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें बता देने की जरूरत है। जिस समय भारत का विभाजन हुआ था, विभाजन को कार्यान्वित करने के लिए एक विभाजन परिषद का निर्माण हुआ था। कुल नगद धन 375 करोड़ रुपये था, जिसमें से पाकिस्तान को सत्ता हस्तांतरण के दिन 20 करोड़ रुपये दे दिए गए। यह रकम पूरी नहीं थी और बाद का हिसाब किताब के बाद यह निर्णय होना था कि पाकिस्तान को कुल कितनी रकम देनी चाहिए। अन्ततोगत्वा यह तय हुआ कि 55 करोड़ रुपये दिए जाने चाहिए। यह निर्णय दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की राय से नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में हुआ। उन्हीं दिनों कश्मीर पर पाकिस्तान का हमला चल रहा था। इसके अलावा कुछ ऐसे मामले भी थे जिनके अन्तर्गत पाकिस्तान से भारत को धन राशि मिलनी थी। पाकिस्तान इन रकमों को देने में आनाकानी कर रहा था। इसलिए भारत सरकार ने यह तय किया कि जब तक सारे मामलों पर अन्तिम फैसला न हो जाए और कश्मीर का मामला सुलझ न जाए, तब तक पाकिस्तान को कोई रकम नहीं दी जाएगी। पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने यह कभी नहीं कहा कि वे देय धन राशि देने से इन्कार करते हैं, परन्तु वे तब तक चुप बने रहे जब तक कि 55 करोड़ रुपये वाला निर्णय लिखित रूप में नहीं आ गया। यही नहीं, इसके तुरन्त बाद उन्होंने यह कहना शुरू किया कि 55 करोड़ रुपये तो भारत को देने ही हैं, बाकी मामले फिर देखे जाएंगे। इसके फलस्वरूप भारत सरकार ने 55 करोड़ वाली धन राशि का भुगतान स्थगित कर दिया। इस पर पाकिस्तान के वित्तमंत्री ने इसे आक्रमण करने के बराबर बताया। पण्डित नेहरू ने एक सार्वजनिक वक्तव्य देते हुए कहा 'ऐसी परिस्थितियों में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की धन राशि का भुगतान रद्द कर देता है परन्तु हमने उस अर्थ में किसी प्रकार भी भुगतान बन्द नहीं किया है। जो कुछ हमने कहा, उसका मतलब यह है कि हम उस समझौते को मानते हैं पर सब बातों को मिलाकर एक पूरा समझौता होना चाहिए और हम उसे पूर्ण तरीके से मानेंगे।'

अनशन का नतीजा—6 जनवरी 1948 को गांधीजी ने इस प्रश्न पर लार्ड माउण्टबैटन से बातचीत की और माउण्टबैटन ने कहा कि यदि भारत सरकार ने 55 करोड़ की रकम का भुगतान स्थगित कर दिया, तो यह भारत सरकार का पहला असम्मानजनक कार्य होगा। इस सम्बन्ध में पाकिस्तान तथा भारत में भिन्न भिन्न रायें रहीं, परन्तु गांधीजी ने यही राय कायम की कि पाकिस्तान चाहे जो कुछ करे हमें 55 करोड़ रुपये दे देने चाहिए। भारत सरकार ने अब तक दूसरा रुख लिया था, परन्तु गांधीजी के अनशन के तीसरे दिन 55 करोड़ रुपये का भुगतान पाकिस्तान को कर दिया गया।

भारत सरकार की उदारता—कहना न होगा कि गांधीजी की यह उदारता ऐतिहासिक थी, क्योंकि उन्होंने न केवल अपना मत जनता के सामने रखा बल्कि नेहरू सरकार को मजबूर कर दिया कि वह इस सम्बन्ध में पूरी उदारता से काम ले। उन्होंने सरकार के उदार निर्णय का अभिनन्दन करते हुए एक बयान दिया जिसमें उन्होंने

कहा 'किसी भी जिम्मेदार सरकार के लिए एक निश्चित और इच्छाकृत नीति को बदल सकना आसान नही है। फिर भी हमारे मन्त्रिमण्डल ने, जो हर तरीके मे जिम्मेदार है, बहुत ही सोच समझ और साथ ही निश्चित सकल्प को बदल दिया ह। मैं जानता हू कि समार की सारी जातियां इस काय का स्वागत करेंगी और मैं यह कहूगा कि हमारे मन्त्रिमण्डल ने यह काय करके बहुत ही श्रेष्ठ आचरण का परिचय दिया है।"

मुस्लिमतोषण नहीं, आत्मतोषण—गाधीजी ने यह भी स्पष्ट किया कि इसे मुस्लिमतोषण न कहा जाए, बल्कि यह आत्मतोषण है। उन्होंने कहा कि एक बहुत बडी जनता का प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डल कभी ऐसा कदम नही उठा सकता, जिससे कि वह विचारहीन जनता की वाहवाही से भटक जाए। जबकि चारों तरफ पागलपन का वातावरण है, क्या यह जरूरी नही कि हमारे प्रतिनिधि अपने दिमाग ठीक रखें और राष्ट्र की नया को चट्टान से टकराकर टूटने से बचाए।"

प्राथना सभाओ मे हुल्लड—इसी प्रकार जब सितम्बर, 1947 मे दिल्ली या उसके आस पास बिहार म झगडे हुए, तो महात्माजी ने मुसलमानों को बचाने की चेष्टा की। इन सारी बातो के फलस्वरूप हिन्दुओ मे एक वग ऐसा उत्पन्न हो गया, जिसने हर कदम पर गाधीजी का विरोध करना शुरू किया, यहा तक कि उनकी प्रार्थना सभाओ म भी लोग उन से बुरी तरह पश आने लगे। कई बार तो सर्वधर्ममूलक प्रार्थना बन्द ही कर देनी पडी। उनकी प्रार्थना की विशेषता यह होती थी कि उसम कुरान से आयतें, ईसाई गीत, वेद की ऋचाए आदि सभी पढी जाती थीं। लोग और तो सब कुछ सह लेते थे, पर कुरान की आयतो पर झगडा करते थे।

गाधीजी की हत्या—इन परिस्थितियों मे एक धर्मान्ध के हाथो महात्माजी की हत्या होना कोई आश्चय की बात नही है। पहले ही गाधीजी पर बम से एक हमला हो चुका था। तेन्दुलकर के अनुसार "30 जनवरी की शाम को चार बजे सरदार पटेल गाधीजी से मिले और उनके साथ एक घण्टा रहे। हाल के उपवास तथा अन्य कारणो से सरदार पटेल और जवाहरलाल मे जो मतभेद हुए थे, उससे वह चिन्तित थे। वह चाहते थे कि दोनो नेता कन्धे से कन्धा मिलाकर चलें। सन्ध्या समय की प्रार्थना के बाद नेहरू और आजाद उनसे मिलने वाले थे। पाच बजे गाधीजी ने घडी निकाली और सरदार से बोले—'प्रार्थना का समय हो गया।' वह पाच बजकर दस मिनट पर अपने कमरे से निकले और टहलते हुए पास के मैदान की प्रार्थना सभा की ओर गए। उनकी पोतियां मनु और आभा उनके बगल मे थी। वह उन दोनो का सहारा लेकर चल रहे थे। दोनो तरफ खडे लोगो के बीच होते हुए वह प्रार्थना सभा की ओर जा रहे थे। अब वह पोतियों के कधे पर से हाथ हटाकर लोगो के नमस्कार का उत्तर दे रहे थे। एकाएक भीड मे एक हिन्दू नाथूराम गोडसे भीड को कुहनी मारकर चीरता हुआ आया। मनु ने समझा कि वह गाधीजी के चरण छूना चाहता है, इसलिए उसने उसको रोका, और पीछे करना चाहा। पर गोडसे ने मनु का हाथ झटककर छुडा लिया फिर हाथ जोडकर, मानो चरण स्पश के लिए आतुर हो, एक के बाद एक सात गोलियों वाली पिस्तौल से तीन गोलियां चलाई। सभी गोलियां गाधीजी के दाहिने सीने पर लगी। दो गोलियां शरीर छेदकर निकल गईं, तीसरी फेफडे मे घुस गई। पहली गोली लगते ही उनके चलते हुए पैर रुक गए। नमस्कार मे उठे हाथ धीरे धीरे शिथिल होकर नीचे आ गए। अब भी वह पैरो पर खडे थे, परन्तु इसके बाद जब दूसरी और तीसरी गोली दनदनाई, तो वह गिर पडे। उनके मुह से निकला 'हे राम'। चेहरा फक पड गया। श्वेत वस्त्र पर लाल धब्बे आ गए। लोगो ने उन्हें उठाया और भीतर ले जाकर उस गद्दे पर रख दिया

जहां बैठकर वह काम करते थे। फौरन उनकी मृत्यु हो गई।"

हत्यारों का वक्तव्य – 8 नवम्बर 1948 को न्यायमूर्ति आत्माचरण ने लाल किले के अन्दर बंद नाथूराम विनायक गोडसे से नियमानुसार कहा—"तुम सारी गवाही सुन चुके हो तुम्हें कुछ कहना है ?"

इस पर गोडसे ने एक लिखित बयान पढना चाहा। इस्तगास की आपत्ति पर भी गोडसे को बयान पढने की अनुमति मिल गई। गोडसे उत्तेजित नहीं था, यद्यपि इस बीच इस हत्या की सारे संसार मे बहुत निन्दा हो चुकी थी। उसने कहा कि यद्यपि सारे लोगो ने मेरी निन्दा की है, पर मुझे निश्चय है कि इतिहास दूध का दूध और पानी का पानी कर देगा।

पुणे के पत्र 'हिन्दू राष्ट्र' के सम्पादक नाथूराम विनायक गोडसे के अतिरिक्त सात और व्यक्ति इस घृणित षडयन्त्र मे शरीक थे – नारायण आप्टे विष्णु करकरे, शंकर किस्तैया, दिगम्बर बडगे, मदनलाल पहवा, गोपाल गोडसे और दत्तात्रेय परचुरे।

बहुत साल बाद — मई 1983 के 'सोसायटी' पत्र के एक खोजी लेखक मधु वेल्लुरी के अनुसार उस समय तक गांधी हत्या मुकदमे के मदनलाल पहवा, गोपाल गोडसे और दत्तात्रेय परचुरे जीवित थे। मदनलाल का कहना था कि उसके पिता काश्मीरी लाल कांग्रेसी थे, फिर भी वह विभाजन के दंगों के दौरान बहुत मारे पीटे गए थे और अस्पताल मे पडे थे। पिता को उस रूप मे देखकर ही वह मुसलमानो पर हमला करने लगा। उसने कहा कि ग्वालियर मे इस प्रकार के कामो के लिए अच्छा मौका था। उसका तो यहां तक कहना था कि बडे बडे नेता उसकी सहायता कर रहे थे।

सुहरावर्दी को भी मारना था —मदनलाल के अनुसार जब महात्मा जी द्वारा अनशन करके पाकिस्तान को पचपन करोड दिलाने की खबर आई तब उनकी हत्या का कार्यक्रम जोर पकडने लगा। नाथूराम गोडसे, उसका भाई गोपाल गोडसे करकरे किस्तैया योजना बनाने लगे। उसने पत्रकार मधु से कहा "हम सुहरावर्दी और गांधी को मारना चाहते थे नेहरू को नहीं। यह तो सरकारी प्रचार था कि हम नेहरू को मारना चाहते हैं। तीन दिन तक दिल्ली के मेरिना होटल मे जलपान चलती रही। मदनलाल को (जो उस समय 20 वर्ष का युवक था) मराठी ब्राह्मण इस योग्य नहीं समझते थे कि उस पर पूरा विश्वास किया जाए। उससे कहा गया कि तुम्हारा काम यह होगा कि बम फेंको, जिसके धडाके से भगदड मच जाए। लोगों का ध्यान जब धडाके की तरफ जाएगा, तब हम गांधी पर हमला करेंगे।

हत्या का पहला कार्यक्रम पहले कार्यक्रम मे नाथूराम और आप्टे केवल परिदर्शक होते। गोपाल पहले बम फेंकता और फिर करकरे भीड मे एक और बम फेंकता। उस यातना मे बडगे महात्मा गांधी पर गोली चलानेवाला था। 20 जनवरी 1948 को यह सब होना था। धडाका तो हुआ, पर अन्य लोग अपना निश्चित कार्य न कर सके। मदनलाल पकड लिया गया। उसके अनुसार पुलिस ने उसके मलद्वार मे मिर्च डाली, उसे बर्फ की सिल्ली पर लगाया, ऊपर से सिर पर चीनी का रस डाला ताकि चींटियां रेंगें। उसे कम्बल उढाकर रेल वे स्टेशन तथा सार्वजनिक स्थलो पर घुमाया गया। मदनलाल ने गर्व के साथ कहा 'मैंने स्टेशन पर गोडसे और करकरे को बम्बई की गाडी मे चढते देखा, पर उन्हें पहचाना नहीं।'

हत्या से खुशी —दस दिन बाद जब महात्मा जी की हत्या की खबर मदनलाल को मिली तो उसका कहना था उसे खुशी हुई थी। वह 16 साल जेल मे रहकर 1964 को 14 अक्टूबर को छूट चुका था। पत्रकार मधु मदनलाल के साथ एटेनबरो की फिल्म

गाधी देखने गया था। फिल्म देखते हुए मदनलाल ने एक दीवार देखकर उत्तेजित स्वर में कहा—"मैंने वहा बम रखा था।" फिल्म के गोडसे को देखकर उसने कहा—"यह गोडसे नही लगता। गोडसे ने तो खाकी कमीज पहन रखी थी।" मदनलाल को यह भी शिकायत थी कि फिल्म मे गाधी की गलतिया जैसे खिलाफत की पैरवी (जब कमाल अतातुर्क ने खलीफा की परम्परा को एक झटके मे खतम कर दिया) इर्विन के साथ समझौता (जिसमे वह 'उल्लू' बने) नही दिखाई। इसके अलावा प्रार्थना सभा मे बहुत कम लोग दिखाए गए जबकि वास्तविक प्रार्थना सभा मे हजारो लोग थे।

पत्रकार मधु गोपाल गोडसे से मिले। गोपाल द्वितीय महायुद्ध मे भाग ले चुका था। लौटकर वह पुणे के किरकी आडनेन्स कारखाने के बाहर काम मे लग गया। प्रथम हत्या प्रयास मे वह घटनास्थल पर था। पत्रकार मधु को लगा कि गोपाल मे अब भी पुराना पागलपन मौजूद है। वह बोला—'मैं मानता हू गाधी महापुरुष थे। उन्होने कई काम सिद्ध किए। पर वह इन सिद्धियो के कारण नही, बल्कि जनता को धोखा देने के लिए मारे गए। उन्होने उपवास की जबदस्ती से पाकिस्तान को 55 करोड दिलाए। जिस समय देश का विभाजन हुआ, उस समय उन्होने अनशन क्या नही किया ? क्या उन्होंने यह नही कहा था कि मेरी लाश पर ही पाकिस्तान बन सकता है ?"

गोपाल ने कहा कि सब देशो ने गाधी की भस्म अपनी नदी मे फेंके जाने की अनुमति दी, पर मुस्लिम होमलैंड पाकिस्तान ने भारतीय राजदूत श्री प्रकाश को सिधु नदी मे भस्म नही डालने दी, जबकि महात्मा जी पाकिस्तान के लिए ही मरे। गोपाल के अनुसार 'हे राम' भी काग्रेसियो की जालसाजी है।

गोपाल के अनुसार नाथूराम ने अपनी राख सिन्धु नदी मे ही क्यो डलवानी चाही, —क्योकि वही एक नदी है जो पवित्र बची है।" यह नाथूराम ने फासी के दिन कहा था।

एक से अधिक अर्थों मे ऐतिहासिक – महात्मा गाधी की हत्या एक से अधिक अर्थों में ऐतिहासिक है। गणेशशकर विद्यार्थी मुस्लिम धर्मान्धो के हाथो मारे गए थे जबकि महात्मा एक हिंदू के हाथो मारे गए। यह भी एक सयोग है कि वर्मा के महान नेता आग सान भी इसी प्रकार मारे गए थे। जिन्ना पाकिस्तान बनते समय कैंसर के शिकार थे। भारत के नेताओ को इस रोग की बात मालूम नही थी, पर ब्रिटिश गुप्तचर विभाग को मालूम थी। मृत्यु जल्दी हो गई और उसमे पाकिस्तान के राजनीतिज्ञो का हाथ बताया जाता है। लिआकत अली खा की भी हत्या ही हुई। फिर जिसने हत्या की थी, उसकी भी हत्या कर दी गई। इस प्रकार यह हत्या रहस्य ही रह गई। और इस हत्या के बाद से पाकिस्तान मे सैनिक शासन हो गया।

गांधी युग — महात्मा जी ने काग्रेस को आमूलचूल परिवर्तित कर उसे एक सग्रामी सस्था बना दिया था। यह सही है कि काग्रेस के अन्दर कई बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि गांधीजी को उससे अलग हो जाना पडा, परन्तु मनाकर उनको लौटाया भी जाता रहा क्योकि काग्रेस मे अगर किसी के पास जनता के मन की चाभी थी तो वह उन्ही के पास थी। गाधीजी के विरुद्ध पहला विद्रोह तब हुआ, जब असहयोग आन्दोलन अचानक बन्द कर दिए जाने के बाद चितरजन दास और मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व मे स्वराज्य पार्टी का उदय हुआ। काग्रेसी नेताओ की यह दूरदर्शिता रही कि स्वराज्य दल काग्रेस का एक विभाग बना दिया गया। इसके बाद सुभाष का विद्रोह हुआ, उसका अन्त [illegible] मे काग्रेस से निकलने मे हुआ। द्वितीय महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार से [illegible] प्रश्न पर काग्रेस और महात्मा जी में मतभेद हुए, जिससे महात्मा जी कुछ अ

पर इसका भी अन्त 1944 मे 'करो या मरो' का नारा देकर संग्राम छिड़ते ही हो गया, इसलिए यह कहना सर्वथा उचित है कि कांग्रेस का यह सारा युग गांधी युग था। अवश्य ही इस दौरान कांग्रेस के अन्दर कांग्रेस समाजवादी जैसे दल का उदय और बाहर क्रांतिकारी विस्फोट होते रहे जिनके मील के पत्थर हैं, काकोरी, लाहौर, मेरठ षडयन्त्र और आजाद हिन्द फौज।

देश मे कांग्रेस का बोलबाला—स्वराज्य के बाद देश मे कांग्रेस का रूप बदल गया। वह अब आन्दोलनकारियो का संयुक्त मोर्चा न रहकर शासनारूढ दल हो गया। महात्मा गांधी यद्यपि स्वयं साल भर मे उठ गए, परन्तु इसका कांग्रेस संस्था पर विशेष असर नही पडा। 1947 से प्राय आज पर्यन्त देश मे कांग्रेस का ही शासन चला आ रहा है। बीच मे दो-तीन वर्ष के लिए कांग्रेस गद्दी से अलग रही, पर उस दौरान भी जनता पार्टी के जो लोग शासनारूढ रहे, उनमे से कुछ को छोड़कर शेष सभी जैसे मोरारजी देसाई चरणसिंह आदि सब कांग्रेसी ही थे। यहा भी यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इनमे करीब-करीब सभी कांग्रेस से अलग होने पर भी गांधीजी के ही शिष्य होने का दावा करते रहे। भारतीय जनता पार्टी जैसे दक्षिणपंथियो ने भी गांधीवादी कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। देखा जाए तो जो लोग स्वराज्य के बाद ही कांग्रेस विरोधी दल बनाकर सामने आए, वे सब भी भूतपूर्व कांग्रेसी ही थे। कम्युनिस्ट नेता नम्बुदरीपाद भी भूतपूर्व कांग्रेसी थे।

सच कहा जाए तो गांधीवाद अब तक जीवित है और बहुत से लोग यह भी मानते हैं कि सच्चे मानो मे गांधी की आवश्यकता आज ही है। अनेक देशो में उनके सिद्धांतो तथा कार्यक्रमो को अपनाकर राजनीतिक लडाइया लडने का प्रयास किया गया है, जो बहुत कुछ सफल भी रहा है। फिर भी यह मानना होगा कि स्वयं गांधीजी के न रहने से मानो कांग्रेस की आत्मा ही नष्ट हो गई और उन्ही के अनुयायियो द्वारा बहुत सी गलतिया भी की जाने लगी। कहा जा सकता है कि गांधीजी जीवित होते तो उन्हे माफ नही करते। इस सम्बन्ध मे अग्रणी पत्रकार दुर्गादास ने तभी लिखा था '30 जनवरी 1948 को गांधी युग का अन्त हो गया और एक ऐसी शून्यता पैदा हो गई, जो कभी नही भरने की। गांधी वह चुम्बक थे, वह आत्मिक शक्ति थे, जिस पर कांग्रेस स्थिर थी और जनता पर उसका दबदबा कायम था।"

निरे कांग्रेसी बनाम पदधारी कांग्रेसी—स्वराज्य के बाद कांग्रेस या कांग्रेसी शासनारूढ हुए और इसका परिणाम यह हुआ कि पदधारी और पदहीन कांग्रेसियो के दो भेद हो गए। पदहीनो मे कुछ कांग्रेस से अलग हो गए और उन्होने अपनी संस्थाए बना ली। जो कांग्रेस मे रहकर भी पद न पा सके उनका महत्त्व उन कांग्रेसियो के मुकाबले मे घट गया जो राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, मन्त्री, सासद विधायक या किसी निगम आदि के अध्यक्ष बने। यह स्वाभाविक होते हुए भी ठीक नही था क्योकि इसके अन्य अनेक दुष्परिणाम हुए। वैसे यह शुरुआत पहले ही हो गई थी जब स्वराज्य के पहले कांग्रेसाध्यक्ष कृपलानी ने इस कारण अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया था कि सरकार मे बैठे कांग्रेसी नेता उन्हे महत्त्वपूर्ण मशविरो मे भी नही बुलाते थे। इसके बाद पुरुषोत्तम दास टंडन को भी कांग्रेसाध्यक्ष के पद से इस्तीफा देना पडा क्योकि कृपलानी के अनुसार नेहरू के साथ उनकी नही बनी। ये दोनो इस्तीफे विचारधारागत नही थे जैसा कि सुभाष का इस्तीफा था।

जब कही संग्रामकारी दल सत्तारूढ हो जाता है, तो प्राय ऐसा ही होता है। तुलसीदास जी ने कहा है 'प्रभुता पाय काहि मद नाही'। परन्तु यह अटल नियम भी नही

है कि सत्ता प्राप्त होते ही पतन हो ही जाए। आधुनिक काल म हम देखते है—लेनिन या हो ची मिन्ह का सत्तारूढ होने पर किसी अर्थ मे भी पतन नही हुआ। स्वय महात्मा गाधी गद्दी पर नही बठे, और यदि वे जीवित रहते तो भी नही बठते। वास्तव मे वे जब तक रहे सत्तारूढ नेहरू और पटेल पर महाशक्ति और अकुश के रूप मे रहे। उनकी हत्या इस कारण हुई कि वह अपनी धर्मनिरपेक्षता को इस हद तक ले गए कि लोग उन्हे गलत समझने लगे।

दुखती रग—यहा हम देश की एक दुखती रग पर पहुच जाते है। काग्रेस शुरू से ही, यहा तक कि जब उसमे जी हुजूर और खरखवाह किस्म के लोगो का बोलबाला था, अल्पसख्यको को बहुत महत्त्व देती थी। गाधी से पहले बदरुद्दीन तैयबजी 1887 मे, रहमद रहीमतुल्ला सयानी 1886 मे, नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर 1913 मे और हसन इमाम 1918 म काग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके थे। दादाभाई नौरोजी न 1906 म तथा ऐनी बेसेन्ट ने 1917 मे इस आसन की शोभा बढाई थी। जब गाधी युग आया तब काग्रेस की गद्दी पर हकीम अजमल खा 1921 मे, मुहम्मद अली 1923 म, एम० ए० असारी 1927 मे बैठ चुके थे। आजाद 1940 से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक फिर बराबर अध्यक्ष रहे। यह चुनौती बार-बार दी जाती रही, कि आखिरी दशक को छोडकर काग्रेस के अन्दर लीग से अधिक मुस्लिम सदस्य रहे। (यद्यपि लीग ने कभी अपने सदस्यो की सख्या नही बताई)। 1937 के प्रातीय शासन के युग मे लीग सिकन्दर हयात और फजलुल हक के प्रातीय दलो के सामने नही ठहर पाई और अपनी दाल गलती न देखकर जिन्ना इगलैंड मे बसने चले गए परतु फिर भी लीग को महत्त्व दिया जाता रहा।

13

सत्तारूढ़ कांग्रेस का नेहरू युग

स्वतन्त्र भारत की पहली सरकार के नेता श्री नेहरू थे। छह महीने के भीतर ही महात्मा गांधी नहीं रहे, और सरदार पटेल भी लगभग तीन वर्ष तक ही उनका साथ दे सके। इसलिए स्वतन्त्र देश के नवनिर्माण का प्रायः पूरा ही दायित्व नेहरू जी पर आ पड़ा। यह बहुत कठिन समय था परन्तु उन्होंने बड़े परिश्रम तथा योग्यता से राष्ट्र के भावी विकास के लिए आवश्यक सभी बातों की आधारशिलाएं रख दीं। उनके मार्ग दर्शन में संविधान बना, योजना आयोग ने कार्य आरंभ किया, महत्त्वपूर्ण उद्योग खड़े किए गए, विविध क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लिए संस्थाएं स्थापित की गई, समाजवादी ढांचे को विकास का लक्ष्य स्वीकृत किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उन्होंने गुट निरपेक्ष आन्दोलन की जबरदस्त शुरुआत की। सत्रह वर्ष तक वे इन सब कार्यों का संचालन करते रहे।

संविधान सभा— भारत के लिए एक न्यायपूर्ण संविधान बनाने की मांग या लक्ष्य बहुत पुराना कहा जा सकता है। क्रान्तिकारियों ने इस विषय पर जो चिन्तन किया, वह 1923 में रचित हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ के संविधान में प्रतिफलित था। इसमें बताया गया था कि 'फेडरेटेड रिपब्लिक आफ दि युनाइटेड स्टेट्स आफ इण्डिया' यानी भारत के संयुक्त राष्ट्रों का प्रजातान्त्रिक संघ स्थापित करना हमारा लक्ष्य है। सरदार भगतसिंह ने इसमें 'समाजवादी' शब्द जोड़कर इसे पूर्णता तक पहुंचा दिया था।

कांग्रेस के अन्दर भी संविधान सभा की मांग बहुत प्रबल थी। 1934 की कांग्रेस कार्यसमिति के एक प्रस्ताव में यह कहा गया 'सरकारी श्वेतपत्र का एकमात्र सन्तोषजनक विकल्प यह है कि बालिग सार्वजनिक मताधिकार या जहां तक हो सके, उसके आस पास के ढंग से चुनी हुई संविधान सभा होनी चाहिए। यह हो सकता है कि महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक केवल अपने लोगों के मत से अपने प्रतिनिधि चुनें।' इसके बाद 1937 में फैजपुर कांग्रेस, 1938 में हरिपुरा कांग्रेस, और 1939 में त्रिपुरी कांग्रेस में यह मांग दुहराई जाती रही। 1945 के शिमला सम्मेलन में भी कांग्रेस ने यही मांग की थी।

धर्मनिरपेक्ष परम्परा को कायम रखते हुए स्वतन्त्र भारत में डॉ० जाकिर हुसैन, फखरुद्दीन अली अहमद भारत के राष्ट्रपति बने और हिदायतुल्ला पहले न्यायाधीश तथा फिर उपराष्ट्रपति रहे। यह पुस्तक लिखते समय ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्रपति हैं। संविधान सभा ने 9 दिसम्बर 1946 को अपना कार्य शुरू किया था। मुस्लिम लीग ने इसका बायकाट यह कहकर किया कि लीग तो अलग राष्ट्र चाहती है। कई सालों तक संविधान सभा संसद के रूप में रही यानी उस दृष्टि से भारत की यह पहली संसद भी रही। इसीने 14 अगस्त की मध्यरात्रि में ब्रिटिश सरकार से शक्ति ग्रहण की। 26 जनवरी 1950 को जो संविधान लागू हुआ, उसके बनने में करीब दो साल लगे। 1949 की 26 नवम्बर

तो सविधान का प्रारूप तैयार होकर पारित हो चुका था। 1952 मे नए सविधान के अनुसार चुनाव हुए।

सविधान मे सब धर्मों की समानता—1950 को जो सविधान लागू हुआ, उसमे सब धर्मों के मानने वाला को समान अधिकार दिए गए। पाकिस्तान के साथ तुलना करने पर पता चलेगा कि वहा एक तो अधिकाश समय सैनिक शासन रहा, दूसरे भुट्टो के जमाने म (1971 1977) जब एक सविधान कुछ हद तक चला, उसमे भी गैर-मुसलमानो क लिए राष्ट्रपति आदि बनने का कोई अधिकार नही था। हिदुओ, ईसाइयो या पारसियो का तो यह अधिकार दिया ही नही गया, अहमदियो को भी 1974 मे एक कानून के द्वारा मुसलमान मानने से इनकार कर दिया गया। अहमदिया कुरान और हजरत मुहम्मद म आस्था रखते है, परतु वह यह नही मानते कि हजरत अतिम पैगम्बर हैं। वे मिर्जा गुलाम अहमद को मानते हैं और उन्हे 'खलीफतुल मसीह' कहते हैं। पाकिस्तान म अहमदियो के विरुद्ध आदोलन आरम्भ से ही चल रहा है। 1953 मे अहमदिया क विरुद्ध दगे हुए और ख्वाजा नाजिमुद्दीन को सैनिक कानून लागू करके दगा रोकना पडा था। तब से बराबर अहमदिया का दमन जारी है। बहुत से अहमदिया पाकिस्तान से भागकर शरणार्थी हो गए। वहा न्यायमूर्ति मुनीर की अध्यक्षता मे इस विषय की मीमासा के लिए एक आयोग बैठाया गया। उन्होने उपसहार म कहा कि अजीब बात यह है कि कुछ मुल्लाओ के अनुसार जो असली मुसलमान हैं, वही दूसरे मुल्लाओ क अनुसार काफिर हैं।

भारतीय सविधान मे स्त्रिया—भारतीय सविधान मे स्त्रियो को भी हर क्षेत्र मे पुरुषो क समान अधिकार दिया गया। यहा ध्यान देने की बात यह है कि कई यूरोपीय देशो म भी स्त्रियो का मतदान का अधिकार भारत के बाद मिला। पाकिस्तान मे न तो लोकतन्त्र है, न स्त्रियो को विवाह, तलाक, पर्दा, गवाही के मामले म कोई अधिकार प्राप्त है।

योजना आयोग—पराधीन भारत म ही कांग्रेस के नेताओ का ध्यान योजना बनाकर उन्नति करने की ओर गया था। कांग्रेस ने 1938 मे नेहरूजी की अध्यक्षता मे (उस समय सुभाष कांग्रेस के अध्यक्ष थे) एक योजना समिति बनाई थी। उसकी काफी मोटी रिपोर्ट निकली थी जो कई जिल्दो मे छपी। दुर्भाग्य यह रहा कि प्रतिवेदन तैयार हो गए पर इसी बीच नेता जेल पहुच गए। नेहरूजी ने 1 मई 1940 मे कहा था "स्वतत्र और लोकतात्रिक राष्ट्र हमारा लक्ष्य है—ऐसा राष्ट्र जिसम राजनैतिक, आर्थिक स्वतन्त्रता होगी। योजना का क्षेत्र उत्पादन वितरण, उपभोग, विनियोग, व्यापार, आय, सामाजिक सेवाओ तथा उन अन्य राष्ट्रीय क्रियाकलापो तक विस्तृत होगा जो परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। योजना का उद्देश्य सारी जनता के भौतिक और सास्कृतिक मानदण्डो का उन्नयन है।"

स्वराज्य क बाद सरकार ने ज्यो ही विभाजन की दुखद मारकाट से छुट्टी पाई, योजना का क्रम चालू हो गया। 1948 मे सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा करते हुए कहा गया कि युद्धोद्योग, अणु ऊर्जा, रेल, कोयला, लोहा इस्पात, हवाई जहाज उद्योग तथा खनिज क्षेत्रो म सरकार का लगभग एकाधिकार रहेगा।

अप्रैल 1950 मे कांग्रेसाध्यक्ष की पुकार पर प्रदेश कांग्रेस कमेटियो तथा मुख्य मन्त्रियो का जो सम्मेलन हुआ, वह योजना सम्मेलन कहलाया और यह अधिवेशन गोविन्द वल्लभ पत की अध्यक्षता मे हुआ। यही से भारतीय योजना आयोग की नीव पडी। 1951 52 के प्रथम आम चुनाव के घोषणा पत्र मे कांग्रेस ने अपनी योजनात्मक आर्थिक

नीति का पुनरुल्लेख किया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि निजी उद्योग रहेंगे परन्तु उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र के साथ तालमेल रखकर चलना पड़ेगा।

शीघ्र ही पहली पंचवर्षीय योजना (1951 55) देश के सामने आई, परन्तु वह बाद की योजनाओं की तुलना में बहुत छोटी थी। योजना की एक तिहाई रकम खेती में इस कारण लगाई गई कि विदेशों से खाद्य का आयात रोका जाए। परिवहन और संचार में 23 प्रतिशत व्यय किया गया। पहली योजना काल में राष्ट्रीय आय 18 प्रतिशत बढ़ी। यह और बढ़ती यदि इसी बीच आबादी 6 प्रतिशत न बढ़ जाती। आबादी की वृद्धि को रोकने के लिए दूसरी योजना में जोरों के साथ परिवार नियोजन की व्यवस्था की गई, जो बाद की योजनाओं में बढ़ती गई। आबादी में वृद्धि हमारी उन्नति में सबसे अधिक बाधक है।

देशी राज्यों वाला बखेड़ा—यहां हम यह बता दें कि 1947 में जब भारत को स्वाधीनता मिली तो दो टुकड़ों में बांटने के अतिरिक्त विदेशी शासक हमारे लिए दो समस्याएं और छोड़ गए थे। भारत में लगभग चौथाई इलाके ऐसे थे जिनमें देशी राजाओं का शासन था। इन राजाओं के साथ अंग्रेजों के सन्धिपत्र थे, जिनकी विशेष शर्तों के अनुसार वे अंग्रेजी शासन के अधीन थे। ये देशी राज्य आकार और जनसंख्या की दृष्टि से एक गांव से लेकर पूरे प्रान्त जैसे हैदराबाद त्रिवांकुर आदि तक थे। यदि अंग्रेज चाहते, तो कह सकते थे कि भारत सरकार हमारी उत्तराधिकारी होने के नाते सर्वोपरि है परन्तु उन्होंने ऐसे वक्तव्य दिए जिनके अस्पष्ट वातावरण में राजाओं और नवाबों को यह गलतफहमी हो गई कि वे चाहें तो स्वतन्त्र रहें और चाहें तो भारत या पाकिस्तान किसी में भी शामिल हो जाएं।

हम बता चुके हैं कि कश्मीर का हिन्दू राजा इसी धारणा के कारण स्वतन्त्र राजा बनने का स्वप्न देख रहा था कि पाकिस्तान ने उस पर हमला कर दिया। तब उसने भारत की मदद मांगी। भारत ने यह गुहार सुनी, पर इस शर्त पर कि वहां जनता का यानी जनता की प्रतिनिधि नेशनल कान्फ्रेंस और उनके नेता शेख अब्दुल्ला का शासन हो। राजा को यह मानना पड़ा और अन्त तक गद्दी भी छोड़नी पड़ी। स्मरण रखने की बात है कि भारत ने मुस्लिम प्रजा का पक्ष लिया न कि हिन्दू राजा का।

प्रजामण्डल—अन्य देशी राज्यों का विलय तरह तरह के पेंचों के अधीन हुआ। सबसे बड़ा पेंच था प्रजामण्डलों का। कांग्रेस ने देशी राज्यों के आन्दोलन को अपने से अलग रखा था परन्तु उनमें सर्वत्र प्रजा आन्दोलन प्रबल था। कई जगह प्रजामण्डल इतने शक्तिशाली थे कि वे चाहते तो बिना बाहरी मदद के अपने राजा या नवाब को आसमान दिखा सकते थे। अंग्रेजों के जमाने में राजा या नवाब की सहायता के लिए ब्रिटिश भारत से फौज आ सकती थी, परन्तु अब स्वराज्य के बाद स्थिति बदल गई थी। कांग्रेस के नेता सरदार पटेल इस बात को समझते थे। जब उड़ीसा के राजा विलय के विपक्ष में कुछ बोले हरे कृष्ण महताब और सरदार पटेल ने झट कह दिया—"यदि आप हमारे प्रस्ताव को नहीं मानते तो हम आपके राज्य में कानून और व्यवस्था की कोई जिम्मेदारी नहीं लेते आप जानें और आपका काम जाने।" नतीजा यह हुआ कि राजा साहब जल्दी राह पर आ गए।

देशी राज्यों के प्रजामण्डल कांग्रेस से अलग होते हुए भी एक हद तक उससे अभिन्न भी थे। जवाहरलाल नेहरू ने 15 फरवरी 1939 को 'अखिल भारतीय प्रजा मण्डल सम्मेलन' के लुधियाना अधिवेशन में कहा था "कुछ लोगों ने देशी राज्यों में चलने वाले आंदोलन के प्रति कांग्रेस के रुख की समय-समय पर आलोचना की है और हस्तक्षेप

और हस्तक्षेप क विषय म गर्मागर्मी हुई है। इस सम्ब ध म आलोचना और तर्क वितर्क भूतकाल की बात बनकर अब निरथक हो चुके हैं। फिर भी सक्षेप म देशी राज्यो क प्रति काग्रस की नीति क विकास पर दष्टिपात वाछनीय है। इस नीति की सारी अभिव्यक्तियो तथा समस्या के कुछ पहलुओ पर ही ज़ोर देना मैंने पस द नही किया। पर तु मैं निश्चित हू कि मौलिक नीति परिस्थितियो को देखते हुए सही रही और बाद को होने वाली घटनाओ स उसका अनुमोदन हुआ है। क्राति या आमूलचूल परिवतन के लक्ष्य के लिए जो कायपद्धति अपनाई जाए, उसे वास्तविकता तथा उस समय की परिस्थिति म सम्पक रखकर चलना पड़ेगा। डीगमूलक, जबानी जमाखर्च या लनतरानी प्रधान सारगभहीन प्रस्ताव, जिनका उस समय की परिस्थिति से कोई सामजस्य नही है, क्रातिकारी परिवतन उत्पन्न नही कर सकते। न इसके लिए कृत्रिम रूप से स्थितिया पदा की जा सकती हैं और न जन आदोलन ही चालू किए जा सकते है जब तक कि जनता तैयार न हो। काग्रेस इस तथ्य से परिचित है और जानती है कि देशी राज्यो की जनता अभी तयार नहीं है। यह देशी राज्यो के बाहर सग्रामो मे अपनी शक्ति लगाती रही, यह समझकर कि इसी उपाय स देशी राज्यो की जनता को अपने लिए सघष करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।"

काग्रेस की नीति का मथन करते हुए और स्पष्टता के साथ नेहरू ने कहा "देशी राज्यो म चलने वाले आदोलन के सम्बध मे काग्रेस की नीति के विकास मे हरिपुरा का प्रस्ताव एक मील का पत्थर रहा और उसम हमारी कायपद्धति का खुलासा पेश किया गया। जिस स्वतत्रता के लिए हम लड रहे थे, भारत की एकता और अखडता उसका अपरिहाय अग रही और हम यह चाहते रहे कि बाकी भारत को जिस हद तक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आज़ादी मिले, देशी राज्यो की जनता को भी उस हद तक आज़ादी प्राप्त हो। इस मामले मे कोई समझौता सभव नही है।

दुर्गादास का कहना है कि काग्रेस देशी राज्यो को अभी छेडना नहीं चाहती थी। इन राज्यो मे अलवर और भरतपुर थे। महात्माजी की हत्या की जाच करते हुए यह पता लगा कि हत्या वाली पिस्तौल अलवर के महाराजा के शस्त्रागार से आई थी और अलवर म ही गोलिया चलाने का अभ्यास किया गया था। उस समय एन० बी० खरे अलवर के मुख्य मत्री थे। महात्माजी ने उन्हे मध्यप्रदेश के मुख्य मत्रित्व मे निकाला था, इसलिए खरे महात्माजी से चिढे हुए थे। इन्ही दिनो अलवर के विशेष प्रशासक ने एक रिपोर्ट यह भेजी कि अलवर और भरतपुर भारत सरकार का तख्ता उलटने का षडयत्र कर रहे हैं। जो बात सबसे ज्यादा उनके खिलाफ गई और जिससे नेहरू बहुत क्रोधित हुए, वह यह थी कि ये राजा अपनी मेव मुस्लिम प्रजा को राज्यो मे भगा रहे थे। नेहरू के कारण माउटबटन को झुकना पडा। राजाओ ने फिर भी षडयत्र करना चाहा, परन्तु सरकार को सब खबर मिलती रही और उनकी एक नही चली।

राजप्रमुख—भारत सरकार की ओर से कुछ मुख्य देशी राजाओ को राजप्रमुख का पद दिया गया, जिससे उन्हे ऐसा लगा कि उनकी आकाक्षा पूरी हुई और व भारत म शामिल हो गए।

हैदराबाद—हैदराबाद का किस्सा कश्मीर की तरह था। कश्मीर म प्रजा मुख्यत मुसलमान थी और राजा हिन्दू था, यहा निजाम मुसलमान था और प्रजा हिन्दू। माउटबटन 29 जून 1948 को भारत से चले गए और सी० राजगोपालाचारी प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल बने। निजाम से कहा गया था कि तुम सीधे म दूसरे राजा नवाबों की तरह भारत मे अन्तर्भुक्त हो जाओ, परन्तु वह पाकिस्तानी मनोवृत्ति के

सलाहकारो से घिरा हुआ था।

सरदार पटेल ने अपने खास आदमी के० एम० मुशी को भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप मे हैदराबाद भेजा। मुशी ने रिपोर्ट दी कि प्रजा तयार है, उसे हथियार मिल जाए तो अभी निजाम औंधे मुह गिरा दिखाई देगा। पर सरदार ने सलाह नही मानी। उनका कहना था कि यदि जबदस्ती ही करनी है तो सरकार करगी।

पुलिस एक्शन—कुछ दिनो बाद भारत सरकार को यह खबर मिली कि निजाम पुतगाली सरकार से गोवा खरीदने की बातचीत चला रहा है ताकि समुद्र का रास्ता खुल जाए, जिससे पाकिस्तान के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित हो सके। यह भी पता लगा कि निजाम ने पाकिस्तान को 20 करोड रुपये उधार दिए हैं ताकि जिन्ना उसका साथ दे। इस पर नेहरू और पटेल ने सिकन्दराबाद छावनी मे फौज भेज दी। फौज के हैदराबाद म घुसने पर 'पुलिस एक्शन' सम्पूण हो गया। इससे पहले दो बार 'पुलिस एक्शन' स्थगित किया गया था। तीसरी बार भी निजाम के अनुरोध पर गवनर जनरल नेहरू से कहकर उसे रुकवा रहे थे कि उन्हे बताया गया कि काम तो हो चुका। नेहरू ने 10 सितम्बर को इसकी घोषणा की 17 सितम्बर को निजाम ने आत्मसमपण कर दिया। इस बीच पाकिस्तान ने हैदराबाद 'आक्रमण' पर सयुक्त राष्ट्र म शिकायत उठाई। सोवियत सघ, युक्रेन और चीन निष्पक्ष रहे। 19 सितम्बर को नेहरू ने घोषणा की कि हैदराबाद राज्य के भविष्य का निणय वहा की जनता की इच्छा के अनुसार होगा। जिन्ना को कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ सबमे हार खानी पडी। यह स्पष्ट है कि जिन्ना किसी सिद्धान्त का पाबन्द नही था। वह हिन्दूप्रधान इलाको को भी हडपना चाह रहा था।

आवडी काग्रेस 1955

पहली योजना काल म 1955 की जनवरी को काग्रेस का आवडी अधिवेशन हुआ, जो इस दष्टि से महत्वपूण है कि उसमे पहले पहल समाजवादी ढाचे को लक्ष्य के रूप मे स्वीकृति दी गई। इस समय तक भारत के फ्रास शासित इलाके भी भारत मे आ चुके थे। अध्यक्ष ढेबर न इसका उल्लख करते हुए बताया कि फ्रास तो मान गया है परतु पुतगाली अभी तक अड हैं। ढेबर ने कहा 'पुतगाली शासन म पिसते और सग्राम करते अपने भाइयो और बहनो को हम पूण नैतिक समथन भेजते हैं। हम पुतगाली सस्कृति के विरोधी नही, परतु भारत की स्वाधीनता का अथ है भारत के चप्पे चप्पे जमीन की स्वाधीनता।

ढेबर के भाषण मे स्त्रियो की उन्नति पर विशेष रूप से बल दिया गया। कहा गया कि स्त्रियो की द्रुत उन्नति के बिना देश की आधी शक्ति अपाहिज रहेगी।

समाजवादी ढाचा और समाजवाद—इस अधिवेशन मे समाजवादी ढाचे को काग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। श्री नेहरू 1929 की कागेस मे ही अपने को समाजवादी और प्रजातन्त्रवादी घोषित कर चुके थे। 'समाजवादी ढाचा और 'समाजवाद' एक है या भिन्न, इस विषय पर नेहरू ने अप्रैल 1956 मे कहा कुछ लोग समाजवादी ढाचा और समाजवाद मे बारीक फक बताते हैं, पर दोनो एक हैं।'

असल म देखा जाए तो लाहौर काग्रेस से ही काग्रेस के अ दर समाजवादी विचार धुधुआते रहे थे, खुलकर भभक उठने का मौका अब आजादी मिलने के बाद आवडी मे आया।

नेहरू न समाजवादी ढाचे वाले प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए कहा 'स्वतन्त्रता

संग्राम के किसी भी सोपान मे हमारी दृष्टि राजनैतिक स्वतन्त्रता तक सीमित नही रही, बराबर स्वतन्त्रता की अ तगत वस्तु मे वृद्धि होती रही। सदा आर्थिक पहलू पर हमारी आखें लगी रही। हम किसान, मजदूर, दलितो और वचितो के विषय मे सोचते रहे। हमने अवसर यह कहा कि हम ऐसा समाजवादी ढाचा चाहते हैं, जो भारतीय प्रतिभा के अनुकूल हो। हम कल्याणकारी राज्य चाहते हैं। कल्याणकारी राज्य के बिना समाजवादी ढाचा अकल्पनीय है। हम कठिन परिश्रम से ही समाजवाद प्राप्त कर सकते हैं, न कि प्रस्ताव या सरकारी हुक्मनामे से। हम अधिक से अधिक उत्पादन करें और ठीक से न्यायपूर्ण ढग से वितरण करें। हमारी आर्थिक नीति का उद्देश्य होगा—प्रचुरता।"

कांग्रेस का अमृतसर अधिवेशन 1956

1956 मे अमतसर मे यू० एन० ढेबर की अध्यक्षता मे कांग्रेस का 61वा अधिवेशन हुआ। इस बीच यानी आवडी और अमृतसर के बीच दो महत्वपूर्ण कदम उठाए गए

(क) इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया को सार्वजनिक व्यवस्था मे लाकर स्टेट बैंक आफ इण्डिया का गठन।

(ख) जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण।

स्वाभाविक रूप से अमृतसर कांग्रेस ने इन कदमो का स्वागत किया। इसमे फिर से समाजवादी ढाचे पर जोर दिया गया।

इदौर अधिवेशन 1957

जनवरी 1957 मे इदौर मे अधिवेशन हुआ और इसके अध्यक्ष भी श्री ढेबर ही रहे। इस अधिवेशन मे कांग्रेस के सविधान मे जहा केवल 'सहकारितामूलक कामनवेल्थ' था, वहा उसमे 'समाजवादी' शब्द जोड दिया गया।

श्री नेहरू ने इस अवसर पर कहा "मैं समाजवाद का एक वृद्धिशील, गतिशील धारणा के रूप म लेता हू, जो प्रस्तरीभूत अचल अटल न हो, जो मानव जीवन तथा देश की उपलब्धियो के साथ तालमेल रखे।"

गुवाहाटी कांग्रेस 1957

कांग्रेस का 63वा अधिवेशन गुवाहाटी मे हुआ। इसमे भूमि सुधार पद्धति पर विशेष जोर दिया गया और कहा गया जहा सभव हो, खेतिहरो की सम्मति से सहकारी खेती का प्रवर्तन किया जाए।

नागपुर कांग्रेस 1958

नागपुर म इन्दिरा गाधी की अध्यक्षता मे कांग्रेस का 64वा अधिवेशन हुआ। जिसम नियोजन पर एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया गया। इसमे कहा गया

1 सार्वजनिक उद्योग तथा सरकारी व्यापार को बढावा दिया जाए ताकि सार्वजनिक क्षेत्रो के लिए अधिक साधन प्राप्त हो।

2 आयात पर कडाई से नियन्त्रण किया जाए ताकि अनावश्यक आयात न हो और विदेशी मुद्रा की बचत हो।

3 जीवन बीमा तथा पूंजी एकत्र करने मे लगी हुई सस्थाओ को प्रोत्साहन दिया जाए।

4 उत्पादन का ढाचा ऐसा हो कि लोगों की आवश्यक जरूरता की पूर्ति हो।

5 मजदूरी और वेतन का किए हुए काम तथा उत्पादन से अधिकाधिक सम्बन्ध हो। निजी क्षेत्र म मुनाफे पर नियत्रण हो।

6 जरूरत के अलावा बडी और व्ययसाध्य इमारतो का निर्माण तभी किया जाए, जब योजना के लिए अपरिहाय हो। इन इमारतो मे विलासिता वर्जित रहे। सावजनिक इमारतें सीधीसादी हो।

7 मूल्यवद्धि न हो, पर खेती की उपज का लागत के अनुसार दाम दिया जाए। खेती के क्षेत्र मे उत्पादको का प्रोत्साहन मिले।

नागपुर म सरकार द्वारा अनाज की आढतो और व्यापार का समथन किया गया।

बगलौर अधिवेशन 1960

1960 मे बगलौर मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। यहा यह दृष्टव्य है आजादी मिलने के बाद काग्रेस अधिवेशनो का महत्व घट गया।

इसके बाद तीसरे आम चुनाव का समय आ गया, परन्तु आगे बढने से पहले हम इस बीच घटी उस घटना को देख लें जिससे स्वतत्रता म जो थोडी कमी थी, वह भी पूरी हो गई।

गोवा आजाद— भारतीय स्वतत्रता युद्ध के इतिहास मे गोवा का स्थान बहुत अदभुत और अलग है। जब भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतत्र हो गया, तो भारत के वे कुछ हिस्से स्वतन्त्र होने से रह गए जो अग्रेजो के साम्राज्य मे नही थे। इन स्थानो म फ्रास के अधीन चन्दननगर और पाडिचेरी और पुतगालियो के अधीन गोवा, दमन और दिव थे। फ्रास तो थोडे ही वर्षों म स्थिति को समझ गया और उसके उपनिवेश भारतीय स्वतत्रता के भागीदार और सहभोक्ता हो गए। परन्तु पुतगाली नही माने। उनके द्वारा शासित भूखड 19 दिसम्बर, 1961 को तभी स्वतत्र हो सका जब भारत ने उस पर बाकायदा अपनी फौज चढा दी।

गोवा मे प्रबल क्रातिकारी (आजाद गामन्तक) तथा अहिंसात्मक दोनो प्रकार के आदोलन चालू होने पर भी उनका असर पुतगाली सेना पर नही पडा था, न पड सकता था, क्योकि वह एक विदेशी सेना थी जिसका वहा की जनता से कोई रक्त सम्बन्ध नही था।

इस रक्तगत सम्बन्ध का विकसित न होने देने के पुतगाली साम्राज्यवाद के दो रूप थे—

(1) गोवा के लोगो को जबदस्ती ईसाई बनाना ताकि ईसाई बन जाने पर वे अपने लोगो से कट जाए और विदशियो को अपना सगोत्र तथा प्रभु मानें। इसको विराष्ट्रीकरण (डिनेशनलाइजेशन) की प्रक्रिया बताया गया।

(2) पुतगाली सेना को स्थानीय जनता मे अलग रखा जाए और उन्हें धारणा दिलाई जाए कि यहा के लोग हीन हैं। इसके अलावा पुतगाल से समय समय पर नई सेना मगाकर पुरानी सेना को देश भेज देना जारी रखा जाए।

विदेशी हमलावर बार-बार इस कारण सफल होते रहे कि वे नई तकनीक के अस्त्रो से सुसज्जित होकर आए, उनका सगठन श्रेष्ठतर था तथा वे एक मजबूत गुटबदी

(ज्यादातर धार्मिक) स मतवाले थे। वे आए तो लूटमार से प्रलुब्ध होकर, पर कहा यह जाता रहा कि धम का प्रचार करना है। पुर्तगाली अब तक इस धार्मिक उन्माद स मत्त थे, जबकि मुस्लिम सामन्तो का धार्मिक उन्माद विलासिता के कारण बहुत पहले ही मद्धिम पड चुका था। इनकी तुलना मे हिन्दू 'बारह कनौजिया तेरह चूल्हे' की नीति से सदा सचालित रहे है।

गोवा के ईसाई देशभक्त और स्वातत्य सैनिको द्वारा प्रस्तुत वहा के इसाईकरण का वृत्तान्त सचमुच बहुत ही अदभुत है। अग्रेजो ने भी बडे बडे जुल्म करके धम का प्रचार किया, विशेषकर पिछडे क्षेत्रो म परन्तु उनके अधीन भूमि का विस्तार बहुत अधिक रहने के कारण यह जुल्म उतना जघन्य न हो सका, जितना गोवा मे हुआ। फिर भी गोवा मे चार सौ वर्षों के अत्याचार के बावजूद सिर्फ 38 फीसदी लोग ही ईसाई हुए। मुसलमान दो प्रतिशत बच रहे हिन्दू 60 प्रतिशत हैं।

दो शोध पुस्तकें—एक प्रसिद्ध इसाई देशभक्त ने अग्रेजी म एक, बल्कि दो पुस्तिकाए, लिखीं जिनके नाम थे 'पोर्चुगीज इंडिया' और 'डिनेशनलाइजेशन आव गोवन्स'। ये पुस्तकें पुर्तगाल म प्रकाशित नहीं हो सकती थीं, इसलिए बम्बई मे प्रकाशित हुईं। पुर्तगाली सरकार ने इस प्रकाशन पर भारत की अग्रेज सरकार को आपत्ति करते हुए पत्र लिखा और चोर चोर मौसेरे भाई के नाते पुस्तक-प्रकाशक पर भारत रक्षा कानून के अनुसार मुकदमा चला। मुकदमे का फैसला पहली अदालत म सरकार की इच्छा के अनुसार हुआ, परन्तु बम्बई हाई कोर्ट मे उस समय एम० सी० चागला न्यायाधीश थे। उन्होंने प्रकाशन का समर्थन करते हुए पहली अदालत के फैसले को इस आधार पर रद्द करार दिया कि जिन तथ्यो को मानकर ये पुस्तकें लिखी गईं वे अकाट्य हैं। इस प्रकार ये पुस्तकें जब्त न की जा सकीं और अब एक ही जिल्द म उपलब्ध हैं।

इन पुस्तको के लेखक टी० बी० कुन्हा न केवल गोवा के स्वातत्य योद्धा थे, बल्कि विद्वान भी थे। उन्होंने पणजी (गोवा की राजधानी) म माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की फिर वह पाडीचेरी मे उच्च शिक्षा के लिए गए और वहा स्नातक हो गए। इसके बाद वह फ्रास म और उच्च शिक्षा के लिए चले गए। 14 वर्ष फ्रास मे रहकर 1926 म गोवा लौटे। फिर वह गोवा के स्वातत्य सग्राम म जुट गए। वहा उन्होंने गोवा यूथ लीग (युवासघ) की स्थापना की। भारतीय स्वतन्त्रता के ऐन पहले 18 जून, 1946 को जब राममनोहर लोहिया ने गोवा स्वतन्त्र करने की माग को बुलन्द किया, कुन्हा साहब पर इसी अपराध मे सगीनो से कोंचा गया, जिसके चिह्न वह अपनी कब्र के दिनो तक ले गए। उन्हें अगुआदा दुर्ग मे बन्दी बनाकर रखा गया, जहा सैकडो देशभक्त रहे।

1916 की 24 जुलाई को कुन्हा का सनिक अदालत के द्वारा 8 साल की सजा सुनाई गई और उन्हे पुर्तगाल जेल भेजा गया। वह 1950 की आम माफी मे छूटे, पर उन्हे लिस्बन मे ही रहने को कहा गया। पर दो साल बाद वह वहा से भागकर पेरिस पहुचे। वह अपने भाई के साथ, जो एक भारत विद्या विशारद थे, कई साल रहे, फिर वह 4 सितम्बर, 1953 को भारत लौटे। वहीं से कोंकणी भाषा मे 'आजाद गोवम' प्रकाशित करते रहे। स्वास्थ्य गिर चुका था, भारत स्वतन्त्र होने पर भी गोवा परतन्त्र था, फिर भी वह लडाई जारी रखते रहे। 1958 के 26 सितम्बर को उनका देहान्त हुआ और उनको बम्बई के स्काटलैंड कब्रिस्तान मे समाधि दी गई।

पुर्तगाली, अग्रेजो के मुकाबले अधिक धर्मान्ध थे अतएव उनके शासन म हजारो मुसलमानो और हिन्दुओ को जबर्दस्ती ईसाई बनाया गया।

पुर्तगालियो ने लगभग चार सौ साल खूब लूट मार की। नये गिरजे बनाने के

बावजूद वे अपने ही धार्मिक मानदण्डो से भी कतई धार्मिक नही थे। वे सब दुश्चरित्र और लम्पट थे। वे धर्म का इस्तेमाल करके अपने शोषण को चिरस्थायी बनाना और मौज उडाना चाहते थे।

श्री कुन्हा लिखते है "पुर्तगाली एक तरफ लूट मार करने और दूसरी तरफ धर्म प्रचार करते थे। इसके लिए उन्हे पोप की सनद प्राप्त थी और वे सारी लडाइया ईसाइयो के चिह्न क्रास और तलवार के तहत लडते थे। वे भारत मे हिन्दू धर्म का अस्तित्व नकारते हुए यह समझकर चलते थे कि यहा सब ईसाई है। प्रारम्भ मे उनकी धार्मिक घृणा की ताप का मुह मुस्लिमो की तरफ था क्योकि वे ही उनके प्रतिद्वन्द्वी थे। उन दिनो कुछ इने गिने नस्तोरियन ईसाई यहा थे, जो बाद मे कैथोलिक बन गए। पर पुर्तगालियो के दिमाग पर यह जुनून सवार था कि भारत के सब लोग ईसाई ही है और इसी पागल पन से परिचालित होकर वास्कोडिगामा ने कालीकट के एक हिन्दू मदिर को ईसाई गिर्जा समझा था और उसके अन्दर प्रतिष्ठित काली की मूर्ति को मरियम समझकर उसे अर्घ्य चढाया था। पुर्तगालियो द्वारा सबसे पहले कुछ वेश्याए ईसाई बनाई गई। सुन्दरी वेश्याओ को प्रचुर उपहार देकर और धमका कर ईसाई बनाने का उद्देश्य यह था कि पुर्तगाली सैनिक हराम करने से बचाए जाए। गोवा मे अलबुकर्क ने अपने सैनिको की शादी, तुर्की अफसरो की छीनी हुई बीवियो और बेटियो से कराई। ये तुर्की अभय देकर जहाज पर सपरिवार बुलाए गए थे। परन्तु पहुचने पर पुरुषो को तलवार के घाट उतारकर उनकी बीबियो और बेटियो का सैनिको के सुपुर्द कर दिया गया।"

सन्त जेवियेर ऐसे लोग भी अत्याचारो के बावजूद ईसाई धर्मप्रचार मे सफल नही हुए। इसलिए उन्होंने बराबर पुर्तगाली सम्राट को यह लिखा कि आप अपने गोवा स्थित कर्मचारियो को यह आदेश देते रहे कि उनको तभी सफल प्रशासक माना जाएगा जब वे धर्म का झण्डा फहराने मे अपनी पटुता दिखाए। पादरी, जनता पर अलग जुल्म करते थे। वे धर्म प्रचार के नाम पर शान शौकत की जिन्दगी बिताते रहे। वे कामुक और लोभी थे। अपनी पाशविक वृत्तियो को चरितार्थ करने के लिए वे भारतीयो पर खुलकर अत्याचार करते थे, यहा तक कि ईसाई बनाए गए लोगो को भी नही बख्शते थे। 1910 मे पुर्तगाल मे प्रजातन्त्र कायम होने के साथ साथ देश के अन्दर गिरजा और राष्ट्र का अलगाव हो गया, पर पुर्तगाल के भारतीय साम्राज्य मे पादरियो की दुष्टता और मन मानी जारी रही।

1926 मे पुर्तगाल मे फासिस्ट अधिनायकवाद का बोलबाला हुआ। पुर्तगाल मे सब तरह की स्वाधीनता नष्ट हो गई। सारी राजनीतिक पार्टिया निषिद्ध हो गई। अख बारो का कण्ठरोध किया गया। गोवा की भाषा कोकणी है। गोवा के बाहर भी 7000 वर्ग मील तक यह भाषा प्रचलित है। भाषा विज्ञान के विद्वान इस भाषा को गोमतकी कहते है। पर मराठी भाषी इसे मराठी की एक बोली मात्र मानते है। गोवा पर चार शताब्दी शासन मे पुर्तगालियो ने कोकणी को खूब दबाया और फिर भी पुर्तगाली शासन काल मे दो या तीन प्रतिशत लोग ही पुर्तगाली का ज्ञान प्राप्त कर सके। पुर्तगाली शासन मे शराब का खूब प्रचार प्रसार हुआ। पुर्तगाली शासन मे सबसे अधिक यानी 20 प्रतिशत राजस्व शराब से आता था। गोवा क्षेत्र मे शराब के बडे कारखाने है।

पुर्तगालियो ने 1510 के पहले झोके मे ही हर मुसलमान को मारकर सारी मस्जिदें तोड दी थी। एक ही दिन मे एक जगह 6000 मुसलमान मार दिए गए थे। मुसलमानो पर इस विशेष अत्याचार का कारण यह था कि वे शासक जाति के समझे जाते थे। मस्जिदो की सम्पत्तिया गिरजा को सौप कर धर्म का डका बजाया गया। हिन्दुओ की

बारी आई तो घर के अन्दर भी कीर्तन निषिद्ध करार दिया गया, तुलसी का पेड उगाना, धोती या चोली पहनना भी जुर्म बना दिया गया।

जब भारत स्वतन्त्र हो गया, तो गोवावासी बहुत विचलित हुए, पर वे सबसे अधिक विह्वलित तब हुए जब फ्रासीसियो ने अपने भारतीय उपनिवेशो को भी स्वतन्त्र करके भारत को सौंप दिया।

स्वातन्त्र्य सग्राम —पुर्तगाली यह प्रचार करके दुनिया की आखो मे धूल झोकने लगे कि फ्रासीसी उपनिवेशो मे गोवा का मामला भिन्न इस कारण है कि गोवावासियो मे 70 फीसदी जनता पुर्तगाली रक्त की है। परन्तु गोवा के स्वातन्त्र्य आदोलन की विशेषता यह था कि न केवल इसमे ईसाई पूरी तरह शामिल थे, बल्कि वे बराबर गोवा को भारत का अविच्छेद अग मानकर चल रहे थे। गोवा के स्वातन्त्र्य योद्धाओ का केन्द्र बम्बई था, जहा से उनको धन और प्रचार सम्बन्धी सहायता प्राप्त होती रहती थी। गोवा से फरार लोग बम्बई मे बठकर आदोलन को बल पहुचाते थे। वही पूरा साहित्य छपता और चोरी से गोवा भेजा जाता। 10 नवम्बर, 1954 को 'मुक्त गोवा' की एक घोषणा मे पुर्तगाली साम्राज्यवादियो को यह चेतावनी दी गई कि वे फ्रासीसियो की तरह बिना रक्तपात के गोवा त्याग दें। इस घोषणा के अन्त मे यह कहा गया कि पाण्डिचेरी तथा चन्दन नगर मे जिस कार्य का शुभारम्भ हुआ, उसकी पूर्णाहुति गोवा की स्वतन्त्रता से हो।

यहा यह बता दें कि भारत के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू को जब भी गोवा पर प्रश्न किया जाता, तो वह जो भी कहते, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को देखकर कहते। उससे गोवावासियो को निराशा होती थी। गोवा पर भारत सरकार बहुत देर मे किसी ठोस निर्णय पर पहुची।

दादरा, नगर हवेली स्वतन्त्र — 1954 मे गोवा के काग्रेसी भी समझ गए कि केवल प्रस्तावो से कुछ नही होगा। पीटर अल्वारिस के नेतृत्व मे फिर से जोरो के साथ सगठन चालू हुआ। एक नई समिति बनी जिसके अध्यक्ष पुडलिक गायतोडे बने। पुर्तगाली पुलिस को पता लगा और पुडलिक गायतोडे को पकडकर पुर्तगाल की जेल मे भेज दिया गया। गोवा के स्वातन्त्र्य योद्धा बम्बई और गोवा के बीच दौडने लगे। बम्बई मे 'आजाद गोवा' का दफ्तर खुले आम काम कर रहा था। तय हुआ कि दादरा तथा नगर हवेली को पहले चरण मे मुक्त किया जाए। पर प्रश्न था कि क्या बम्बई के सर्वेसर्वा मोरारजी देसाई इसे स्वीकार करेंगे? उनसे क्रान्तिकारी बात करने लगे। बडी कठिनाई से मोरारजी तयार हुए, तब 1954 मे 22 जुलाई को दादरा नगर हवेली को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया। बम्बई के गरम दलीय नेताओ के सहयोग से यह सम्भव हुआ।

गोवा मुक्त—पर यह तो प्रतीकात्मक विजय थी। आजाद गोमन्तक (नेता विश्वनाथ लावंदे) और गोवा लिबरेशन आर्मी (नेता शिवाजी देसाई) ये दो क्रान्तिकारी दल बराबर काम कर रहे थे, पर कोई भी क्रान्ति या मुक्तिपर्व तब तक सफल नही हो सकता, जब तक कि सेना को मिला न लिया जाए। यह शर्त यहा पूरी नही हो सकती थी, क्योंकि सेना पुर्तगाली थी। दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो गोवा की मुक्ति बहुत कठिन थी। अन्तर्राष्ट्रीय जनमत से कुछ आशा करना गलत था, क्योकि उस पर साम्राज्यवादियो का कब्जा था। फिर भी दादरा नगर हवेली की स्वाधीनता के बाद हवा ऐसी बनती चली गई कि भारत सरकार ने 19 दिसम्बर, 1961 को गोवा के भीतर अपनी फौज भेजनी पडी और करीब करीब बिना रक्तपात के गोवा आजाद कर दिया गया। अगुआदा गढ में जो छोटे मोटे स्वातन्त्र्य योद्धा बन्द थे वे मुक्त कर दिए गए, परन्तु कई महत्वपूर्ण

व्यक्ति पुर्तगाल की जेलो मे पडे थे, वे नही छोडे गए । कथित अन्तर्राष्ट्रीय जनमत गोवा के हमले पर खूब शोर मचाता रहा, परन्तु इन बंदियो के लिए किसी ने कुछ नही कहा। बहुत बाद म वे पुर्तगाल की जेलो से सजा की अवधि पूरी करने के बाद रिहा किए गए ।

गोवा अधिग्रहण की निन्दा - अनेक देशो और पाकिस्तान म इस घटना की यह कहकर निन्दा की गई कि भारत विस्तारवादी और साम्राज्यवादी है और वह गाधी के आदर्शों से गिर चुका है । पुर्तगाल को भडकाया गया कि वह अपना बडा भेजकर फिर से गोवा पर अधिकार जमा ले । परन्तु पुर्तगाल ने यह बेवकूफी नही की । किसी सभ्य देश ने यह नहीं कहा कि इस विषय पर गोवा वालो की भी राय ली जाए ।

चीनी आक्रमण गोवा को आजाद कराने के बाद सबसे बडी घटना चीनी आक्रमण है, जो 1962 के 19 अक्टूबर को एकाएक बिना मेघ के वज्रपात की तरह घटित हुआ क्योंकि देश म बराबर वर्षों से 'चीनी हिन्दी भाई भाई' का नारा गूज रहा था ।

भारत और चीन म सैकडो वर्षों की दोस्ती और आदान प्रदान रहा है । स्वतन्त्रता सग्राम के दौरान चीन के नेता सुन यातसेन की जीवनी उसी चाव से भारत म पढी जाती थी, जसे इटली के मजिनी, गैरीबाल्डी, और आयरलैंड के डि वेलेरा डानब्रिन की जीवनी पढी जाती थी । जब 1949 मे चीन मे माओ त्से तुग के नेतृत्व म क्रान्ति हुई, तब से भारत की परम्परागत दोस्ती और प्रबल हो गई, चीन भी पूरी तरह ईमानदार रहा । इसका एक प्रमाण यह है कि एक बार जब नेपाल के प्रधानमत्री तनखाप्रसाद आचार्य ने सरकारी भोज मे नेपाल चीन की दोस्ती का नारा दिया तो माओ ने जो उस भोज म उपस्थित थे, वक्तव्य को सुधारते हुए कहा—'नेपाल चीन भारत की दोस्ती ।' प्रसिद्ध पत्रकार दुर्गादास ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया फ्राम कर्जन टु नेहरू ऐण्ड आफ्टर' म इस घटना का उल्लेख किया है ।

दोनो देशो मे सब कुछ ठीक चलता रहा । हा, सीमान्त पर कुछ आलोचना होती रही । नेहरू चाहते थे कि चीन मैकमोहन रेखा को मान्यता दे, पर चाउ एन लाई बदले मे अक्साइ चिन का इलाका चाहते थे । नेहरू को इसमे विशेष आपत्ति नही थी क्योंकि, जैसा कि उन्होने कहा, उस इलाके मे घास की एक पत्ती भी नही उगती । परन्तु जाने कसे इसकी भनक विरोधी पक्ष के कानों में पहुच गई । बस ससद मे बावेला मच गया कि देश को बेचा जा रहा है । नतीजा यह हुआ कि चीन और भारत की बातचीत म जिद पैदा हो गई ।

परन्तु किसी को भारत पर चीनी आक्रमण का भय नही था । इसलिए जब आक्रमण हुआ, वह आकस्मिक लगा । भारत इसके लिए तयार नही था, न मानसिक रूप से, न सैनिक रूप से । नतीजा यह हुआ कि चीन भारत में घुस आया । पर वह बहुत आगे न बढकर लौट गया । क्यो लौटा, इस पर बहुतो का कहना है कि चीन भी इससे ज्यादा के लिए तयार नही था ।

जो हो, चीन के इस काय से भारत की जगहसाई हुई और लोग इतने नाराज हुए कि नेहरू को रक्षामत्री मेनन को मत्रिमण्डल से निकालना पडा । मेनन योग्य पर जिद्दी व्यक्ति थे । इसके बाद सुरक्षा उद्योग का जो सिलसिला चला, उसका परिणाम यह हुआ कि तीन वष बाद 1965 मे जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया तो भारत सामना करने के लिए तयार था । इस दृष्टि से देखा जाय तो चीनी आक्रमण ने हम सैनिक रूप से जगाकर हमारा कल्याण ही किया ।

कहा "किसी भी जिम्मेदार सरकार के लिए एक निश्चित और इच्छाकृत नीति को बदल सकना आसान नही है। फिर भी हमारे मन्त्रिमण्डल ने, जो हर तरीके से जिम्मदार है, बहुत ही सोच समझ और साथ ही निश्चित सकल्प को बदल दिया है। मैं जानता हू कि समार की सारी जातिया इस कार्य का स्वागत करेंगी और मैं यह कहूगा कि हमारे मन्त्रिमण्डल ने यह काय करके बहुत ही श्रेष्ठ आचरण का परिचय दिया है।'

मुस्लिमतोषण नहीं, आत्मतोषण—गाधीजी ने यह भी स्पष्ट किया कि इसे मुस्लिमतोषण न कहा जाए, बल्कि यह आत्मतोषण है। उन्होंने कहा कि एक बहुत बडी जनता का प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डल कभी ऐसा कदम नही उठा सकता, जिससे कि वह विचारहीन जनता की वाहवाही मे भटक जाए। जबकि चारो तरफ पागलपन का वातावरण है क्या यह जरूरी नही कि हमारे प्रतिनिधि अपन दिमाग ठीक रखें और राष्ट्र की नया को चट्टान से टकराकर टूटने से बचाए।"

प्रार्थना सभाओ मे हुल्लड—इसी प्रकार जब सितम्बर, 1947 म दिल्ली या उसके आस-पास बिहार में झगडे हुए, तो महात्माजी ने मुसलमानो को बचाने की चेष्टा की। इन सारी बातो के फलस्वरूप हिन्दुओ मे एक वग ऐसा उत्पन्न हो गया, जिसने हर कदम पर गाधीजी का विरोध करना शुरू किया, यहा तक कि उनकी प्रार्थना सभाओ मे भी लोग उन से बुरी तरह पेश आने लगे। कई बार तो सवधममूलक प्रार्थना बन्द ही कर देनी पडी। उनकी प्रार्थना की विशेषता यह होती थी कि उसमे कुरान से आयतें, ईसाई गीत, वेद की ऋचाए आदि सभी पढी जाती थी। लोग और तो सब कुछ सह लेते थे, पर कुरान की आयतो पर झगडा करते थे।

गाधीजी की हत्या—इन परिस्थितियो मे एक धर्मान्ध के हाथो महात्माजी की हत्या होना कोई आश्चय की बात नही है। पहले ही गाधीजी पर बम से एक हमला हो चुका था। तेन्दुलकर के अनुसार "30 जनवरी की शाम को चार बजे सरदार पटेल गाधीजी से मिले और उनके साथ एक घन्टा रहे। हाल के उपवास तथा अन्य कारणो से सरदार पटेल और जवाहरलाल मे जो मतभेद हुए थे, उससे वह चिन्तित थे। वह चाहते थे कि दोनो नेता कन्धे से कन्धा मिलाकर चलें। सन्ध्या समय की प्रार्थना के बाद नेहरू और आजाद उनसे मिलने वाले थे। पाच बजे गाधीजी ने घडी निकाली और सरदार स बोले—'प्रार्थना का समय हो गया।' वह पाच बजकर दस मिनट पर अपने कमरे स निकले और टहलते हुए पास के मैदान की प्रार्थना सभा की ओर गए। उनकी पोतिया मनु और आभा उनके बगल मे थी। वह उन दोनो का सहारा लेकर चल रहे थे। दोनो तरफ खडे लोगो के बीच होते हुए वह प्रार्थना सभा की ओर जा रहे थे। अब वह पोतियो के कन्धे पर से हाथ हटाकर लोगो के नमस्कार का उत्तर दे रहे थे। एकाएक भीड म एक हिन्दू नाथूराम गोडसे भीड को कुहनी मारकर चीरता हुआ आया। मनु ने समझा कि वह गाधीजी के चरण छूना चाहता है, इसलिए उसने उसको रोका, और पीछे करना चाहा। पर गोडसे ने मनु का हाथ झटककर छुडा लिया, फिर हाथ जोडकर, मानो चरण स्पश के लिए आतुर हो, एक के बाद एक सात गोलियो वाली पिस्तौल से तीन गोलिया चलाइ। सभी गोलिया गाधीजी के दाहिने सीने पर लगी। दो गोलिया शरीर छेदकर निकल गईं, तीसरी फेफडे मे घुस गई। पहली गोली लगते ही उनके चलते हुए पर रुक गए। नमस्कार मे उठे हाथ धीरे धीरे शिथिल होकर नीचे आ गए। अब भी वह पैरो पर खडे थे, परन्तु इसके बाद जब दूसरी और तीसरी गोली दनदनाई, तो वह गिर पडे। उनके मुह से निकला 'हे राम'। चेहरा फक पड गया। श्वेत वस्त्र पर लाल धब्बे आ गए। लोगो ने उन्हे उठाया और भीतर ले जाकर उस गद्दे पर रख दिया

जहां बैठकर वह काम करते थे। फौरन उनकी मृत्यु हो गई।"

हत्यारों का वक्तव्य — 8 नवम्बर 1948 को न्यायमूर्ति आत्माचरण ने लाल किले के अन्दर वंद नाथूराम विनायक गोडसे से नियमानुसार कहा—"तुम सारी गवाही सुन चुके हो तुम्हें कुछ कहना है ?"

इस पर गोडसे ने एक लिखित बयान पढना चाहा। इस्तगासे की आपत्ति पर भी गोडसे को बयान पढने की अनुमति मिल गई। गोडसे उत्तेजित नहीं था, यद्यपि इस बीच इस हत्या की सारे ससार मे बहुत निन्दा हो चुकी थी। उसने कहा कि यद्यपि सारे लोगो ने मेरी निन्दा की है, पर मुझे निश्चय है कि इतिहास दूध का दूध और पानी का पानी कर देगा।

पुणे के पत्र 'हिन्दू राष्ट्र' के सम्पादक नाथूराम विनायक गोडसे के अतिरिक्त सात और व्यक्ति इस घृणित षड्यन्त्र मे शरीक थे— नारायण आप्टे, विष्णु करकरे, शंकर किस्तया, दिगम्बर बडगे, मदनलाल पहवा, गोपाल गोडसे और दत्तात्रेय परचुरे।

बहुत साल बाद — मई 1983 के 'सोसायटी' पत्र के एक खोजी लेखक मधु बेल्लुरी के अनुसार उस समय तक गांधी हत्या मुकदमे के मदनलाल पहवा, गोपाल गोडसे और दत्तात्रेय परचुरे जीवित थे। मदनलाल का कहना था कि उसके पिता काश्मीरी लाल कांग्रेसी थे, फिर भी वह विभाजन के दगो के दौरान बहुत मारे पीटे गए थे और अस्पताल मे पडे थे। पिता को उस रूप मे देखकर ही वह मुसलमानो पर हमला करने लगा। उसने कहा कि ग्वालियर मे इस प्रकार के कामो के लिए अच्छा मौका था। उसका तो यहां तक कहना था कि बडे बडे नेता उसकी सहायता कर रहे थे।

सुहरावर्दी को भी मारना था —मदनलाल के अनुसार जब महात्मा जी द्वारा अनशन करके पाकिस्तान को पचपन करोड दिलाने की खबर आई, तब उनकी हत्या का कार्यक्रम जोर पकडने लगा। नाथूराम गोडसे, उसका भाई गोपाल गोडसे, करकरे, किस्तया योजना बनाने लगे। उसने पत्रकार मधु से कहा "हम सुहरावर्दी और गांधी को मारना चाहते थे, नेहरू को नहीं। यह तो सरकारी प्रचार था कि हम नेहरू को मारना चाहते हैं।" तीन दिन तक दिल्ली के मेरिना होटल मे अल्पनाएं चलती रहीं। मदनलाल को (जो उस समय 20 वर्ष का युवक था) मराठी ब्राह्मण इस योग्य नहीं समझते थे कि उस पर पूरा विश्वास किया जाए। उसम कहा गया कि तुम्हारा काम यह होगा कि बम फेंको, जिसके धडाके से भगदड मच जाए। लोगो का ध्यान जब धडाके की तरफ जाएगा, तब हम गांधी पर हमला करेंगे।

हत्या का पहला कार्यक्रम -पहले कार्यक्रम म नाथूराम और आप्टे केवल परिदर्शक होते। मदनलाल पहले बम फेंकता और फिर करकरे भीड से एक और बम फेंकता। उस योजना म बडगे महात्मा गांधी पर गोली चलानेवाला था। 20 जनवरी 1948 को यह सब होना था। धडाका तो हुआ, पर अन्य लोग अपना निश्चित कार्य न कर सके। मदनलाल पकड लिया गया। उसके अनुसार पुलिस ने उसके मलद्वार म मिर्च डाली, उसे बर्फ की सिल्ली पर बठाया, ऊपर से सिर पर चीनी का रस डाला ताकि चींटियां रेंगें। उसे कम्बल उढाकर रेल के स्टेशन तथा सार्वजनिक स्थानो पर घुमाया गया। मदनलाल ने गर्व के साथ कहा "मैंने स्टेशन पर गोडसे और करकरे को बम्बई की गाडी मे चढते देखा, पर उन्हें पहचाना नहीं।

हत्या से खुशी—दस दिन बाद जब महात्मा की हत्या की खबर मदनलाल को मिली तो उसको कहना था उसे खुशी हुई थी। वह 16 साल जेल म रहकर 1964 के 14 अक्टूबर को छूट चुका था। पत्रकार मधु मदनलाल के साथ एटेनबरो की फिल्म

'गांधी' देखने गया था। फिल्म देखते हुए मदनलाल ने एक दीवार देखकर उत्तेजित स्वर में कहा—"मैंने वहां बम रखा था।" फिल्म के गोडसे को देखकर उसने कहा —"यह गोडसे नहीं लगता। गोडसे ने तो खाकी कमीज पहन रखी थी।" मदनलाल को यह भी शिकायत थी कि फिल्म मे गांधी की गलतियां जैसे खिलाफत की पैरवी (जब कमाल अतातुर्क ने खलीफा की परम्परा को एक झटके मे खतम कर दिया) इर्विन के साथ समझौता (जिसमे वह 'उल्लू' बने) नहीं दिखाई। इसके अलावा प्रार्थना सभा म बहुत कम लोग दिखाए गए जबकि वास्तविक प्रार्थना सभा मे हजारों लोग थे।

पत्रकार मधु गोपाल गोडसे से मिले। गोपाल द्वितीय महायुद्ध मे भाग ले चुका था। लौटकर वह पुणे के किरकी आर्डनेन्स कारखाने के बाहर काम मे लग गया। प्रथम हत्या प्रयास म वह घटनास्थल पर था। पत्रकार मधु को लगा कि गोपाल में अब भी पुराना पागलपन मौजूद है। वह बोला— "मैं मानता हू, गांधी महापुरुष थे। उन्होने कई काम सिद्ध किए। पर वह इन सिद्धियों के कारण नहीं, बल्कि जनता को धोखा देने के लिए मारे गए। उन्होने उपवास की जबर्दस्ती म पाकिस्तान को 55 करोड दिलाए। जिस समय देश का विभाजन हुआ, उस समय उन्होने अनशन क्यो नहीं किया? क्या उन्होंने यह नहीं कहा था कि मेरी लाश पर ही पाकिस्तान बन सकता है?"

गोपाल ने कहा कि सब देशो ने गांधी की भस्म अपनी नदी मे फेंके जाने की अनुमति दी, पर मुस्लिम होमलैंड पाकिस्तान ने भारतीय राजदूत श्री प्रकाश को सिंधु नदी में भस्म नहीं डालने दी, जबकि महात्मा जी पाकिस्तान के लिए ही मरे। गोपाल के अनुसार 'हे राम' भी कांग्रेसियो की जालसाजी है।

गोपाल के अनुसार नाथूराम ने अपनी राख सिन्धु नदी मे ही क्यो डलवानी चाही, —"क्योंकि वही एक नदी है जो पवित्र बची है।" यह नाथूराम ने फांसी के दिन कहा था।

एक से अधिक अर्थों मे ऐतिहासिक – महात्मा गांधी की हत्या एक से अधिक अर्थों म ऐतिहासिक है। गणेशशंकर विद्यार्थी मुस्लिम धर्मान्धों के हाथो मारे गए थे, जबकि महात्मा एक हिन्दू के हाथो मारे गए। यह भी एक संयोग है कि बर्मा के महान नेता आंग सान भी इसी प्रकार मारे गए थे। जिन्ना पाकिस्तान बनते समय कैंसर के शिकार थे। भारत के नेताओं को इस रोग की बात मालूम नहीं थी, पर ब्रिटिश गुप्तचर विभाग को मालूम थी। मृत्यु जल्दी हो गई और उसम पाकिस्तान के राजनीतिज्ञो का हाथ बताया जाता है। लिआकत अली खा की भी हत्या ही हुई। फिर जिसने हत्या की थी, उसकी भी हत्या कर दी गई। इस प्रकार यह हत्या रहस्य ही रह गई। और इस हत्या के बाद से पाकिस्तान म सैनिक शासन हो गया।

गांधी युग—महात्मा जी ने कांग्रेस को आमूलचूल परिवर्तित कर उसे एक संग्रामी संस्था बना दिया था। यह सही है कि कांग्रेस के अन्दर कई बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि गांधीजी को उससे अलग हो जाना पड़ा, परन्तु मनाकर उनको लौटाया भी जाता रहा क्योंकि कांग्रेस मे अगर किसी के पास जनता के मन की चाभी थी, तो वह उन्ही के पास थी। गांधीजी के विरुद्ध पहला विद्रोह तब हुआ, जब असहयोग आन्दोलन अचानक बन्द कर दिए जाने के बाद चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व मे स्वराज्य पार्टी का उदय हुआ। कांग्रेसी नेताओ की यह दूरदर्शिता रही कि स्वराज्य दल कांग्रेस का एक विभाग बना दिया गया। इसके बाद सुभाष का विद्रोह हुआ, उसका अन्त सुभाष के कांग्रेस से निकलने में हुआ। द्वितीय महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार से सहयोग के प्रश्न पर कांग्रेस और महात्मा जी में मतभेद हुए, जिससे महात्मा जी कुछ अलग से हो गए।

पर इसका भी अ त 1944 मे 'करो या मरो' का नारा देकर सग्राम छिडते ही हो गया, इसलिए यह कहना सवथा उचित है कि कांग्रेस का यह सारा युग गांधी युग था। अवश्य ही इस दौरान कांग्रेस के अन्दर कांग्रेस समाजवादी जसे दल का उदय और बाहर क्रांति कारी विस्फोट होते रहे जिनके मील के पत्थर हैं, काकोरी, लाहौर, मेरठ षड्य त्र और आजाद हिन्द फौज।

देश मे कांग्रेस का बोलबाला— स्वराज्य के बाद देश मे कांग्रेस का रूप बदल गया। वह अब आन्दोलनकारियो का सयुक्त मोर्चा न रहकर शासनारूढ दल हो गया। महात्मा गाधी यद्यपि स्वय साल भर मे उठ गए, परन्तु इसका कांग्रेस सस्था पर विशेष असर नही पडा। 1947 से प्राय आज पयन्त देश मे कांग्रेस का ही शासन चला आ रहा है। बीच मे दो-तीन वर्ष के लिए कांग्रेस गद्दी से अलग रही, पर उस दौरान भी जनता पार्टी के जो लोग शासनारूढ रहे, उनमे से कुछ को छोडकर शेष सभी जसे मोरारजी देसाई, चरणसिंह आदि सब कांग्रेसी ही थे। यहा भी यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इनमे करीब-करीब सभी कांग्रेस से अलग होने पर भी गाधीजी के ही शिष्य होने का दावा करते रहे। भारतीय जनता पार्टी जसे दक्षिणपथियो ने भी गाधीवादी कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। देखा जाए तो जो लोग स्वराज्य के बाद ही कांग्रेस विरोधी दल बनाकर सामने आए, वे सब भी भूतपूव कांग्रेसी ही थे। कम्युनिस्ट नेता नम्बुदरीपाद भी भूतपूर्व कांग्रेसी थे।

सच कहा जाए तो गाधीवाद अब तक जीवित है और बहुत से लोग यह भी मानते हैं कि सच्चे मानो मे गाधी की आवश्यकता आज ही है। अनेक देशो म उनके सिद्धातो तथा कार्यक्रमो को अपनाकर राजनीतिक लडाइया लडने का प्रयास किया गया है जो बहुत कुछ सफल भी रहा है। फिर भी यह मानना होगा कि स्वय गाधीजी के न रहने से मानो कांग्रेस की आत्मा ही नष्ट हो गई और उन्ही क अनुयायियों द्वारा बहुत सी गलतिया भी की जाने लगी। कहा जा सकता है कि गाधीजी जीवित होते तो उन्ह माफ नही करते। इस सम्बन्ध मे अग्रणी पत्रकार दुर्गादास ने तभी लिखा था '30 जनवरी 1948 को गाधी युग का अन्त हो गया और एक ऐसी शून्यता पैदा हो गई, जो कभी नही भरने की। गाधी वह कमान थे वह आत्मिक शक्ति थे, जिस पर कांग्रेस स्थिर थी और जनता पर उसका दबदबा कायम था।"

निरे कांग्रेसी बनाम पदधारी कांग्रेसी—स्वराज्य के बाद कांग्रेस या कांग्रेसी शासनारूढ हुए और इसका परिणाम यह हुआ कि पदधारी और पदहीन कांग्रेसियो के दो भेद हो गए। पदहीनो म कुछ कांग्रेस म अलग हो गए और उन्होने अपनी सस्थाए बना ली। जो कांग्रेस म रहकर भी पद न पा सके, उनका महत्त्व उन कांग्रेसियो के मुकाबले मे घट गया जो राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, मन्त्री, सासद विधायक या किसी निगम आदि के अध्यक्ष बने। यह स्वाभाविक होते हुए भी ठीक नही था क्योकि इसके अन्य अनेक दुष्परिणाम हुए। बस यह शुरुआत पहले ही हो गई थी जब स्वराज्य के पहले कांग्रेसाध्यक्ष कृपलानी ने इस कारण अध्यक्ष पद मे इस्तीफा दे दिया था कि सरकार मे बैठ कांग्रेसी नेता उन्ह महत्त्वपूर्ण मशविरो मे भी नही बुलाते थे। इसके बाद पुरुषोत्तम दास टडन को भी कांग्रेसाध्यक्ष के पद स इस्तीफा देना पडा क्योकि कृपलानी के अनुसार नेहरू के साथ उनकी नही बनी। ये दोनो इस्तीफे विचारधारागत नही थे जसा कि सुभाष का इस्तीफा था।

जब कही सग्रामकारी दल सत्तारूढ हो जाता है, तो प्राय ऐसा ही होता है। तुलसीदास जी ने कहा है 'प्रभुता पाय काहि मद नाही'। परन्तु यह अटल नियम भी नही

है कि सत्ता प्राप्त होते ही पतन हो ही जाए। आधुनिक काल म हम देखत है—लेनिन या हो ची मिन्ह का सत्तारूढ होने पर किसी अर्थ म भी पतन नही हुआ। स्वय महात्मा गाधी गद्दी पर नही बैठे, और यदि वे जीवित रहत तो भी नही बठत। वास्तव मे वे जब तक रह सत्तारूढ नेहरू और पटेल पर महाशक्ति और अकुश के रूप मे रहे। उनकी हत्या इस कारण हुई कि वह अपनी धर्मनिरपेक्षता को इस हद तक ले गए कि लोग उन्हे गलत समझने लग।

दुखती रग—यहा हम देश की एक दुखती रग पर पहुच जाते है। काग्रेस शुरू से ही, यहा तक कि जब उसम जी हुजूर और खरख्वाह किस्म के लोगो का बोलबाला था, अल्पसंख्यको को बहुत महत्त्व देती थी। गाधी से पहले बदरुद्दीन तयबजी 1887 म, मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी 1886 मे, नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर 1913 म और हसन इमाम 1918 म काग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके थे। दादाभाई नौरोजी न 1906 मे तथा एनी बेसेन्ट ने 1917 मे इस आसन की शोभा बढाई थी। जब गाधी युग आया तब काग्रेस की गद्दी पर हकीम अजमल खा 1921 मे, मुहम्मद अली 1923 म, एम० ए० अमारी 1927 मे बैठ चुके थे। आजाद 1940 से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक फिर बराबर अध्यक्ष रहे। यह चुनौती बार-बार दी जाती रही, कि आखिरी दशक को छोडकर काग्रेस क अन्दर लीग से अधिक मुस्लिम सदस्य रहे। (यद्यपि लीग ने कभी अपन सदस्यो की सख्या नही बताई)। 1937 के प्रातीय शासन के युग म लीग सिकन्दर हयात और फजलुल हक के प्रातीय दलो के सामन नही ठहर पाइ और अपनी दाल गलती न दखकर जिन्ना इगलैंड मे बसने चले गए, परतु फिर भी लीग को महत्त्व दिया जाता रहा।

13

सत्तारूढ़ कांग्रेस का नेहरू युग

स्वतंत्र भारत की पहली सरकार के नेता श्री नेहरू थे। छह महीने के भीतर ही महात्मा गांधी नहीं रहे और सरदार पटेल भी लगभग तीन वर्ष तक ही उनका साथ दे सके। इसलिए स्वतंत्र देश के नवनिर्माण का प्रायः पूरा ही दायित्व नेहरू जी पर आ पड़ा। यह बहुत कठिन समय था परन्तु उन्होंने बड़े परिश्रम तथा योग्यता से राष्ट्र के भावी विकास के लिए आवश्यक सभी बातों की आधारशिलाएं रख दीं। उनके मार्गदर्शन में संविधान बना, योजना आयोग ने कार्य आरंभ किया, महत्त्वपूर्ण उद्योग खड़े किए गए, विविध क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लिए संस्थाएं स्थापित की गईं, समाजवादी ढांचे के विकास का लक्ष्य स्वीकृत किया गया। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उन्होंने गुट निरपेक्ष आंदोलन की जबरदस्त शुरुआत की। सत्रह वर्ष तक वे इन सब कार्यों का संचालन करते रहे।

संविधान सभा— भारत के लिए एक न्यायपूर्ण संविधान बनाने की मांग या लक्ष्य बहुत पुराना कहा जा सकता है। क्रांतिकारियों ने इस विषय पर जो चिंतन किया, वह 1923 में रचित हिंदुस्तान प्रजातांत्रिक संघ के संविधान में प्रतिफलित था। इसमें बताया गया था कि 'फेडरेटेड रिपब्लिक आफ दि यूनाइटेड स्टेट्स आफ इंडिया' यानी भारत के संयुक्त राष्ट्रों का प्रजातांत्रिक संघ स्थापित करना हमारा लक्ष्य है। सरदार भगतसिंह ने इसमें 'समाजवादी' शब्द जोड़कर इसे पूर्णता तक पहुंचा दिया था।

कांग्रेस के अन्दर भी संविधान सभा की मांग बहुत प्रबल थी। 1934 की कांग्रेस कार्यसमिति के एक प्रस्ताव में यह कहा गया : "सरकारी श्वेतपत्र का एकमात्र संतोषजनक विकल्प यह है कि बालिग सार्वजनिक मताधिकार या जहां तक हो सके, उसके आस पास के ढंग से चुनी हुई संविधान सभा होनी चाहिए। यह हो सकता है कि महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्ग अपने लोगों के मत से अपने प्रतिनिधि चुनें।" इसके बाद 1937 में फैजपुर कांग्रेस में, 1938 में हरिपुरा कांग्रेस, और 1939 में त्रिपुरी कांग्रेस में यह मांग दुहराई जाती रही। 1945 के शिमला सम्मेलन में भी कांग्रेस ने यही मांग की थी।

धर्मनिरपेक्ष परम्परा को कायम रखते हुए स्वतन्त्र भारत में डॉ० जाकिर हुसैन, फखरुद्दीन अली अहमद भारत के राष्ट्रपति बने और हिदायतुल्ला पहले न्यायाधीश तथा फिर उपराष्ट्रपति रहे। यह पुस्तक लिखते समय ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्रपति हैं। संविधान सभा ने 9 दिसम्बर 1946 को अपना कार्य शुरू किया था। मुस्लिम लीग ने इसका बायकाट यह कहकर किया कि लीग तो अलग राष्ट्र चाहती है। कई मामलों में संविधान सभा संसद के रूप में रही थी। उस दृष्टि से भारत की यह पहली संसद भी रही। इसी 14 अगस्त की मध्यरात्रि में ब्रिटिश सरकार से शक्ति ग्रहण की। 26 जनवरी 1950 को जो संविधान लागू हुआ, उसके बनने में करीब दो साल लगे। 1949 की 26 नवम्बर

को सविधान का प्रारूप तैयार होकर पारित हो चुका था। 1952 मे नए सविधान के अनुसार चनाव हुए।

सविधान मे सब धर्मों की समानता—1950 को जो सविधान लागू हुआ, उसमे सब धर्मों के मानने वाला को समान अधिकार दिए गए। पाकिस्तान के साथ तुलना करने पर पता चलेगा कि वहा एक तो अधिकाश समय सैनिक शासन रहा, दूसरे भुट्टो के जमाने म (1971 1977) जब एक सविधान कुछ हद तक चला, उसमे भी गैर-मुसलमाना के लिए राष्ट्रपति आदि बनने का कोई अधिकार नही था। हिन्दुओ, ईसाइयो या पारसियो का तो यह अधिकार दिया ही नही गया, अहमदियो को भी 1974 मे एक कानून के द्वारा मुसलमान मानने से इनकार कर दिया गया। अहमदिया कुरान और हजरत मुहम्मद म आस्था रखते है, परन्तु वह यह नही मानत कि हजरत अन्तिम पैगम्बर है। वे मिर्जा गुलाम अहमद का मानते है और उन्हे 'खलीफतुल मसीह' कहते हैं। पाकिस्तान म अहमदियो के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ से ही चल रहा है। 1953 मे अहमदियो के विरुद्ध दगे हुए और ख्वाजा नाजिमुद्दीन को सैनिक कानून लागू करके दगा रोकना पडा था। तब से बराबर अहमदियो का दमन जारी है। बहुत से अहमदिया पाकिस्तान से भागकर शरणार्थी हो गए। वहा न्यायमूर्ति मुनीर की अध्यक्षता मे इस विषय की मीमासा के लिए एक आयोग बैठाया गया। उन्होने उपसहार मे कहा कि मजेदार बात यह है कि कुछ मुल्लाओ के अनुसार जो असली मुसलमान हैं, वही दूसरे मुल्लाओ के अनुसार काफिर हैं।

भारतीय सविधान मे स्त्रिया—भारतीय सविधान मे स्त्रियो को भी हर क्षेत्र में पुरुषो के समान अधिकार दिया गया। यहा ध्यान देने की बात यह है कि कई यूरोपीय देशो म भी स्त्रियो को मतदान का अधिकार भारत के बाद मिला। पाकिस्तान म न तो लोकतन्त्र है, न स्त्रियो को विवाह, तलाक, पर्दा, गवाही के मामले मे कोई अधिकार प्राप्त है।

योजना आयोग—पराधीन भारत म ही काग्रेस के नेताओ का ध्यान योजना बनाकर उन्नति करने की ओर गया था। काग्रेस ने 1938 मे नेहरूजी की अध्यक्षता मे (उस समय सुभाष काग्रेस के अध्यक्ष थे) एक योजना समिति बनाई थी। उसकी काफी मोटी रिपोर्ट निकली थी, जो कई जिल्दो मे छपी। दुर्भाग्य यह रहा कि प्रतिवेदन तैयार हो गए पर इसी बीच नेता जेल पहुच गए। नेहरूजी ने 1 मई 1940 मे कहा था 'स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक राष्ट्र हमारा लक्ष्य है—ऐसा राष्ट्र जिसम राजनैतिक, आर्थिक स्वतन्त्रता होगी। योजना का क्षेत्र उत्पादन वितरण, उपभोग, विनियोग, व्यापार, आय, सामाजिक सेवाओ तथा उन अन्य राष्ट्रीय क्रियाकलापो तक विस्तृत होगा जो परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। योजना का उद्देश्य सारी जनता के भौतिक और सास्कृतिक मानदण्ड का उन्नयन है।"

स्वराज्य के बाद सरकार ने ज्यो ही विभाजन की दुखद मारकाट स छुट्टी पाई, योजना का क्रम चालू हो गया। 1948 मे सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा करते हुए कहा गया कि युद्धोद्योग, अणु ऊर्जा, रेल, कोयला, लोहा इस्पात, हवाई जहाज उद्योग तथा खनिज क्षेत्रो मे सरकार का लगभग एकाधिकार रहेगा।

अप्रल 1950 मे काग्रेसाध्यक्ष की पुकार पर प्रदेश काग्रेस कमेटियो तथा मुख्य मन्त्रियो का जो सम्मेलन हुआ, वह योजना सम्मेलन कहलाया और यह अधिवेशन गोविन्द वल्लभ पत की अध्यक्षता मे हुआ। यही से भारतीय योजना आयोग की नीव पडी। 1951 52 के प्रथम आम चुनाव के घोषणा पत्र मे काग्रेस ने अपनी योजनात्मक आर्थिक

नीति का पुनरुल्लेख किया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि निजी उद्योग रहेंगे परन्तु उन्हें सावजनिक क्षेत्र क साथ तालमेल रखकर चलना पडेगा।

शीघ्र ही पहली पचवर्षीय योजना (1951 55) देश के सामने आई, परन्तु वह बाद की योजनाओ की तुलना मे बहुत छोटी थी। योजना की एक तिहाई रकम खेती मे इस कारण लगाई गई कि विदेशो से खाद्य का आयात रोका जाए। परिवहन और सचार में 23 प्रतिशत व्यय किया गया। पहली योजना काल म राष्ट्रीय आय 18 प्रतिशत बढी। यह और बढती यदि इसी बीच आबादी 6 प्रतिशत न बढ जाती। आबादी की वद्धि को रोकने के लिए दूसरी योजना मे जोरो के साथ परिवार नियोजन की व्यवस्था की गई, जो बाद की योजनाओं मे बढती गई। आबादी म वद्धि हमारी उन्नति म सबसे अधिक बाधक है।

देशी राज्यों वाला बखेडा—यहा हम यह बता दें कि 1947 मे जब भारत को स्वाधीनता मिली, तो दो टुकडो मे बाटने के अतिरिक्त विदेशी शासक हमारे लिए दो समस्याए और छोड गए थे। भारत मे लगभग चौथाई इलाके ऐसे थे, जिनम देशी राजाओ का शासन था। इन राजाओ के साथ अग्रेजो के सधिपत्र थे, जिनकी विशेष शर्तों के अनुसार वे अग्रेजी शासन के अधीन थे। ये देशी राज्य आकार और जनसख्या की दृष्टि से एक गाव से लेकर पूरे प्रात जसे हैदराबाद, त्रिवाकुर आदि तक थे। यदि अग्रेज चाहते, तो कह सकते थे कि भारत सरकार हमारी उत्तराधिकारी होने के नाते सर्वोपरि है, परन्तु उन्होंने ऐसे वक्तव्य दिए जिनके अस्पष्ट वातावरण मे राजाओ और नवाबो को यह गलतफहमी हो गई कि वे चाहें तो स्वतन्त्र रहें और चाहें तो भारत या पाकिस्तान किसी मे भी शामिल हो जाए।

हम बता चुके हैं कि कश्मीर का हिन्दू राजा इसी धारणा के कारण स्वतन्त्र राजा बनने का स्वप्न देख रहा था कि पाकिस्तान ने उस पर हमला कर दिया। तब उसने भारत की मदद मागी। भारत ने यह गुहार सुनी, पर इस शर्त पर कि वहा जनता का यानी जनता की प्रतिनिधि नेशनल कान्फ्रेंस और उनके नेता शेख अब्दुल्ला का शासन हो। राजा को यह मानना पडा और अन्त तक गद्दी भी छोडनी पडी। स्मरण रखने की बात है कि भारत ने मुस्लिम प्रजा का पक्ष लिया न कि हिन्दू राजा का।

प्रजामण्डल—अन्य देशी राज्यो का विलय तरह-तरह के पेंचो के अधीन हुआ। सबसे बडा पेंच था प्रजामण्डलो का। काग्रेस ने देशी राज्यो के आदोलन को अपने से अलग रखा था परन्तु उनमे सर्वत्र प्रजा आदोलन प्रबल था। कई जगह प्रजामण्डल इतने शक्तिशाली थे कि वे चाहते तो बिना बाहरी मदद के अपने राजा या नवाब को आसमान दिखा सकते थे। अग्रेजों के जमाने म राजा या नवाब की सहायता के लिए ब्रिटिश भारत से फौज आ सकती थी, परन्तु अब स्वराज्य के बाद स्थिति बदल गई थी। काग्रेस के नेता सरदार पटेल इस बात को समझते थे। जब उडीसा के राजा विलय के विपक्ष मे कुछ बोले, हरे कृष्ण महताब और सरदार पटेल ने झट कह दिया—'यदि आप हमारे प्रस्ताव को नही मानते तो हम आपके राज्य म कानून और व्यवस्था की कोई जिम्मेदारी नही लेते, आप जानें और आपका काम जाने।" नतीजा यह हुआ कि राजा साहब जल्दी राह पर आ गए।

देशी राज्यो के प्रजामण्डल काग्रेस से अलग होते हुए भी एक हद तक उससे अभिन्न भी थे। जवाहरलाल नेहरू ने 15 फरवरी 1939 को 'अखिल भारतीय प्रजा मण्डल सम्मेलन' के लुधियाना अधिवेशन म कहा था "कुछ लोगो ने देशी राज्यो म चलने वाले आदोलन के प्रति काग्रेस के रुख की समय-समय पर आलोचना की है और हस्तक्षेप

और अहस्तक्षेप के विषय में गर्मागर्मी हुई है। इस सम्बन्ध में आलोचना और तर्क वितर्क पुराने की बात बनकर अब निरर्थक हो चुके हैं। फिर भी संक्षेप में देशी राज्यों के प्रति कांग्रेस की नीति के विकास पर दृष्टिपात वांछनीय है। इस नीति की सारी अभिव्यक्तियों तथा समस्या के कुछ पहलुओं पर ही ज़ोर देना मैंने पसन्द नहीं किया। परन्तु मैं निश्चित हूं कि मौलिक नीति परिस्थितियों को देखते हुए सही रही और बाद का होने वाली घटनाओं से उसका अनुमोदन हुआ है। क्रांति या आमूलचूल परिवर्तन के लक्ष्य के लिए जो कार्यपद्धति अपनाई जाए, उसे वास्तविकता तथा उस समय की परिस्थिति से सम्पर्क रखकर चलना पड़ेगा। डींगमूलक, ज़बानी जमाखर्च या लनतरानी प्रधान सारगर्भहीन प्रस्ताव, जिनका उस समय की परिस्थिति से कोई सामंजस्य नहीं है, क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न नहीं कर सकते। न इसके लिए कृत्रिम रूप से स्थितियां पैदा की जा सकती हैं और न जन आन्दोलन ही चालू किए जा सकते हैं, जब तक कि जनता तैयार न हो। कांग्रेस इस तथ्य से परिचित है और जानती है कि देशी राज्यों की जनता अभी तैयार नहीं है। यह देशी राज्यों के बाहर संग्रामों में अपनी शक्ति लगाती रही, यह समझकर कि इसी उपाय से देशी राज्यों की जनता को अपने लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।"

कांग्रेस की नीति का मंथन करते हुए और स्पष्टता के साथ नेहरू ने कहा 'देशी राज्यों में चलने वाले आंदोलन के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति के विकास में त्रिपुरा का प्रस्ताव एक मील का पत्थर रहा और उसमें हमारी कार्यपद्धति का खुलासा कर दिया गया। जिस स्वतंत्रता के लिए हम लड़ रहे थे, भारत की एकता और अखंडता उसका अपरिहार्य अंग रही और हम यह चाहते रहे कि बाकी भारत को जिस हद तक राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक आज़ादी मिले, देशी राज्यों की जनता को भी उस हद तक आज़ादी प्राप्त हो। इस मामले में कोई समझौता संभव नहीं है।"

दुर्गादास का कहना है कि कांग्रेस देशी राज्यों को अभी छेड़ना नहीं चाहती थी। इन राज्यों में अलवर और भरतपुर थे। महात्माजी की हत्या की जांच करते हुए यह पता लगा कि हत्या वाली पिस्तौल अलवर के महाराजा के शस्त्रागार से आई थी और अलवर में ही गोलियां चलाने का अभ्यास किया गया था। उस समय एन० बी० खरे अलवर के मुख्य मंत्री थे। महात्माजी ने उन्हें मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्रित्व से निकाला था, इसलिए खरे महात्माजी से चिढ़े हुए थे। इन्हीं दिनों अलवर के विशेष प्रशासक ने एक रिपोर्ट यह भेजी कि अलवर और भरतपुर भारत सरकार का तख्ता उलटने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो बात सबसे ज्यादा उनके खिलाफ गई और जिससे नेहरू बहुत कुपित हुए, वह यह थी कि ये राजा अपनी मेव मुस्लिम प्रजा को राज्यों से भगा रहे थे। नेहरू के कारण माउंटबेटन को झुकना पड़ा। राजाओं ने फिर भी षड्यंत्र करना चाहा, परन्तु सरकार को सब खबर मिलती रही और उनकी एक नहीं चली।

राजप्रमुख—भारत सरकार की ओर से कुछ मुख्य देशी राजाओं को राजप्रमुख का पद दिया गया, जिससे उन्हें ऐसा लगा कि उनकी आकांक्षा पूरी हुई और वे भारत में शामिल हो गए।

हैदराबाद—हैदराबाद का किस्सा कश्मीर की तरह था। कश्मीर में प्रजा मुख्यतः मुसलमान थी और राजा हिन्दू था, यहां निज़ाम मुसलमान था और प्रजा हिन्दू। माउंटबेटन 29 जून 1948 को भारत से चले गए और सी० राजगोपालाचारी प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल बने। निज़ाम से कहा गया था कि तुम सीधे से दूसरे राजाओं की तरह भारत में अन्तर्भुक्त हो जाओ, परन्तु वह पाकिस्तानी मनोवृत्ति के

सलाहकारों से घिरा हुआ था।

सरदार पटेल ने अपने खास आदमी के० एम० मुंशी का भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में हैदराबाद भेजा। मुंशी ने रिपोर्ट दी कि प्रजा तैयार है, उसे हथियार मिल जाए तो अभी निजाम औंधे मुंह गिरा दिखाई देगा। पर सरदार ने सलाह नहीं मानी। उनका कहना था कि यदि जबर्दस्ती ही करनी है तो सरकार करेगी।

पुलिस एक्शन—कुछ दिनों बाद भारत सरकार को यह खबर मिली कि निजाम पुर्तगाली सरकार से गोवा खरीदने की बातचीत चला रहा है ताकि समुद्र का रास्ता खुल जाए, जिससे पाकिस्तान के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित हो सके। यह भी पता लगा कि निजाम ने पाकिस्तान को 20 करोड़ रुपये उधार दिए हैं ताकि जिन्ना उसका साथ दे। इस पर नेहरू और पटेल ने सिकन्दराबाद छावनी में फौज भेज दी। फौज के हैदराबाद में घुसने पर 'पुलिस एक्शन' सम्पूर्ण हो गया। इससे पहले दो बार 'पुलिस एक्शन' स्थगित किया गया था। तीसरी बार भी निजाम के अनुरोध पर गवर्नर जनरल नेहरू से कहकर उसे रुकवा रहे थे कि उन्हें बताया गया कि काम तो हो चुका। नेहरू ने 10 सितम्बर को इसकी घोषणा की, 17 सितम्बर को निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस बीच पाकिस्तान ने हैदराबाद 'आक्रमण' पर संयुक्त राष्ट्र में शिकायत उठाई। सोवियत संघ, युक्रेन और चीन निष्पक्ष रहे। 19 सितम्बर को नेहरू ने घोषणा की कि हैदराबाद राज्य के भविष्य का निर्णय वहां की जनता की इच्छा के अनुसार होगा। जिन्ना को कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ सर्वत्र हार खानी पड़ी। यह स्पष्ट है कि जिन्ना किसी सिद्धांत का पाबन्द नहीं था। वह हिंदूप्रधान इलाकों को भी हड़पना चाह रहा था।

आवडी कांग्रेस 1955

पहली योजना-काल में 1955 की जनवरी को कांग्रेस का आवडी अधिवेशन हुआ, जो इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उसमें पहले पहल समाजवादी ढांचे को लक्ष्य के रूप में स्वीकृति दी गई। इस समय तक भारत के फ्रांस शासित इलाके भी भारत में आ चुके थे। अध्यक्ष ढेबर ने इसका उल्लेख करते हुए बताया कि फ्रांस तो मान गया है परन्तु पुर्तगाली अभी तक अड़े हैं। ढेबर ने कहा "पुर्तगाली शासन में पिसते और संग्राम करते अपने भाइयों और बहनों को हम पूर्ण नैतिक समर्थन भेजते हैं। हम पुर्तगाली संस्कृति के विरोधी नहीं, परन्तु भारत की स्वाधीनता का अर्थ है भारत के चप्पे चप्पे जमीन की स्वाधीनता।"

ढेबर के भाषण में स्त्रियों की उन्नति पर विशेष रूप से बल दिया गया। कहा गया कि स्त्रियों की द्रुत उन्नति के बिना देश की आधी शक्ति अपाहिज रहेगी।

समाजवादी ढांचा और समाजवाद—इस अधिवेशन में समाजवादी ढांचे को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। श्री नेहरू 1929 की कांग्रेस में ही अपने को समाजवादी और प्रजातंत्रवादी घोषित कर चुके थे। 'समाजवादी ढांचा' और 'समाजवाद' एक है या भिन्न, इस विषय पर नेहरू ने अप्रैल 1956 में कहा "कुछ लोग समाजवादी ढांचा और समाजवाद में बारीक फर्क बताते हैं पर दोनों एक हैं।

असल में देखा जाए तो लाहौर कांग्रेस से ही कांग्रेस के अन्दर समाजवादी विचार धुधुआते रहे थे खुलकर भभक उठने का मौका अब आजादी मिलने के बाद आवडी में आया।

नेहरू ने समाजवादी ढांचे वाले प्रस्ताव की *व्याख्या करते हुए कहा* 'स्वतन्त्रता

सग्राम के किसी भी सोपान मे हमारी दृष्टि राजनैतिक स्वतत्रता तक सीमित नही रही, बराबर स्वतत्रता की अन्तगत वस्तु मे वृद्धि होती रही। सदा आर्थिक पहलू पर हमारी आखें लगी रही। हम किसान, मजदूर, दलितो और वचितो के विषय मे सोचते रहे। हमने अक्सर यह कहा कि हम ऐसा समाजवादी ढाचा चाहते हैं, जो भारतीय प्रतिभा के अनुकूल हो। हम कल्याणकारी राज्य चाहते हैं। कल्याणकारी राज्य के बिना समाजवादी ढाचा अकल्पनीय है। हम कठिन परिश्रम से ही समाजवाद प्राप्त कर सकते है, न कि प्रस्ताव या सरकारी हुक्मनामे से। हम अधिक से अधिक उत्पादन करें और ठीक से न्यायपूर्ण ढग से वितरण करें। हमारी आर्थिक नीति का उद्देश्य होगा—प्रचुरता।"

काग्रेस का अमृतसर अधिवेशन 1956

1956 म अमतसर मे यू० एन० ढेबर की अध्यक्षता मे काग्रेस का 61वा अधिवेशन हुआ। इस बीच यानी आवडी और अमृतसर के बीच दो महत्वपूर्ण कदम उठाए गए

(क) इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया को सावजनिक व्यवस्था मे लाकर स्टेट बैंक आफ इण्डिया का गठन।

(ख) जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण।

स्वाभाविक रूप से अमृतसर काग्रेस ने इन कदमो का स्वागत किया। इसमे फिर से समाजवादी ढाचे पर जोर दिया गया।

इदौर अधिवेशन 1957

जनवरी 1957 मे इदौर मे अधिवेशन हुआ और इसके अध्यक्ष भी श्री ढेबर ही रहे। इस अधिवेशन म काग्रेस के सविधान मे जहा केवल 'सहकारितामूलक कामनवेल्थ' था, वहा उसमे 'समाजवादी' शब्द जोड दिया गया।

श्री नेहरू ने इस अवसर पर कहा "मैं समाजवाद को एक वृद्धिशील, गतिशील धारणा के रूप मे लेता हू, जो प्रस्तरीभूत अचल अटल न हो, जो मानव जीवन तथा देश की उपलब्धियो के साथ तालमेल रखे।"

गुवाहाटी काग्रेस 1957

काग्रेस का 63वा अधिवेशन गुवाहाटी मे हुआ। इसमे भूमि सुधार पद्धति पर विशेष जोर दिया गया और कहा गया जहा सभव हो, खेतिहरो की सम्मति से सहकारी खेती का प्रवतन किया जाए।

नागपुर काग्रेस 1958

नागपुर मे इन्दिरा गाधी की अध्यक्षता मे काग्रेस का 64वा अधिवेशन हुआ। जिसमे नियोजन पर एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया गया। इसमे कहा गया

1 सावजनिक उद्योग तथा सरकारी व्यापार को बढावा दिया जाए ताकि सावजनिक क्षेत्रो के लिए अधिक साधन प्राप्त हा।

2 आयात पर कडाई से नियत्रण किया जाए ताकि अनावश्यक आयात न हो और विदेशी मुद्रा की बचत हो।

बावजूद वे अपने ही धार्मिक मानदण्डो से भी कतई धार्मिक नहीं थे। वे सब दुश्चरित्र और लम्पट थे। वे धर्म का इस्तेमाल करके अपने शोषण को चिरस्थायी बनाना और मौज उड़ाना चाहते थे।

श्री कुन्हा लिखते है "पुर्तगाली एक तरफ लूट-मार करते और दूसरी तरफ धर्म प्रचार करते थे। इसके लिए उन्हें पोप की सनद प्राप्त थी और वे सारी लड़ाइया ईसाइया के चिह्न क्रास और तलवार के तहत लडते थे। वे भारत में हिन्दू धर्म का अस्तित्व नकारते हुए यह समझकर चलते थे कि यहा सब ईसाई हैं। प्रारम्भ में उनकी धार्मिक घृणा की तोप का मुह मुस्लिमों की तरफ था क्योंकि वे ही उनके प्रतिद्वन्द्वी थे। उन दिनो कुछ इने गिने नस्तोरियन ईसाई यहा थे, जो बाद को कैथोलिक बन गए। पर पुर्तगालियो के दिमाग पर यह जुनून सवार था कि भारत के सब लोग ईसाई ही हैं और इसी पागलपन से परिचालित होकर वास्कोडिगामा ने कालीकट के एक हिन्दू मदिर को ईसाई गिर्जा समझा था और उसके अन्दर प्रतिष्ठित काली की मूर्ति को मरियम समझकर उसे अर्घ्य चढाया था। पुर्तगालियो द्वारा सबसे पहले कुछ वेश्याए ईसाई बनाई गइ। सुन्दरी वेश्याओ को प्रचुर उपहार देकर और धमका कर ईसाई बनाने का उद्देश्य यह था कि पुर्तगाली सैनिक हराम करने से बचाए जाए। गोवा मे अलबुकर्क ने अपने सैनिको की शादी, तुर्की अफसरो की छीनी हुई बीविया और बेटिया से कराई। ये तुर्की अभय देकर जहाज पर सपरिवार बुलाए गए थे। परन्तु पहुचने पर पुरुषो को तलवार के घाट उतारकर उनकी बीविया और बेटियो को सैनिकों के सुपुर्द कर दिया गया।'

सन्त ज़ेवियेर ऐसे लोग भी अत्याचारो के बावजूद ईसाई धर्मप्रचार मे सफल नहीं हुए। इसलिए उन्होंने बराबर पुर्तगाली सम्राट को यह लिखा कि आप अपने गोवा स्थित कर्मचारियो को यह आदेश देते रहें कि उनको तभी सफल प्रशासक माना जाएगा जब वे धर्म का झण्डा फहराने मे अपनी पटुता दिखाए। पादरी जनता पर अनन्त जुल्म करते थे। वे धर्म प्रचार के नाम पर शान शौकत की जिन्दगी बिता रहे। वे कामुक और लोभी थे। अपनी पाशविक वृत्तियो को चरितार्थ करने के लिए वे भारतीयों पर खुलकर अत्याचार करते थे, यहा तक कि ईसाई बनाए गए लोगो का भी नहीं बख्शते थे। 1910 मे पुर्तगाल मे प्रजातन्त्र कायम होने के साथ साथ देश के अन्दर गिरजा और राष्ट्र का अलगाव हो गया, पर पुर्तगाल के भारतीय साम्राज्य मे पादरियो की दुष्टता और मनमानी जारी रही।

1926 मे पुर्तगाल मे फासिस्ट अधिनायकवाद का बोलबाला हुआ। पुर्तगाल मे सब तरह की स्वाधीनता नष्ट हो गई। सारी राजनीतिक पार्टिया निषिद्ध हो गइ। अख़बारो का कण्ठरोध किया गया। गोवा की भाषा कोकणी है। गोवा के बाहर भी 7000 वर्ग मील तक यह भाषा प्रचलित है। भाषा विज्ञान के विद्वान इस भाषा को गोमतकी कहते हैं। पर मराठी भाषी इस मराठी की एक बोली मात्र मानते हैं। गोवा पर चार शताब्दी शासन मे पुर्तगालियो ने कोकणी को खूब दबाया और फिर भी पुर्तगाली शासन काल मे दो या तीन प्रतिशत लोग ही पुर्तगाली का ज्ञान प्राप्त कर सके। पुर्तगाली शासन मे शराब का खूब प्रचार प्रसार हुआ। पुर्तगाली शासन मे सबसे अधिक यानी 20 प्रतिशत राजस्व शराब से आता था। गोवा भर मे शराब के कई कारखाने हैं।

पुर्तगालियो ने 1510 के पहले झोंके मे ही हर मुसलमान को मारकर सारी मस्जिदें तोड दी थी। एक ही दिन मे एक जगह 6000 मुसलमान मार दिए गए थे। मुसलमानो पर इस विशेष अत्याचार का कारण यह था कि वे शासक जाति के समझे जाते थे। मस्जिदो की सम्पत्तिया गिरजा को सौंप कर धर्म का डका बजाया गया। हिन्दुओ की

बारी आई तो घर के अन्दर भी कीर्तन निषिद्ध करार दिया गया, तुलसी का पेड उगाना, धोती या चोली पहनना भी जुर्म बना दिया गया।

जब भारत स्वतन्त्र हो गया, तो गोवावासी बहुत विचलित हुए, पर वे सबसे अधिक विचलित तब हुए जब फ्रासीसियो ने अपने भारतीय उपनिवेशो को भी स्वतन्त्र करके भारत को सौंप दिया।

स्वातन्त्र्य सग्राम—पुर्तगाली यह प्रचार करके दुनिया की आखो मे धूल झोकने लगे कि फ्रासीसी उपनिवेशो से गोवा का मामला भिन्न इस कारण है कि गोवावासियो मे 70 फीसदी जनता पुर्तगाली रक्त की है। परन्तु गोवा के स्वातन्त्र्य आदोलन की विशेषता यह थी कि न केवल इसमे ईसाई पूरी तरह शामिल थे, बल्कि वे बराबर गोवा को भारत का अविच्छेद अग मानकर चल रहे थे। गोवा के स्वातन्त्र्य योद्धाओ का केन्द्र बम्बई था, जहा से उनको धन और प्रचार सम्बन्धी सहायता प्राप्त होती रहती थी। गोवा से फरार लोग बम्बई म बठकर आन्दोलन को बल पहुचाते थे। वही पूरा साहित्य छपता और चोरी से गोवा भेजा जाता। 10 नवम्बर, 1954 को 'मुक्त गोवा' की एक घोषणा म पुर्तगाली साम्राज्यवादियो को यह चेतावनी दी गई कि वे फ्रासीसियो की तरह बिना रक्तपात के गोवा त्याग दें। इस घोषणा के अन्त मे यह कहा गया कि पाण्डिचेरी तथा चन्दन नगर म जिस काय का शुभारम्भ हुआ, उसकी पूर्णाहुति गोवा की स्वतन्त्रता से हो।

यहा यह बता दें कि भारत के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू को जब भी गोवा पर प्रश्न किया जाता, तो वह जो भी कहते, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को देखकर कहते। उससे गोवावासियो को निराशा होती थी। गोवा पर भारत सरकार बहुत देर मे किसी ठोस निणय पर पहुची।

दादरा, नगर हवेली स्वतन्त्र—1954 म गोवा के काग्रेसी भी समझ गए कि केवल प्रस्तावो से कुछ नही होगा। पीटर अल्वारिस के नेतृत्व मे फिर से जोरो के साथ सगठन चालू हुआ। एक नई समिति बनी जिसके अध्यक्ष पुडलिक गायतोडे बने। पुर्तगाली पुलिस को पता लगा और पुडलिक गायतोडे को पकडकर पुर्तगाल की जेल मे भेज दिया गया। गोवा के स्वातन्त्र्य योद्धा बम्बई और गोवा के बीच दौडने लगे। बम्बई मे 'आजाद गोवा' का दफ्तर खुले आम काय कर रहा था। तय हुआ कि दादरा तथा नगर हवेली को पहले चरण मे मुक्त किया जाए। पर प्रश्न था कि क्या बम्बई के सर्वेसर्वा मोरारजी देसाई इसे स्वीकार करेंगे? उनसे क्रान्तिकारी बात करने लगे। बडी कठिनाई से मोरारजी तयार हुए, तब 1954 मे 22 जुलाई को दादरा नगर हवेली को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया। बम्बई के गरम दलीय नेताओ के सहयोग से यह सम्भव हुआ।

गोवा मुक्त—पर यह तो प्रतीकात्मक विजय थी। आजाद गोमन्तक (नेता विश्वनाथ लावन्दे) और गोवा लिबरेशन आर्मी (नेता शिवाजी देसाई) ये दो क्रान्तिकारी दल बराबर काय कर रहे थे, पर कोई भी क्रान्ति या मुक्तिपव तब तक सफल नही हो सकता, जब तक कि सेना को मिला न लिया जाए। यह शर्त यहा पूरी नही हो सकती थी, क्योकि सेना पुर्तगाली थी। दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो गोवा की मुक्ति बहुत कठिन थी। अन्तर्राष्ट्रीय जनमत से कुछ आशा करना गलत था, क्योकि उस पर साम्राज्यवादियो का कब्जा था। फिर भी दादरा नगर हवेली की स्वाधीनता के बाद हवा ऐसी बनती चली गई कि भारत सरकार ने 19 दिसम्बर, 1961 को गोवा के भीतर अपनी फौज भेजनी पडी और करीब-करीब बिना रक्तपात के गोवा आजाद कर दिया गया। अगुआदा पढ़ म जो छोटे मोटे स्वातन्त्र्य योद्धा बन्द थे वे मुक्त कर दिए गए, परन्तु कई महत्त्वपूर्ण

व्यक्ति पुर्तगाल की जेलो मे पडे थे, वे नही छोडे गए। कथित अन्तर्राष्ट्रीय जनमत गोवा के हमले पर खूब शोर मचाता रहा, परन्तु इन कैदियो के लिए किसी ने कुछ नही कहा। बहुत बाद मे वे पुर्तगाल की जेलो से सजा की अवधि पूरी करने के बाद रिहा किए गए।

गोवा अधिग्रहण की निन्दा - अनेक देशो और पाकिस्तान मे इस घटना की यह कहकर निन्दा की गई कि भारत विस्तारवादी और साम्राज्यवादी है और वह गाधी के आदर्शों से गिर चुका है। पुर्तगाल को भडकाया गया कि वह अपना बडा बेजबर फिर से गोवा पर अधिकार जमा ले। परन्तु पुर्तगाल ने यह बेवकूफी नही की। किसी सभ्य देश ने यह नही कहा कि इस विषय पर गोवा वालो की भी राय ली जाए।

चीनी आक्रमण गोवा को आजाद कराने के बाद सबसे बडी घटना चीनी आक्रमण है, जो 1962 के 19 अक्टूबर को एकाएक बिना मेघ के वज्रपात की तरह घटित हुआ क्योकि देश मे बराबर वर्षों मे 'चीनी हिन्दी भाई भाई' का नारा गूज रहा था।

भारत और चीन म सैकडो वर्षों की दोस्ती और आदान प्रदान रहा है। स्वतन्त्रता सग्राम के दौरान चीन के नेता सुन यातसेन की जीवनी उसी चाव से भारत म पढी जाती थी, जैसे इटली के मैजिनी, गैरीबाल्डी, और आयरलैंड के डि वेलेरा डानब्रिन की जीवनी पढी जाती थी। जब 1949 मे चीन म माओ त्से तुग के नेतृत्व मे क्रान्ति हुई, तब से भारत की परम्परागत दोस्ती और प्रबल हो गई चीन भी पूरी तरह ईमानदार रहा। इसका एक प्रमाण यह है कि एक बार जब नेपाल के प्रधानमत्री तनखाप्रसाद आचार्य ने सरकारी भोज मे नेपाल चीन की दोस्ती का नारा दिया तो माओ ने जो उस भोज मे उपस्थित थे, वक्तव्य को सुधारते हुए कहा—'नेपाल चीन भारत की दोस्ती।' प्रसिद्ध पत्रकार दुर्गादास ने अपनी पुस्तक *'इण्डिया फ्राम कर्जन टु नेहरू ऐण्ड आफ्टर'* मे इस घटना का उल्लेख किया है।

दोनों देशो मे सब कुछ ठीक चलता रहा। हा, सीमान्त पर कुछ आलोचना होती रही। नेहरू चाहते थे कि चीन मैकमोहन रेखा को मान्यता दे, पर चाऊ एन लाई बदले मे *अक्साइ चिन का इलाका चाहते थे। नेहरू को इनमे विशेष आपत्ति नही थी क्योकि,* जैसा कि उन्होने कहा, उस इलाके मे घास की एक पत्ती भी नहीं उगती। परन्तु जाने कैसे इसकी भनक विरोधी पक्ष के कानो मे पहुच गई। बस ससद मे बावेला मच गया कि देश को बेचा जा रहा है। नतीजा यह हुआ कि चीन और भारत की बातचीत मे जिद पदा हो गई।

परन्तु किसी को भारत पर चीनी आक्रमण का भय नही था। इसलिए जब आक्रमण हुआ, वह आकस्मिक लगा। भारत इसके लिए तैयार नही था, न मानसिक रूप से, न सैनिक रूप से। नतीजा यह हुआ कि चीन भारत मे घुस आया। पर वह बहुत आगे न बढकर लौट गया। क्यो लौटा, इस पर बहुतो का कहना है कि चीन भी इससे ज्यादा के लिए तैयार नही था।

जो हो चीन के इस काय से भारत की जगहसाई हुई और लोग इतने नाराज हुए कि नेहरू को रक्षामत्री मेनन को मत्रिमण्डल से निकालना पडा। मेनन योग्य पर जिद्दी व्यक्ति थे। इसके बाद सुरक्षा उद्योग का जो सिलसिला चला, उसका परिणाम यह हुआ कि तीन वर्ष बाद 1965 मे जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया तो भारत सामना करने के लिए तैयार था। इस दृष्टि से देखा जाय तो चीनी आक्रमण ने हमे सैनिक रूप से जगाकर हमारा कल्याण ही किया।

तथा संविधान के नियामक सिद्धांतों की याद दिलाते हुए समाजवादी लक्ष्य की ओर भुवनेश्वर में विशेष ध्यान दिलाया गया। कामराज ने आशा प्रकट की कि वर्ग संघर्ष के बिना भी हम समाजवाद प्राप्त कर सकते हैं।

भुवनेश्वर में जो प्रस्ताव पारित हुए, उनमें और बातों के अलावा सार्वजनिक सेवाओं में लगे हुए लोगों की मनोवृत्ति बदलने की बात भी कही गई। यह महसूस किया जा रहा था कि नौकरशाही अड़गेबाजी कर रही है।

जवाहरलाल नेहरू का देहान्त—1962 के मार्च में ही नेहरू का स्वास्थ्य जवाब देने लगा था, पर कोई गंभीर बात नहीं थी। चीनी आक्रमण का उनके मन और स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा था। मना करने पर भी वे भुवनेश्वर कांग्रेस में गए और 27 मई, 1964 को वहीं उनका देहान्त हो गया। श्री नेहरू 17 साल तक भारत के प्रधानमंत्री रहे। जब से सरदार पटेल का देहांत हुआ था, तब से वही शासन तथा कांग्रेस संस्था में सर्वोपरि थे।

नेहरू की वाणी—नेहरूजी ने 1949 में, जब भारत का विधान तैयार हो रहा था, लाल किले से कहा था "मुझे हिन्दुस्तान में यकीन है। मुझे भारत के भविष्य में भरोसा है कि आइंदा इसकी शक्ति बढ़ेगी और शक्ति खाली इस तरह से नहीं बढ़ेगी कि वह एक फौजी शक्ति हो। ठीक है, एक बड़े देश की फौजी शक्ति भी होनी चाहिए लेकिन असल ताकत होती है उसकी काम करने की शक्ति, उसकी मेहनत करने की शक्ति। अगर हम इस देश की गरीबी को दूर करेंगे तो कानूनों से नहीं, शोर गुल मचा के नहीं, शिकायत करके नहीं, बल्कि मेहनत करके। एक एक आदमी, बड़ा और छोटा, मर्द औरत और बच्चा मेहनत करेगा। हमारे लिए आराम करने का समय नहीं है। स्वराज्य आया आजादी आई तो यह न समझिए कि हमारे आपके आराम करने का समय आया है। नहीं, यह मेहनत करने का समय आया है। लेकिन पहले की उस मेहनत में और आज की इस दूसरी मेहनत में एक बड़ा फर्क है। वह मेहनत है एक गुलाम की मेहनत, यह मेहनत है निर्माण के लिए आजाद आदमी की मेहनत। हम अपने घर को बनाना है अपने देश को बनाना है और आइंदा नसलों के लिए एक बड़ी मजबूत इमारत खड़ी करनी है। यह मेहनत एक शुभ मेहनत है अच्छी मेहनत है जो दिल को भाती है। और फिर इस मेहनत में एक एक इंट और एक एक पत्थर जो हम रखते हैं, याद रखिए हम और आप गुजर जाएंगे, लेकिन वे ईंटें और पत्थर कायम रहेंगे और आइंदा सैकड़ों बरस बाद भी वे एक यादगार होंगे और दुनिया के सामने और हमारी आइंदा नसलों के सामने इस शक्ल में होंगे कि एक जमाना आया था जब कि आजाद हिंदुस्तान की बुनियाद इस तरह से पड़ी और जब इस तरह मेहनत से, पसीने से, खून बहाकर भारत की यह इमारत बनी।

इसमें संदेह नहीं कि गांधीजी ने यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि नेहरू अनेक मामलों में उनके साथ मतभेद रखते हैं, उन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाया था क्योंकि कांग्रेस के सारे नेताओं में वही युग के लिए सबसे उपयोगी थे। नेहरूजी ने मार्शल टीटो के साथ मिलकर जिस गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का प्रारम्भ किया, वह लालबहादुर शास्त्री और इंदिरा गांधी के हाथों पलकर विश्व शांति की रक्षा में सबसे बड़ा घटक बन चुका है इसमें कोई संदेह नहीं।

14

इन्दिरा शासन की उपलब्धिया

नेहरू जी के पश्चात देश की बागडोर श्री लालबहादुर शास्त्री के हाथ मे आई, और यद्यपि भारत पाक युद्ध मे उनका नेतृत्व बहुत सफल रहा, परन्तु उनका देहान्त भी शीघ्र ही हो गया। उनके पश्चात श्रीमती इन्दिरा गाधी प्रधान मत्री बनी, जो जनता शासन के कुछ वर्षों को छोडकर, 1984 के अन्त मे, सिख आतकवादियो के द्वारा उनकी हत्या किए जाने के समय तक, इस पद पर बनी रही। देखा जाय तो लगभग इसी समय काग्रेस की शताब्दी भी पूर्ण होती है। इन्दिरा शासन मे देश ने विकास के न केवल नए कदम उठाए, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे भी महत्वपूर्ण सफलताए अर्जित की।

लालबहादुर शास्त्री—नेहरू के बाद बने भारत के प्रधान मत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री तपे हुए स्वातत्र्य योद्धा थे, साथ ही उच्च पदो पर योग्यता से काम कर चुके थे। वह उत्तर प्रदेश मे गोविन्द वल्लभ पन्त के सचिव रहे थे, फिर केन्द्र मे रेल मत्री रहे। यो मोरारजी देसाई प्रधान मत्री होना चाहते थे, परन्तु काग्रेसाध्यक्ष कामराज लालबहादुर के पक्ष मे थे। लालबहादुर के मधुर स्वभाव के कारण कुछ लोग उनका अवमूल्यन भी करते थे, परन्तु पहली बार जब वह लाल किले से बोले तो लोगो ने उन्हे सही पहचाना उन्होने पाकिस्तान को चेतावनी दी कि किसी प्रकार की गलत हरकत बर्दाश्त नही की जाएगी। पाकिस्तान को पटन टैंक आदि बराबर मिल रहे थे और उसकी ओर से कश्मीर का प्रश्न उठाया जा रहा था।

कश्मीर समस्या—शेख अब्दुल्ला 11 वर्ष नजरबन्द रहने के बाद (उन पर हर महीने 14 हजार रुपये खर्च होते थे) 8 अप्रल, 1964 को छोडे जा चुके थे। पहले शेख कुछ नाराज रहे पर नेहरू के हार्दिक व्यवहार से वह जल्द ही समझ गए कि पाकिस्तान मे मिलना कश्मीर के लिए आत्महत्या होगी। पर वह सहसा कुछ फैसला न कर सके। वह बीच मे यह भी सोचते रहे कि भारत, पाक और काश्मीर मिलकर एक सघ बना लें। पाकिस्तानी तानाशाह अयूब ने अपनी आत्मकथा 'फ्रेंड्स नाट मास्टर्स' (एक अमरिकन पत्रकार की कलम की करामात) मे लिखा है 'शेख अब्दुल्ला मेरे पास भारत, पाक और कश्मीर के कनफेडरेशन का बकवासी प्रस्ताव ले आया था।' परन्तु इस सम्बन्ध मे पूछे जाने पर अब्दुल्ला ने कहा, "मैंने कोई विशिष्ट प्रस्ताव नही रखा था।"

मूए मुकद्दस (पवित्र केश) काड—1963 के दिसम्बर मे नेहरूजी के जीवन काल मे श्रीनगर की हजरतबल मस्जिद से पैगम्बर का पवित्र केश गायब हो गया था। इसका दुरुपयोग कर साम्प्रदायिक वैमनस्य पैदा किया गया, यहा तक कि कलकत्ते तक मे दगे हो गए। कश्मीर मे भी गडबड हुई। कश्मीर के नेता एक दूसरे पर दोष लगाते रहे। पवित्र केश के चोर उसे तस्करी से पाकिस्तान भेजते हुए पकडे गए, पर मौलवी फारूक ने यह कहकर मामले को और जटिल बना दिया कि यह असली केश नही है। नेहरूजी के

प्रतिनिधि के रूप मे लालबहादुर शास्त्री ने इस अवसर पर बडी बुद्धिमानी से देश की शनाख्त कराई और इस प्रकार भारत के दुश्मनो को झगडा कराने के एक बहाने से वचित कर दिया। इस समस्या को सफलतापूवक निपटाने के लिए लालबहादुर शास्त्री की बहुत सराहना हुई थी।

कुछ भी हो, नेहरूजी के देहान्त से इस दिशा म प्रगति रुक सी गई।

कच्छ मे गडबड—1965 के जनवरी अप्रैल मे पाकिस्तान ने कच्छ इलाके (3500 वग मील) मे गडबड शुरू कर दी। शीघ्र ही यहा फौज भी आ गई और पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध उन अमेरिकी अस्त्रो का उपयोग किया, जिनके सम्बन्ध मे वह कह चुका था कि ये भारत के विरुद्ध इस्तेमाल के लिए नही, बल्कि साम्यवादी आक्रमण रोकने के लिए हैं। विदेशी पत्रो ने इस मुठभेड का हमेशा की तरह बहुत गलत वणन प्रकाशित किया। इस झगडे के तुरन्त बाद शास्त्री जी और पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब राष्ट्रमडल सम्मेलन के सिलसिले मे लदन गये। ब्रिटिश प्रधान मत्री विलसन के बीच म पडने के कारण 30 जून 1965 को सामयिक युद्ध विराम हो गया।

1965 का युद्ध—नेहरूजी का देहान्त 27 मई 1964 को हुआ और ख्रुश्चेव अक्टूबर मे निष्कासित हुए। पाकिस्तान भीतर ही भीतर कश्मीर पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था। प्रशिक्षित घुसपैठिए कश्मीर म घुस आए। अयूब को विश्वास था कि कश्मीरी विद्रोह मे उठ खडे होगे, पर ऐसा कुछ नही हुआ। इस पर पूरी लडाई छिड गई जो 1 से 23 सितम्बर 1965 तक चली। इसमे 2226 भारतीय सनिक खत रहे और करीब 8 हजार घायल हुए। पाकिस्तान के 5800 सनिक मारे गए। दोनो पक्षो ने जीत का दावा किया।

ताशकन्द सन्धि—सोवियत रूस ने भारत तथा पाकिस्तान के इस युद्ध म सम झौता कराने का प्रयत्न किया और ताशकन्द म दोनो देशा के नेताओ को बुलाया। 10 जनवरी, 1966 को सोवियत राष्ट्रपति कोसिजिन की मध्यस्थता म शास्त्री और अयूब ने ताशकद म सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए जिसमे शान्तिपूण उपायो से झगडे मिटाने, 25 फरवरी 1966 तक 1965 के 5 अगस्त की स्थिति मे वापस जाने, युद्ध बन्दी वापस करने तथा एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार न करने के वादे किए गए।

शान्तिदूत शास्त्री की मत्यु - परन्तु इस वार्ता के तुरत बाद 10 11 जनवरी की रात को लालबहादुर शास्त्री की ताशकन्द म ही एकाएक मत्यु हो गई। अयूब तक ने माना कि शास्त्रीजी आतरिक रूप से शाति चाहते थे। परन्तु एक आदमी इस सधि से सतुष्ट नही था और वह था भुट्टो। वह समझता था कि शास्त्रीजी ने आडम्बर का ढोग रचकर अयूब को बेवकूफ बनाया।

इदिरा गाधी प्रधान मत्री लालबहादुर शास्त्री के बाद इदिरा गाधी प्रधान मत्री बनी। इससे पहले वह काग्रेस की अध्यक्षा रह चुकी थी। उनके जमाने म महाराष्ट्र और गुजरात अलग राज्य बने और केरल के साम्यवादी मत्रिमण्डल का पतन हुआ। वो भी वह बराबर अपने पिता की कई तरह म सहायता करके उनके कार्यों के बोझ को कम करती रही थी। प्रधान मत्री नेहरू की मजबान का काम तो वह करती ही थी। कहते हैं, इन्दिरा जी के प्रभाव पर ही कामराज योजना के अन्तगत स्वेच्छा से सेवानिवृत्त लाल बहादुर को फिर से मत्री बनाया गया था। यह भी कहा जाता है कि जब नेहरूजी को अन्तिम रोग पकडा तो इन्दिराजी ने स्वय लालबहादुर को बुलाया था। फिर वह लाल बहादुर के मत्रिमण्डल म सूचना और प्रसारण मत्री बनी। अब प्रधान मत्री पद के लिए बाकायदा चुनाव हुआ और काग्रेस दल के बहुमत्यक मत के आधार पर वे प्रधान मत्री

बनी। उनके प्रतिद्वन्द्वी मोरारजी देसाई को 169 और स्वयं उन्हें 355 मत मिले थे।

कांग्रेस का विभाजन

निजलिंगप्पा कांग्रेस अध्यक्ष और जाकिर हुसैन राष्ट्रपति—कामराज के बाद एस निजलिंगप्पा कांग्रेस के अध्यक्ष बने। जनवरी, 1968 में हैदराबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, और फिर अप्रैल 1968 में हुई फरीदाबाद कांग्रेस तक यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस के कई पुराने नेता इंदिराजी के साथ नहीं चलेंगे। डाक्टर जाकिर हुसैन राष्ट्रपति चुने जा चुके थे। इससे पहले वह उपराष्ट्रपति थे। वह महात्मा गांधी के अनुयायी थे और जामिया मिलिया के सर्वेसर्वा थे।

मध्यवर्ती चुनाव में कम सफलता—1967 के चुनाव में कांग्रेस उतनी सफल नहीं रही। 510 सदस्यों की लोकसभा में उसे केवल 279 स्थान मिले। इस पर मतभेद रहा कि कांग्रेस क्यों हारी, अपनी गरम नीतियों के कारण या और किसी कारण।

विरोध स्पष्ट—कांग्रेस के 1969 के अधिवेशन में अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में खुलकर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों पर जबरदस्त हमला किया जिससे यह स्पष्ट हो गया कि इंदिराजी में पुराने नेताओं के मतभेद बढ़ रहे हैं। इंदिरा विरोधी समाजवादविरोधी भी थे और अब उनकी वास्तविकता सामने आ गई।

झगड़ा बढ़ गया—जुलाई 1969 में बंगलौर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जिसमें इंदिरा गांधी की बैंकों के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी योजना के विरोध में एस० के० पाटिल और मोरारजी देसाई खुलकर सामने आए। इस विरोध के बावजूद योजना अनुमोदित हो गई। पर यहां एक दूसरे मामले में विरोध और बढ़ गया। राष्ट्रपति जाकिर हुसैन की इस बीच असामयिक मृत्यु हो गई जिसके कारण अगला राष्ट्रपति कौन होगा, यह समस्या उठ खड़ी हुई। इंदिरा गांधी ने पहले वी० वी० गिरि, फिर जगजीवन राम का नाम रखा और कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने संजीव रेड्डी का नाम रखा। 13 जुलाई, 1969 को कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने बाकायदा घोषणा की कि संजीव रेड्डी कांग्रेस के उम्मीदवार हैं। इसी के साथ वी० वी० गिरि ने भी घोषणा कर दी कि मैं भी उम्मीदवार हूं।

इंदिरा गांधी ने समझ लिया कि अब लड़ाई रोकी नहीं जा सकती। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वह बैंकों के राष्ट्रीयकरण की अपनी नीतियों पर डटी रहेंगी। उन्होंने कहा, एकता जरूरी है, पर एकता का कोई लक्ष्य भी होना चाहिए।

मोरारजी अलग—19 जुलाई 1969 को मन्त्रिमण्डल की एक महत्वपूर्ण बैठक के बाद बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा करके एक अध्यादेश के द्वारा देश के प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इससे कांग्रेस के अन्दर के समाजवाद विरोधी तत्त्व बहुत क्षुब्ध हुए।

गिरि की विजय—13 अगस्त को इंदिरा गांधी ने राष्ट्रपति के चुनाव का मामला अपने हाथ में लिया। इस बीच जनसंघ और स्वतन्त्र दल ने संजीव रेड्डी का और खंडित कम्युनिस्ट दलों ने गिरि का समर्थन किया। फखरुद्दीन अली अहमद और जगजीवन राम ने कहा कि जनसंघ और स्वतन्त्र दल द्वारा संजीव रेड्डी का समर्थन उन्हें एक विशिष्ट वर्ग में खड़ा कर देता है। इंदिरा गांधी तथा समाजवादी ढांचे के समर्थकों ने वी०वी० गिरि को अपना समर्थन घोषित किया। यह नौबत आ गई कि कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा प्रधान मंत्री के विरुद्ध अनुशासन भंग की कार्रवाई की धमकी देने लगे। परन्तु इंदिरा जी ने समर्थन वापस नहीं लिया और चुनाव होने पर गिरि जीत गए।

विखडन पूर्ण हुआ—19 अक्टूबर 1969 को यशवंतराव चव्हाण, फखरुद्दीन अली अहमद, जगजीवनराम तथा उमाशकर दीक्षित के हस्ता रो से यह माग की गई कि शीघ्र अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई जाए ताकि 1969 के अ त से पूर्व काग्रेस के नए अध्यक्ष का चुनाव हो सके। निजलिंगप्पा ने इस बीच फखरुद्दीन अहमद और सुब्रह्मण्यम को काग्रेस की कार्यसमिति से निकाल दिया। शकर घोष के अनुसार, 12 नवम्बर, 1969 को काग्रेस का विभाजन उसी समय हो गया समझना चाहिए, जब निजलिंगप्पा ने इदिरा गाधी को दल से निष्कासित करना चाहा, परन्तु पूर्णाहुति बम्बई काग्रेस के दिसम्बर अधिवेशन म तब हुई जब जगजीवनराम नए अध्यक्ष चुने गए। इस घटना के बाद बाकायदा दो काग्रेस बन गई—नई और पुरानी—और दोनो स्वतत्र रूप से काय करने लगी। काग्रेस क सपूर्ण इतिहास म सस्था का यह पहला स्पष्ट विभाजन था। इससे पहले लोग काग्रेस से अलग होकर अपनी अलग सस्था बना लेते थे परन्तु अब काग्रेस नाम मे ही 'नई' और 'पुरानी' जोड दिया गया। यह नेतत्व की लडाई के साथ नीतियो की भी लडाई थी।

सर्वोच्च अदालत मे मुठभेड—बैंको के राष्ट्रीयकरण का मामला अदालत में ले जाया गया। फरवरी 1970 म फैसला देते हुए भारत की सर्वोच्च अदालत ने कहा कि बैंको का राष्ट्रीयकरण पक्षपातमूलक है और क्षतिपूर्ति अपर्याप्त है। इस फसले को काटने के लिए केन्द्रीय सरकार को नए कानून बनाने पडे। देश की अदालत प्रगति को बढावा दे सकती है और रोक भी सकती है। यह समझना भूल है कि न्यायालय म हमेशा न्याय ही होता है। इसी तरह का एक और उदाहरण यह है कि जब अमरिका म दासप्रथा खत्म कर दी गई, तो दासप्रथा के पक्षधरो ने वहा की सर्वोच्च अदालत म मुकदमा कर दिया। तब मुख्य न्यायाधीश टनी ने दासप्रथा के समर्थन म यह कहकर फसला दिया कि दास प्रथा बन्द करना गरकानूनी है क्योकि दास तो व्यक्ति की सम्पत्ति है और बिना उचित कानूनी कारवाई के छीने नही जा सकते।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना—तृतीय पचवर्षीय योजना की अवधि 1966 म समाप्त हो गई थी। अब चौथी योजना (1969 1974) पेश हुई जिसमे आर्थिक वृद्धि का लक्ष्य 5 5 प्रतिशत रखा गया।

राजाओं के भत्तों का प्रश्न—मई 1970 मे लोकसभा ने राजा को दिए जाने वाले भत्तो तथा दूसरी रियायतो को बन्द कर दिया। परन्तु राज्य सभा मे यह प्रस्ताव गिर गया। तब इन्दिरा गाधी ने मध्यावधि चुनाव का यह कह कर एलान किया कि जनता से फिर एक बार आदेश लेना है कि हम किस दिशा मे जाए।

चुनाव से असली नकली का पता—नए चुनाव मे काग्रेस के विरुद्ध काग्रेस की लडाई हुई यानी नई काग्रेस और पुरानी काग्रेस की। लोकसभा मे नई काग्रेस को 515 मे से 350 स्थान मिले। पुरानी काग्रेस के पास चुनाव से पहले 65 स्थान थे, अब केवल 15 स्थान मिले। यह भी स्पष्ट हो गया कि जनता ने असली काग्रेस किसे माना।

पाकिस्तान का विखडन—इधर काग्रेस के अन्दर यह सब हो रहा था उधर पाकिस्तान मे ऐसी घटनाए हो रही थी जिनका भारत पर बहुत असर होता था। दिसम्बर 1970 म पाकिस्तान म वालिग मताधिकार पर आधारित पहला चुनाव हुआ। उसमे पूर्व के नेता शेख मुजीब तथा उनके अवामी दल को सारे पाकिस्तान मे बहुमत मिला, परन्तु सेनापति याह्या खा और जुल्फिकार अली भुट्टो ने इस परिणाम को मानने से इस कारण इनकार कर दिया क्योकि तब मुजीब को प्रधान मन्त्री बनाना पडता जिसे वे किसी भी स्थिति मे नही चाहते थे। पाकिस्तान मे पजाबियो का ही

बोलबाला था और वे बंगाली या सिंधियों को पसन्द नहीं करते थे। बंगाली मुसलमानों ने इस अन्याय से लड़ने के लिए मुक्ति वाहिनी का गठन किया।

इधर 30 जनवरी 1971 को भारतीय वायुसेना का एक जहाज हाइजैक करके लाहौर ले जाया गया और टी० वी० कैमरों के सामने उसे नष्ट कर दिया गया। भारत ने प्रत्युत्तर स्वरूप अपने देश के ऊपर से पाक हवाई जहाजों का उड़ना बन्द कर दिया। फिर पाक सेना ने ईस्ट बंगाल रेजिमेंट और ईस्ट बंगाल राइफल्स पर हमला कर दिया। गृहयुद्ध शुरू हो गया और पूर्व बंगाल की मुक्ति वाहिनी ने जबरदस्त मोर्चा लिया। अवामी लीग ने 26 मार्च को चटगांव रेडियो से स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। 31 मार्च को भारत की संसद ने पूर्व बंगाल के लोगों के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। फिर तो पूरा ही युद्ध छिड़ गया। 4 दिसम्बर तक भारतीय वायुसेना ने नये बांगला देश के आकाश को पाक सैनिक जहाजों से मुक्त कर दिया। 16 दिसम्बर तक पाक सेनापति नियाजी ने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। उसी दिन सन्ध्या समय इन्दिरा गांधी ने संसद में घोषणा की कि अब ढाका एक स्वतन्त्र देश की राजधानी है। 90 हजार पाक सैनिक युद्ध बन्दी बनाए गए। पाक सेना ने लाखों बंगाली मारे थे और दो लाख स्त्रियों के साथ बलात्कार किया। इस प्रकार सबसे बड़ी बात जो हुई, वह यह कि दो राष्ट्र सिद्धान्त का सारे संसार के सामने व्यवहारिक भंग हो गया। *यह भी स्थापित हो गया कि इस्लाम राष्ट्र का आधार नहीं हो सकता।*

भारतीय सेना लौटी—भारतीय सेना बांगला देश को स्वतन्त्र कर 12 मार्च, 1972 को लौट आई। पाकिस्तान के युद्ध बन्दी भारत में रहे। उनके साथ जेनेवा कन्वेंशन के अनुसार व्यवहार हुआ। भारत ने उन पर 36 37 करोड़ रुपये खर्च किए। मुजीब पहले कुछ युद्ध बन्दियों पर बलात्कार, हत्या के मुकदमे चलाना चाहते थे, पर अन्त तक उन्होंने कुछ नहीं किया। उन्होंने 9 जून 1972 को कहा था "मुकदमे न चलाने का प्रश्न ही नहीं उठता। 30 लाख लोगों की बेरहमी से हत्या की गई, दो लाख ललनाओं के साथ पाक सैनिकों ने बलात्कार किया। एक करोड़ आदमी भारत चले गए, डेढ़ करोड़ भयग्रस्त होकर इधर से उधर भागते रहे। संसार जाने तो कि क्या हुआ था।"

शिमला समझौता—भारत अपने पड़ोसी पाकिस्तान के साथ शांतिपूर्वक रहना चाहता था। यह था कारण कि बाद बने वहां के नए राष्ट्रपति भुट्टो और प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी में शिमला में पंचदिवसीय वार्ता के बाद एक समझौता हुआ, जिसमें यह संकल्प किया गया कि भविष्य में सारे मतभेद और झगड़े शांतिपूर्ण तरीके से निबटाए जाएंगे। कुछ समय बाद भुट्टो की सरकार उलट गई और उन्हीं के द्वारा बनाए गए राष्ट्रपति जिया उल हक ने उन्हें 1977 में फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया। तब से शिमला समझौता खटाई में पड़ गया।

1972 की कांग्रेस—1972 में शंकरदयाल शर्मा की अध्यक्षता में कांग्रेस का 74वां अधिवेशन हुआ। इसमें उन्होंने कहा कि 1972 के चुनाव में जनता ने कांग्रेस में जबरदस्त आस्था प्रकट की है। हम संविधान के 26वें संशोधन द्वारा राजाओं की निजी थैलियां तथा रियायतों को खतम कर चुके हैं। अन्न का उत्पादन शिखर पर पहुंच गया है। सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया है। कोकिंग कोयला खानें भी अधिगृहीत हो चुकी हैं और विदेशी व्यापार के कुछ हिस्से सरकारी नियन्त्रण में आ चुके हैं। उन्होंने बंगबंधु मुजीबुरहमान को बधाई देते हुए कहा कि हम चाहते हैं कि बांगला देश फले फूले।

गुजरात विधान सभा टूटी—कांग्रेस कुछ दलों को तथा भारत के कुछ नेताओं को, जिनकी वैयक्तिक उच्चाकांक्षाएं लोकतांत्रिक तरीकों से पूरी नहीं हुई थी, बहुत अखर रही थी। 1973 तक देश में तरह-तरह के आन्दोलन चल पड़े। गुजरात में ऐसे बहुत से लोग प्रबल हो गए और वे विधायकों को धमकाने लगे। गुजरात विधान सभा बाकायदा चुने हुए लोगों की संस्था थी परन्तु आन्दोलनकारी इतने आक्रामक हो गए कि विधान सभा भंग कर दी गई।

बिहार विधान सभा को तोड़ने का क्रम—गुजरात की स्थिति से प्रेरित होकर जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में भ्रष्टाचार के विरुद्ध ज़बरदस्त आन्दोलन शुरू हुआ। जनसंघ भी इसमें शरीक हो गया। जुलाई, 1974 में दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में यह प्रस्ताव पारित हुआ "देखने में तो ये आन्दोलन जनता का असन्तोष व्यक्त करने के लिए हैं, पर असल में इनका उद्देश्य है उत्पादन को पक्षाघातग्रस्त करके राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विध्वस्त करना। यह फासिस्टवाद तथा उग्र दक्षिण पक्ष की सुपरिचित नीति है।"

देवकान्त बरूआ कांग्रेस अध्यक्ष—अक्टूबर, 1974 में देवकान्त बरुआ कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। उन्होंने कांग्रेसजनों से कहा कि आप जनता के बीच में जाएं और उनके दुख दर्द से परिचय प्राप्त कर उसके निवारण में लग जाएं।

नरोरा शिविर—नवम्बर 1974 में उत्तर प्रदेश के नरोरा शिविर में राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं पर बातचीत हुई और तय हुआ कि ऐसे शिविर सर्वत्र जिला स्तर पर हों जिससे लोगों को पता लगे कि कांग्रेस क्या कर चुकी है, क्या कर रही है और क्या करना चाहती है। बंधुआ श्रमिकों का मामला भी कांग्रेस के सामने आया और ग्रामवासियों की कर्जदारी मिटाने का संकल्प किया गया।

जयप्रकाश द्वारा विद्रोह की आवाज़—इस बीच जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन का विस्तार हो रहा था। 3 से 5 अक्टूबर तक बिहार बन्द का आयोजन किया गया। इस अवसर पर जयप्रकाश नारायण ने कहा "आज से न बिहार के ज़रिए कोई रेल चलेगी, न बस, सरकारी दफ्तर, यहां तक कि सचिवालय भी खाली होंगे। एक हफ्ते तक सरकार को पक्षाघात ग्रस्त करना बिहार में सरकार को गिराने के लिए काफी होगा। हमारा युद्ध केन्द्रीय सरकार से है न कि केवल बिहार सरकार से।"

इन्दिरा के विरुद्ध अदालती निर्णय—12 जून, 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इन्दिरा गांधी के चुनाव के विरुद्ध फैसला दिया। इसके मैं सर्वोच्च अदालत में अपील करने के लिए 20 दिन की मुहलत दी गई। फिर भी लोगों ने यह कहना शुरू किया कि इन्दिराजी फौरन इस्तीफा दें। 24 जून को सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश ने कहा कि इन्दिरा गांधी के प्रधान मंत्रित्व पर कोई रोक नहीं है, पर वह सांसद के रूप में तब तक मत न दें जब तक अपील पर पक्का फैसला नहीं हो जाता। इस पर भी जनसंघ, संगठन कांग्रेस पुरानी तथा लोकदल प्रधान मन्त्री के इस्तीफे की मांग करते रहे।

आपातस्थिति की घोषणा—इन्हीं परिस्थितियों में 26 जून, 1975 को देश में आपातस्थिति घोषित कर दी गई। प्रधान मन्त्री ने आकाशवाणी से कहा "लोकतन्त्र के नाम पर लोकतन्त्र को चालू रखने का विरोध किया जा रहा है। वैध रूप से चुनी हुई सरकार को काम नहीं करने दिया जा रहा है और कई मामलों में वैध रूप में चुने हुए विधायकों को इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया जा रहा है ताकि वैध विधान सभाएं रद्द हो जाएं। देश भर में गड़बड़ मची है जो अक्सर हिंसक कार्यों में परिणत हो जाती है। कुछ लोग फौज को भी भड़का रहे हैं कि वे विद्रोह करें। मुझ पर सब तरह के दोषा

रोपण किए गए हैं। यह कोई व्यक्तिगत मामला नही है। मैं प्रधान मत्री रहू या न रहू, यह महत्वपूण नही है, पर प्रधान म त्री का पद महत्वपूण है और जानबूझकर राजनैतिक रूप से इसे अवमूल्यित करने का प्रयास न लोकतन्त्र के हक मे है न राष्ट्र के।

"हमने इन घटनाओ को बडे धैय के साथ देर तक सहन किया। फिर भी देश के साधारण क्रियाकलाप का छिन्न भिन्न करना जारी रहा। कुछ लोग विशाल बहुसख्या के अधिकारो पर कुठाराघात कर रहे हैं। यह स्थिति कडी कारवाई की माग करती है। आपातस्थिति से साधारण व्यक्ति को कोई भय नही है।"

बीस सूत्री कायक्रम की घोषणा—1 जुलाई, 1975 को इन्दिरा गाधी ने एक बीस सूत्री कायक्रम की घोषणा की जिसका उद्देश्य कमजोर वर्गों का आर्थिक उन्नयन है। इसमे शहर वाले कमजोर वर्गों के अलावा गाव वालो, विशेषकर खेतिहर मजदूरो को राहत पहुचाने की अनेक योजनाए घोषित की गईं।

1975 की काग्रस—31 दिसम्बर, 1975 मे कोमागाटा मारू नगर (चडीगढ) म देवकान्त बरुआ की अध्यक्षता मे काग्रेस का 75वा अधिवेशन हुआ। उन्होने कहा कि जो लाग वध रूप से चुनी हुई विधान सभाओ को तोडने का षडयन्त्र कर रहे है, वे लोकतन्त्र के शत्रु और फासिस्ट हैं। बरुआ न आपातस्थिति की घोषणा का जोरदार समथन किया। उन्होने बीस सूत्री कायक्रम का अनुमोदन करते हुए कहा कि आर्थिक रूप स आगे बढन का यही तरीका है। उन्होने कहा कि 1976 को काग्रेसजन 'सगठन वष' के रूप मे मनाए।

मोरारजी प्रधानमन्त्री—आपातस्थिति के अन्तगत शासन ने जयप्रकाश नारायण सहित अनेक नेताओ को जेल मे डाल दिया। 1976 के अन्त मे इन्दिरा गाधी ने आम चुनाव की घोषणा की। 1977 के इस चुनाव मे काग्रेस हार गई। नवनिर्मित विरोधियो की जनता पार्टी की जीत मे सबसे बडा घटक यह रहा कि काग्रेस ने कुछ सख्ती के साथ परिवार नियोजन का कायक्रम चलाया था, जिसके कारण जनता क्षुब्ध थी। इस काय मे इन्दिरा जी के छोटे बेटे सजय गाधी ने अगुवाई की थी। जनता गुट ने इसका फायदा उठाया जिसका नतीजा यह हुआ कि गुट शक्ति आरूढ होने पर यह कायक्रम एकदम खत्म सा हो गया। जनता गुट को लोकसभा मे 299 स्थान मिले। मोरारजी देसाई के प्रधान मन्त्रित्व मे सरकार बनी, जिसमे चरण सिंह, जगजीवनराम आदि मन्त्री बने। ये सब लोग भूतपूव काग्रेसी थे, ये सब अपने को महात्मा गाधी के असली शिष्य मानते थे। जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्ध मे इनके विचार मुख्यत द्विधाग्रस्त थे, यद्यपि ये जवाहरलाल नेहरू के प्रधान मन्त्रित्व मे काम कर चुके थे।

रेड्डी काग्रेस अध्यक्ष—चुनाव मे काग्रेस की हार के कारण देवकान्त बरुआ ने काग्रेस की अध्यक्षता से इस्तीफा दे दिया। कायसमिति ने स्वर्णसिंह को अस्थायी काग्रेस अध्यक्ष चुना और ब्रह्मानन्द रेड्डी 6 मई 1977 को नियमित अध्यक्ष नियुक्त हुए। पर ब्रह्मानन्द रेड्डी सकटग्रस्त काग्रेस को वह नेतृत्व नही दे सके, जिसकी उसे आवश्यकता थी। काग्रेस के सत्ता मे न रहने के कारण उसके अनेक घटक उसस अलग होने का विचार करने लगे। जनता शासन ने इन्दिरा गाधी तथा उनकी सरकार के लिए एक जाच आयोग भी बैठा दिया था जिसकी कायवाहियो से अनेक काग्रेसजन परेशान थे। इसी बीच एक दिन के लिए इन्दिरा गाधी को गिरफ्तार भी किया गया।

1 जनवरी 1978 का सम्मेलन—काग्रेस के अन्दर असन्तोष बढने लगा। कमलापति त्रिपाठी, पी० वी० नरसिंह राव, श्रीमती चन्द्रशेखर, ए० पी० शर्मा, वीरेन्द्र वर्मा, बूटा सिंह आदि ने मिलकर 1 जनवरी, 1978 को एक कनवेनशन बुलाया।

इसमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिकांश सदस्य उपस्थित थे। इस सम्मेलन का उद्देश्य राष्ट्र के सामने की चुनौतियों का असरदार तरीके से सामना करना था। इस सम्मेलन ने सर्वसम्मति से इंदिरा गांधी को कांग्रेस की अध्यक्ष चुना।

कांग्रेस के फिर दो टुकड़े- कांग्रेस के फिर एक बार दो टुकड़े होने की नौबत आ गई। एक के अध्यक्ष ब्रह्मानन्द रेड्डी रहे दूसरे की नेता इंदिरा गांधी हो गई। एक बार फिर सड़े गले अंश को, जो सांस तो ले रहा था परन्तु पक्षाघातग्रस्त था, शल्यक्रिया से काटकर परित्याग करने में इंदिराजी ने बड़े साहस का परिचय दिया। भविष्य की घटनाओं ने यह प्रमाणित कर दिया कि कौन कांग्रेस असली है।

इंदिरा कांग्रेस की विचारधारा—उक्त सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित हुआ, जो संक्षेप में यों था

"भारत के आधुनिक इतिहास में अभी जो वर्ष समाप्त हुआ है, वह बहुत मार्के का वर्ष था। तीन दशकों तक बराबर सत्तारूढ़ रहने के बाद कांग्रेस अब अधिकारच्युत है। भारत में इस समय राजनैतिक स्थिति दिशाहीनता से ग्रस्त और परस्पर विरुद्ध बहाव और तनाव की शिकार है। चुनाव में हारने के बाद कांग्रेस के लिए यह समय कार्य का साथ ही परीक्षा का भी है।

'जब से जनता सरकार सत्ता में आई है, वह बराबर धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद सम्बन्धी हमारे चिरपोषित और प्रिय मूल्यों पर आघात करती जा रही है। जवाहरलाल नेहरू द्वारा आरम्भ नीतियों को प्रतिदिन पैरों तले कुचला जा रहा है। एकाएक साम्प्रदायिक दंगे उभर पड़े हैं। जनता सरकार से मिलकर स्थिर स्वार्थवालों का कमजोर वर्गों पर हमला जारी है। कांग्रेस के दफ्तरों पर हमला और कांग्रेसियों का निर्यातन हो रहा है। देश में सुरक्षा की कमी होती जा रही है।

'अल्पसंख्यकों के प्रति जनता पार्टी की नीति विशेष रूप से खतरनाक है। बात यह है कि यह दल जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बना है, यहां तक कि इतिहास लेखन को भी जनसंघी झुकाव देने का प्रयास जारी है। प्रतिक्रियावादी तत्वों को खुश करने के लिए भाषा नीति को साम्प्रदायिकता के रंग में रंगने का प्रयास चालू है। वास्तविक' गुटनिरपेक्षता के नाम पर भारत सरकार गुटनिरपेक्षता से हट रही है जो हमारी वैदेशिक नीति की आधारशिला रही है। आत्मनिर्भरता की नीति के बजाय हम दबाव में आकर आणविक ही नहीं, हर क्षेत्र में पर निर्भरता की ओर जा रहे हैं। लोकतंत्र की कसम खाते रहने पर भी जनता दल उपचुनावों के अवसरों पर खुल्लमखुल्ला बेईमानी कर चुकी है। स्थिर स्वार्थवाले शह पाकर मतदान पेटियों को उठाकर चलते बने या उन्हें बदल दिया। इस प्रकार इस दल के कारण संसदीय लोकतंत्र की पद्धति ही खतरे में है।

"कीमतें बुरी तरह बढ़ रही हैं।

"इन कारणों से कांग्रेस को उत्पन्न परिस्थिति से जूझने तथा चुनौतियों का सामना करने के लिए आगे आना चाहिए था, परन्तु कांग्रेस संगठन की तरफ से कोई पथ प्रदर्शन नहीं हो रहा है।

'श्रीमती इन्दिरा गांधी की गिरफ्तारी से देश भर में जो स्वतःस्फूर्त उथल पुथल दृष्टिगोचर हुई उसका फायदा उठाकर देश के सामने की असली समस्याओं के समाधान की पहल की जानी चाहिए थी। पर ऐसा नहीं हुआ। 1969 का महान विखंडन जिस आस्था के आधार पर कार्यान्वित किया गया था, उस आधार से कांग्रेस विचलित होती दिखाई पड़ रही है। आम चुनाव में हार के असली कारण को लोग समझ नहीं पाए कि विदेशी और देशी प्रतिक्रियावाद के गठजोड़ से ही कांग्रेस की पराजय हुई। कुछ

कांग्रेसी नेता इस भ्रमजाल मे भटक गए कि हम ज्यादा गरम थे, इस कारण हार गए। कुछ लोग भीतर ही भीतर जनता दल से जवाबी सहयोग के लिए ललकने लगे। विचार-धारा को छोडकर तोड जोड की नीति अपनाने की ओर कदम बढने लगे। यह सडाध इस हद तक बढी कि कांग्रेस का पृथक अस्तित्व ही डावाडोल हो रहा है।

'बार-बार चेतावनी देने पर भी कांग्रेस हाई कमान के कानो पर जू नही रेंगी। इसके विपरीत जिन लोगो ने मूलभूत मसले उठाए, उन पर पुरानी पडी हुई अनुशासन की लचर लाठी लपलपाई गई। हमने सुझाव दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक बुलाकर विचार विमर्श किया जाए, परतु सागठनिक नेता उसे टालते चले गए। इन्ही मजबूरियो के कारण सारी परिस्थिति पर जमकर मथन करने के लिए, नेतत्व के दिमाग की गाठो को खोलने तथा पददलितो के लिए अपने को उत्सर्ग करने के लिए यह सम्मेलन बुलाया गया। इससे अनुशासन भग नही हुआ, बल्कि किसी जीवित दल को विचार तथा काय के क्षेत्र मे गतिशील रखने के लिए ऐसे सम्मेलन अपरिहार्य हैं। इसलिए उन कांग्रेसजनो को धन्यवाद है जो इसमे शामिल हुए।"

भावी क्रियाकलाप—भावी क्रियाकलाप का एक खाका भी खीचा गया जिसमे पूरी नीति स्पष्ट करके बताई गई। कहा गया कि—

(क) लोकतत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और गुटनिरपेक्षता के आधार को अक्षुण्ण रखते हुए कांग्रेस की नीतियो का पुनर्मूल्याकन और पुनर्निर्धारण हो। (ख) साप्रदायिकता से लोहा लेने के लिए अल्पसख्यको को सतुष्ट रखा जाए। अलीगढ विश्व-विद्यालय के मौलिक चरित्र को कायम रखने के उद्देश्य से कानून बनाया जाए। (ग) सब स्तरो पर दल के कार्यकर्ताओ को सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के प्रति सजग रहने की शिक्षा दी जाए। (घ) दल का कार्यक्रम कहा तक कार्यान्वित हो रहा है, इस पर स्वय क्रियाशील सतर्क दृष्टि रखी जाए। (च) जीवन के हर क्षेत्र मे बुद्धिजीवियो को स्वय से जोडा जाए। (छ) शिक्षा के क्षेत्र मे शहरी धनाढ्य विद्यालयो और गाव के वचित विद्यालयो मे विद्यमान अन्तर को कम से कम किया जाए। (ज) चुनावो म धन का प्रभाव घटे। (झ) असमानता को, जहा तक बन पडे कम किया जाए क्योकि समाजवाद की ओर यात्रा का यही तकाजा है।

सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य—अत मे यह कहा गया कि जनता सरकार द्वारा पोषित स्थिर स्वार्थ के अभियान को रोका जाए और कमजोर वर्गों के स्वार्थ की रक्षा के लिए सत्याग्रह और शातिपूर्ण आदोलन किया जाए। दल सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनकर काम करे, इस बात पर जोर दिया गया।

दल से निकाला—इस सम्मेलन की प्रतिक्रियास्वरूप ब्रह्मानद रेड्डी ने 3 जनवरी 1978 को यह फैसला किया कि जिन कांग्रेसजनो ने इन्दिरा गाधी को अध्यक्ष माना है वे सब कांग्रेस से निकाले जाते हैं। इसके बाद तदनुसार प्रातीय और जिला कांग्रेसो मे रिक्त स्थानो की पूर्ति की जाएगी।

चव्हाण ब्रह्मानद रेड्डी के साथ—यशवतराव चव्हाण ने 27 दिसम्बर, 1977 को ब्रह्मानद रेड्डी के साथ यह वक्तव्य दिया था—'यह बिलकुल स्पष्ट है कि यह सम्मेलन व्यक्तिगत तथा गटीय उद्देश्य से दल को विखडित करने का प्रयत्न है, इसलिए हम साफ कर देना चाहते हैं कि यह सम्मेलन दल विरोधी कार्यवाही समझा जाएगा।"

इन्दिरा फिर ससद मे—इस बीच इन्दिरा गाधी ससद सदस्या नही थी। परन्तु 1978 के नवम्बर मे वे चिकमगलूर से चुनकर फिर लोक सभा मे आ गइ। यह चुनाव बहुत मार्के का रहा और उन्होने जनता प्रत्याशी को 80 हजार मतो से हराया। यह

घटना शासन में कांग्रेस की नाकामी की पूर्वसूचना सिद्ध हुई।

जनता सरकार शिवजी की बारात—जनता दल की सरकार शुरू से ही गड़बड़ झाले में रही। कहते हैं, जनता दल के अधिकांश सांसद जगजीवनराम को दल का नेता बनाना चाहते थे, परन्तु जयप्रकाश जी ने मोरारजी का नाम प्रस्तावित किया और वे प्रधानमंत्री हो गए। चरणसिंह जबरदस्त महत्वाकांक्षी थे और प्रधान मंत्री बनने का स्वप्न देखते थे। राजनारायण का व्यक्तित्व अपने ढंग का अनोखा था। वह रायबरेली में इंदिरा गांधी को हराकर एकाएक बड़े नेता बन चुके थे। जनता सरकार ने अपने राज्यकाल में उनसे ऐसा दुर्व्यवहार किया कि जून, 1977 में उन्होंने 'संडे रिव्यू' के भूतपूर्व सम्पादक नामन कज़िंस से कहा था कि "मैं कोई मिरगीग्रस्त व्यक्ति नहीं हूं, न मैं अतिरंजित बोलती हूं, पर जनता सरकार ने मेरे और संजय के विरुद्ध सब तरह की झूठ गप्पें उड़ाई हैं। मैं समझती हूं कि इससे तो अच्छा है कि बांगला देश के नेता मुजीब की तरह मारी जाती।' मुजीब 15 अगस्त 1975 को विदेशी एजेंटों के हाथ मारे गए थे।

चरणसिंह प्रधान मंत्री—जब तक जनता सरकार रही, उसने इन्दिरा गांधी और कांग्रेसियों के विरुद्ध न जाने कितने जांच आयोग बठाए, कुछ अखिल भारतीय स्तर पर, कुछ राज्यीय स्तर पर। अभी इन आयोगों का काम खत्म नहीं हुआ था कि आपसी झगड़ा के कारण मोरारजी सरकार का पतन हो गया। चरणसिंह नए प्रधान मंत्री बने, परंतु संसद में उनका बहुमत नहीं था, इसलिए संसद की बैठक के पहले ही उन्हें इस्तीफा देकर अलग होना पड़ा। राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने संसद भंग करके चुनावों की घोषणा कर दी।

इंदिरा गांधी की वापसी—1980 के चुनावों में कांग्रेस फिर सत्ता में आ गई और इंदिरा जी फिर प्रधान मंत्री बन गइं।

जनता सरकार के बिखरकर ही नहीं बल्कि हास्यास्पद बनकर टूट जाने के बाद इन्दिरा गांधी के द्वितीय युग का सूत्रपात होता है। यों तो लालबहादुर शास्त्री की मत्यु के बाद ही इन्दिरा युग आरम्भ हो चुका था और उस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि बांगला देश की स्वाधीनता में निर्णयात्मक भाग लेना था।

यहां आगे बढ़ने से पहले यह बात स्पष्ट कर दी जाए कि बांगला देश को स्वाधीनता दिलाने में इन्दिरा गांधी ने जो कुछ किया, वह केवल इन्दिरा ही कर सकती थीं। उदाहरणस्वरूप, यदि महात्मा गांधी के हाथों में उस समय बागडोर होती, तो वह अहिंसा के नाम पर वे कदम उठने न देते जो इन्दिराजी ने उठाए। इसी प्रकार यदि जवाहरलाल नेहरू के हाथों में बागडोर होती, तो वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून की उलझनों में फंसकर रह जाते। रहे लालबहादुर, वह जरूर आक्रमण का जवाब मुंह तोड़ आक्रमण से दे सकते थे जैसा कि 1965 के हिन्द पाक युद्ध के समय देखा गया, परन्तु वह भी शायद शत्रु को केवल अपनी भूमि से भगा कर ही रुक जाते, ढाका तक उनके चरण न जाते।

इन्दिरा गांधी ने 1971 में जो कुछ किया उसके विचारधारागत, साथ ही व्यवहारिक परिणाम बहुत जबर्दस्त रहे। भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे खतरनाक विचार, जिसने करोड़ों लोगों को गुमराह किया, वह था दो राष्ट्र का सिद्धांत। इस सिद्धांत के प्रतिपादकों ने यह कहा कि हिंदू अलग जाति (नेशन) के हैं और मुस्लिम अलग जाति के। इतिहास का यह एक दर्दनाक अध्याय है कि बैरिस्टर जिन्ना और कवि इकबाल सारे भारतीय मुसलमानों को (कुछ राष्ट्रीयतावादी मुसलमानों को छोड़कर) इस सलाब में बहा ले जाने में सफल हो गए। इन्दिराजी ने बंगाली मुसलमानों को इस दलदल से उद्धार

किया, जो इस बीच पाकिस्तानी जकड मे रहकर अपने तजुर्बे से समझ चुके थे कि इस्लाम की आड मे उनका औपनिवेशिक शोषण किया जा रहा है। उनके लिए यह गुलामी का दूसरा युग (1947-1971) रहा।

व्यवहारिक लाभ—इंदिरा जी ने उस समय जो कुछ किया, उतना ही उनके अमरत्व के लिए काफी था क्योकि बागला देश बनने मे कम-स-कम पूव मे हमारा खतरा काफी कम हो गया। यदि बागला देश के राष्ट्रपिता बगबधु मुजीब जीवित रहते या उनकी विचारधारा के लोगो का नेतत्व रहता, तो यह खतरा बिल्कुल ही न रहता। पर अफसोस है कि साम्राज्यवादी तथा सप्रदायवादी शक्तियो ने मुजीब की हत्या करवा दी। फिर भी वे टूटे पाकिस्तान को जुडवा न सके।

गुटनिरपेक्ष आदोलन की नेता इस द्वितीय युग म इंदिरा गाधी ने अनेक महत्वपूण काय किए। पर उनमे सबसे महत्वपूण काय रहा गुटनिरपेक्ष आदोलन का नेतृत्व कर उसे निखार देना। 1961 म बलग्रेड मे गुटनिरपेक्ष देशो का प्रथम सम्मेलन हुआ था। इस आदोलन का प्रतिपाद्य यह था कि स्थायी शाति तभी हो सकती है जब साम्राज्यवाद, तथा उपनिवेशवाद का अत होकर सहअस्तित्व मा य हो। जवाहरलाल, माशल टिटो और नासेर आदोलन के प्रवतक नेता थे।

क्रमश इस आदोलन मे नए स्वतत्र देशो के आते जाने से यह आदोलन अधिकाधिक व्यापक तथा शक्तिशाली होता गया। आदोलन म शामिल देश सनिक या आर्थिक दष्टि से बडी शक्तिया नही थे, पर कुल मिलाकर उनकी नतिक शक्ति इतनी बढती जा रही है कि महाशक्तिया अब उनकी अवज्ञा नही कर सकता। स्वाभाविक रूप से यह आदोलन साम्राज्यवाद की आखो मे खटकने लगा है।

1983 म दिल्ली मे हुए इसके अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन म इंदिरा जी इसकी प्रधान चुनी गइ। उन्होने सारे ससार की ओर से आणविक युद्ध को रोकने के लिए एक जबदस्त अपील की।

इंदिरा जी ने सयुक्त राष्ट्र सघ की शक्ति बढाने पर जोर देते हुए कहा कि उसके आगामी 38 वें अधिवेशन (1985) को इस प्रकार सबल और मशक्त बना दिया जाए कि उसमे देशो के बीच उठने वाली सारी उलझनो को सुलझाया जा सके। इस सुझाव का उद्देश्य उस दुष्प्रवत्ति को रोकना था, जो अमेरिका की ओर से दष्टिगोचर हो रही थी। अमेरिका चाह रहा था कि ससार मे जो कुछ भी हो, चाहे शाति हो या युद्ध, अमेरिका की अनुमति से तथा उसका लाभ देखकर हो।

तमाम दावो के बावजूद यह सिद्ध हो चुका है कि साम्राज्यवादी शक्तिया किसी भी कमजोर देश के आर्थिक उत्थान म हाथ बटाना नही चाहती उनका एकमात्र उद्देश्य है आर्थिक शोषण जो तभी सिद्ध हो सकता है जब अविकसित देश उद्योग के क्षेत्र म पिछडे रहे। इस कारण इंदिराजी ने दिल्ली सम्मेलन म यह नारा भी दिया कि भले ही साम्राज्य वादी हमारी सहायता न करे, हम एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए। यह एक नया तथा सवथा मौलिक दष्टिकोण है, जिससे साम्राज्यवादियो के लिए भयकर खतरा पदा होता है।

सम्मेलन मे अमरिकी पक्षधरो के कारण कई मामले खटाइ मे पडे रह गए। हिद महासागर म मारिशस से लिए टापू डिएगो गार्सिया मे अमरिका कई सालो से अति प्रचड सैनिक तयारिया कर रहा है, जिससे यह सारा क्षेत्र अमेरिकी हवाई तथा समुद्री बेडे की मार के अन्दर आ गया है और यह महासागर युद्ध का क्षेत्र बन गया है। परन्तु गुटनिर-पेक्ष सम्मेलन म इसके विरुद्ध कोइ प्रस्ताव पारित न हो सका। इसी प्रकार कैरिबियन

समुद्र को शांति क्षेत्र करार देना भी सम्भव नहीं हुआ।

इन सारी अड़चनों के बावजूद सम्मेलन बहुत सफल रहा और इन्दिरा गांधी के नेतृत्व की सभी देशों में प्रशंसा हुई। दुनिया ने देख लिया कि भारत शांति का पोषक है। इंदिरा गांधी ने गुटनिरपेक्ष संघ को शांति आंदोलन की सबसे बड़ी संस्था बना दिया है। सबने इस सफलता की प्रशंसा की है। छठे सम्मेलन के अध्यक्ष फिदेल कास्त्रो ने इस कारण इंदिरा जी की सराहना की कि उनके नेतृत्व में यह संस्था शांति, राष्ट्रीय स्वाधीनता और विकास का वाहन बन गई है। गुटनिरपेक्ष सम्मेलन के कारण संसार के बुद्धिजीवियों, चिंतकों, संपादकों, लेखकों का ध्यान भारत की ओर गया।

एशियाई खेल—अपने प्रधान मंत्रित्व काल में इंदिराजी ने इससे पहले 1982 में एशियाई खेल भी कराए, जो बहुत सफल रहे और निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुए। उस समय भी कुछ सप्ताहों के लिए सारे एशिया की और बड़ी हद तक विश्व की खेल दुनिया की आंखें भारत पर टिकी रहीं।

राष्ट्रीय उपलब्धियां—इंदिरा-युग में कई बहुत बड़ी घटनाएं हुई, जिनमें ये विशिष्ट हैं

(1) इस युग में भारत अनाज के क्षेत्र में सम्पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बन गया। इसे 'हरित क्रांति' कहते हैं और यह इसलिए सम्भव हुई कि वैज्ञानिक ज्ञान का कृषकों की झोंपड़ियों से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया। वैज्ञानिक शोध से दैनिक आवश्यकताओं का रक्त सम्बन्ध स्थापित करना इंदिरा युग की महान उपलब्धि रही।

(2) इसी युग में भारत में दूरदर्शन का आरंभ हुआ, जो हम रे जीवन का यहां तक अविच्छेद्य अंग बन चुका है कि अब लगभग 70 फीसदी जनता इसका लाभ उठा सकती है। भारतीय दूरदर्शन की एक विशेषता यह है कि इसमें आम जनता के लिए शैक्षणिक तथा विकासात्मक कार्यक्रमों को पूरा महत्व दिया गया है।

(3) इंदिरा जी के प्रधान मंत्रित्व काल में पहली बार स्वतंत्रता प्राप्ति के 25 वर्ष बाद 1972 में स्वातंत्र्य योद्धाओं को ताम्रपत्र आदि देकर उन्हें स्वीकृति प्रदान की गई और पेंशनें देकर सहायता दी गई।

(4) 1971 में हिंद सोवियत मैत्री और पारस्परिक सहयोग संधि करके भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने को सुदृढ़ बना लिया।

1983 की कलकत्ता कांग्रेस

1983 में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। कलकत्ता कांग्रेस में पारित प्रस्तावों में तीन प्रकार के चिंतन सामने आए – राजनतिक, आर्थिक और अंतर्राष्ट्रीय। साम्प्रदायिकता से लोहा लेने के लिए कांग्रेसजनों को विशेष हिदायत दी गई। कहा गया कि भारत तभी प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है जब मुसलमान, ईसाई, सिक्ख सभी हर क्षेत्र में विश्वास और सम्मिलित प्रयास से बहुसंख्यकों के साथ सहयोग कर।

कांग्रेस के लिए यह दृष्टिकोण कोई नया नहीं है। केवल गांधी या नेहरू युग में ही नहीं, 1919-20 के पहले से ही कांग्रेस सभी धर्मों के प्रति समदर्शिता दिखाती रही है। हम पहले ही दिखा चुके हैं कि महात्मा गांधी द्वारा कांग्रेस के आमूलचूल परिवर्तन किए जाने से पूर्व ही कांग्रेस के कई अध्यक्ष अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हो चुके थे। स्वराज्य के बाद भी अनेक राष्ट्रपति सेनाध्यक्ष आदि अल्पसंख्यकों में से बने और बन रहे हैं। 1983 के इस अधिवेशन के समय ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्रपति पद पर सुशोभित थे।

केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों पर राजनैतिक प्रस्ताव में कहा गया कि केन्द्र का शक्तिशाली होना और रहना आवश्यक है। बाद की घटनाओं ने प्रमाणित कर दिया कि शक्तिशाली केन्द्र के बिना देश में बिखराव की प्रक्रिया आरम्भ हो सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सम्बन्धी प्रस्ताव में स्वतन्त्र भारत की चिरन्तन गुटनिरपेक्ष नीति की पुनर्व्याख्या करते हुए कहा गया कि जनता पार्टी की समदूरता वाली निर्जीव नीति कांग्रेस को स्वीकार नहीं है। कहा गया कि मध्य अमेरिका में अग्निकुंड प्रज्वलित हो सकता है। यह भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि ग्रेनाडा में अमेरिका ने हस्तक्षेप किया है। अफगानिस्तान में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा राजनैतिक समाधान की तलाश का समर्थन किया गया। नमिबिया की आजादी के साथ बाहरी गठबंधनों की शर्तों की निन्दा की गई।

आर्थिक प्रस्ताव में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (आई० एम० एफ०) की सहायता लेने से बचकर अपने पैरों पर खड़े होकर आगे बढ़ने की बात कही गई।

अकाली आतंकवाद—हम देख चुके हैं कि बांगला देश के उदय से किस प्रकार जिन्ना और कवि मुहम्मद इकबाल द्वारा प्रतिपादित दो राष्ट्र सिद्धान्त की कमर टूट गई और यह स्पष्ट हो गया कि धर्म के आधार पर राष्ट्र नहीं बना करते। यदि धर्म राष्ट्र का आधार होता, तो संसार के सारे मुसलमानों को एक राष्ट्र में होना चाहिए था।

जो हो, 1971 में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि दो राष्ट्र सिद्धान्त के मुर्दे का भूत कुछ सिक्खों के सिर पर सवार होकर त्रिराष्ट्र सिद्धान्त का रूप ग्रहण करेगा। 13 अप्रैल, 1978 को यह भूत सार्वजनिक रूप से उस समय प्रकट हुआ, जब अमृतसर के स्वर्णमन्दिर से निकलकर कुछ सिक्खों ने निरंकारियों पर हमला किया। इसके दो महीने के अन्दर स्वर्ण मन्दिर की ओर से निरंकारियों पर हमला करने का बाकायदा हुक्मनामा निकला। स्मरण रहे कि निरंकारी सिक्ख गुरुओं को तथा गुरु ग्रन्थ साहब को अन्य सिक्खों के समान ही मानते हैं परन्तु वे अहमदियों की तरह यह भी मानते हैं कि बाद में भी गुरु हो सकता है।

इसके बाद विदेशी एजेंटों के इंगित पर भिण्डरवाला के नेतृत्व में सेवानिवृत्त सिक्ख सैनिकों के साथ साठगांठ शुरू की गई। प्रशिक्षित सैनिकों के सहयोग के कारण आतंकवाद के लिए पका पकाया माल मिला।

1977 के चुनाव में कांग्रेस की हार के बाद पंजाब में अकाली दल सरकार में आ गई थी। इस सरकार ने अपनी प्रथम सरकारी विज्ञप्ति में यह कहा कि यदि भ्रष्टाचारी अधिकारी स्वर्ण मन्दिर में जाकर अमृत सरोवर में डुबकी लगाने के बाद ग्रन्थी के सामने यह प्रतिज्ञा करें कि वे आगे भ्रष्टाचार नहीं करेंगे, तो उन पर कोई कारवाई नहीं होगी। जून, 1978 में एक हुक्मनामा जारी करके निरंकारियों के नाश का आह्वान किया गया। अक्टूबर, 1978 में आनन्दपुर साहब का प्रस्ताव पारित हुआ, जिसमें स्पष्ट रूप में देश को तोड़कर खालिस्तान बनाने का संकल्प किया गया। जनता पार्टी के अध्यक्ष चन्द्रशेखर मंच पर आसीन थे, पर वे मौन रहे। आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव का वही महत्व और स्थान है जो 1940 के मुस्लिम लीग प्रस्ताव का था। इसमें एक बात और जोड़ दी जाय, तो स्थिति स्पष्ट होगी। वह यह कि पाकिस्तान प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में बहुत से इलाके, यहां तक कि सिन्ध जैसे प्रान्त थे जिनमें मुसलमानों की बहुसंख्या थी, परन्तु सिक्ख बहुमत वाले जिले मुश्किल से एक या दो थे। सारे पंजाब में सिक्खों की बहुसंख्या कुछ ही प्रतिशत थी। इस कारण खालिस्तानी आतंकवाद का शुरू से ही लक्ष्य यह था कि इतना आतंक फैलाया जाय कि जो लोग सिक्ख नहीं हैं, वे पंजाब से भाग खड़े हों।

यह ने अमृतसर से 25 किलोमीटर दूर प्रीतनगर की स्थापना एक आदर्श ग्राम के रूप में की थी जिसमे धर्मनिरपेक्षता के स्वप्न को मूर्त करने की चेष्टा की गई थी। प्रसिद्ध अभिनेता बलराज साहनी, लेखक नानक सिंह आदि ने इसमे सहयोग किया था। एक पत्रिका भी निकलती थी। सुमीत सिंह के हत्यारे तथा दूसरे आतंकवादी जम्मू कश्मीर तथा पाकिस्तान मे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। 82 साल के एक वृद्ध सिक्ख धार्मिक नेता की इस कारण हत्या की गई कि उन्होंने आतंकवाद का साथ नहीं दिया। सैकड़ो हत्याओ के अलावा बैंक लूटे गए और स्टेशनों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानो पर आग लगाई गई। स्वर्ण मन्दिर को आतंकवादियो का सैनिक गढ़ बना लिया गया। इसमे आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्र तो थे ही, जबर्दस्त किलेबन्दी भी की गई। यह हत्यारो के छिपने का केन्द्र भी बन गया जो जहा तहां अपना काम करके यहा आ जाते थे। उनकी हिम्मत इतनी बढ़ गई कि 25 अप्रैल 1983 को स्वर्ण मन्दिर के सामने ही डी० आई० जी० पुलिस, अटवाल की हत्या कर दी गई और हत्या के बाद हत्यारे उसके अन्दर घुस गए। अटवाल स्वयं सिक्ख थे और दर्शन करके लौट रहे थे। फिर भी सरकार कार्यवाही करने से इसलिए हिचकिचा गई कि सिक्खो की धार्मिक भावनाओ को ठेस न लगे।

अन्त तक सरकार मजबूर हो गई और जून 1984 के प्रथम सप्ताह मे अच्छी तरह हिदायतें देने के बाद फौज की एक टुकड़ी स्वर्ण मन्दिर मे घुस गई। फौज से यह कहा गया कि किसी भी हालत मे हरमन्दर साहब पर गोली न चलायें। बहादुर भारतीय फौज ने, जिसमे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख फौजी थे, बड़ी कुशलता मे अपना काम पूरा किया। यद्यपि बहुत से बहादुर सिपाही भी आतंकवादियो की गोलियो से मारे गए परन्तु उन्होने स्वर्ण मन्दिर को आतंकवादियो से मुक्त कराने मे सफलता प्राप्त की। भिन्डरावाला साथियों सहित मरा पाया गया। यदि मन्दिर को हानि न पहुचाने की हिदायत न होती, तो सेना के लिए यह पन्द्रह मिनट का काम था और एक भी सैनिक को मरना न पड़ता।

स्वर्ण मन्दिर पर सैनिक कार्यवाही यद्यपि तभी की गई जब उसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय शेष नही रहा, परन्तु इसे सिक्खो ने अपने ढंग से लिया। विदेशो में बसे सिक्खो ने, जिनमे जगजीत सिंह का प्रमुख स्थान है, खुले तौर पर इन्दिरा गांधी इत्यादि को मार डालने की धमकियां देना शुरू कर दिया।

इन्दिराजी की शहादत—इन्दिराजी चट्टान की तरह अविचलित प्रतिदिन भारत के किसी न किसी कोने मे कभी दमकल की तरह आग बुझाती, नये नये कार्यों, उद्योगो का शुभारम्भ करती, गुमराह कांग्रेसियो को राह पर लाती, संसद में विरोधी पक्ष के छक्के छुड़ाकर उन्हें उपहासास्पद बनाती आगे बढ़ती चली जा रही थी। राष्ट्रीय कार्यों के अलावा अन्तरराष्ट्रीय गुत्थियों को सुलझाना, गुटनिरपेक्षता के नये मान स्थापित करना आदि भी चल रहा था। इन्दिरा मृत्युंजया थी, परन्तु उन्होंने समझ लिया था कि सिर पर खतरा के बादल मंडरा रहे हैं और अकालियो का षडयन्त्र शीघ्र ही रंग लायेगा। हत्या के एक दिन पहले 30 अक्टूबर को उड़ीसा की एक सभा मे उन्होंने कहा—"यदि देश की सेवा में मेरी मृत्यु हो जाय, तो मुझे इस पर गर्व होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे रक्त के प्रत्येक बिन्दु से राष्ट्र के विकास मे सहायता मिलेगी और राष्ट्र उससे और भी समर्थ और गतिशील होगा।"

एक विदेशी संवाददाता से उन्होने कहा "नही, मुझे भय नही लगता। मुझ पर कई हमले हो चुके हैं। एक बार मुझ पर बन्दूक तानी गई। एक अन्य मौके पर एक व्यक्ति ने मुझ पर छुरा फेंका।"

इससे पहले लखनऊ में वह कह चुकी थी "यदि इंदिरा मारी जाय, तो उसके रक्त से सैंकड़ों इंदिरा अंकुरित होंगी और हजारों इंदिराएं देश की सेवा के लिए पैदा होंगी।"

उनकी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार अधिकारियों ने उनके अंगरक्षकों में से सिक्खों को हटा दिया परंतु उन्हें जब यह मालूम हुआ तो वह बोलीं—'फिर हमारी धर्मनिरपेक्षता कहां जाएगी?" नतीजा यह हुआ कि सिक्ख अंगरक्षक फिर बहाल कर दिए गए। इस प्रकार इंदिरा ने सेकुलरवाद के सिद्धांत के लिए जानबूझकर जान दे दी।

इसमें संदेह नहीं कि शहीद होकर वह मंगल पांडे से लेकर, आजाद, भगतसिंह, गणेश शंकर विद्यार्थी और महात्मा गांधी की गौरवशाली परम्परा में सम्मिलित हो गईं। 31 अक्टूबर को प्रातः साढ़े नौ बजे वह अपने सफदरजंग रोड वाले निवासस्थान से उसी से लगे अपने अकबर रोड वाले दफ्तर जा रही थी, तो उन्हीं के दो सिक्ख अंगरक्षकों ने एकाएक उन पर हमला कर दिया। एक के पास स्टेनगन था। उसने उन पर सारी गोलियां खाली कर दीं। दूसरे ने भी अपनी पिस्तौल से तीन गोलियां चलाई।

राजीव गांधी उस समय पूर्वी राज्यों के दौरे पर थे। खबर पाते ही वह दिल्ली के लिए रवाना हो गए, परन्तु जब वह संध्या समय पहुंचे, तो इन्दिराजी की नश्वर देह का अंत हो चुका था। सारे देश में ही नहीं, विश्व भर में शोक की लहर दौड़ गई। कई भावुक भारतीयों ने शोकसंतप्त होकर आत्महत्या कर ली।

महात्मा गांधी की हत्या 30 जनवरी 1948 को एक हिंदू धर्मांध के हाथों हुई थी। 31 अक्टूबर 1984 को इंदिरा गांधी की हत्या दो सिक्ख धर्मांधों के हाथों हुई। गहराई से देखा जाय तो दोनों के हत्यारे एक ही धर्मांध मनोवृत्ति के शिकार थे।

15

शताब्दी वर्ष मे राजीव युग का आरम्भ

इन्दिरा गाधी की हत्या से पहले तो ऐसा लगा कि देश का भविष्य नितात अधकारमय है, और काग्रेस सस्था तथा शासन को भी इससे गहरी क्षति पहुची है। पहला प्रश्न तो यही था कि सकट के इस काल मे सत्ता के हस्तातरण मे क्या कठिनाइया आ सकती हैं और क्या सहजता से नये प्रधान मत्री का चुनाव सम्पूर्ण भी हो सकेगा। परन्तु उसी शाम राष्ट्रपति के अरब देशो के दौरे से वापस आते ही यह काय जिस सरलता से सम्पन्न हो गया और श्री राजीव गाधी को निर्विरोध प्रधान मत्री बना दिया गया, यह आश्चय की बात रही। इससे पूव इस तरह के दोनो अवसरो पर, श्री नेहरू तथा श्री शास्त्री के निधन के बाद, पहले एक कायवाहक प्रधान मत्री चुना गया था — जो सयोगवश दोनो ही अवसरो पर श्री गुलजारीलाल नन्दा रहे—फिर कुछ समय बीतने के बाद ही स्थायी प्रधान मत्री का निर्वाचन किया गया।

दूसरी तात्कालिक समस्या इन्दिराजी के निधन से उत्पन्न रोष की प्रतिक्रिया थी जिसमे राजधानी दिल्ली तथा देश के अन्य अनेक नगरो और रेलगाडियो इत्यादि मे सिक्खो पर निदयता से आक्रमण करना आरम्भ हो गया। इसके साथ ही उनकी सम्पत्ति भी जहा-तहा आग लगाकर नष्ट की गई। दो तीन दिन तक बबरता का यह दृश्य चलता रहा, और लगा कि इस पर काबू पाना सम्भव नही है। परन्तु इन्दिराजी की अन्त्येष्टि समाप्त होते ही—जिसमे सौ से अधिक विदेशी प्रतिनिधियो ने भाग लिया—सेना की सहायता से तुरन्त स्थिति पर काबू पा लिया गया।

राजीव गाधी की स्थिति उनके काग्रेस का प्रधान चुन लिए जाने से और भी दृढ हो गई। इससे पूव वे काग्रेस सस्था के प्रधान मत्री थे। उन्होने तत्काल आम निर्वाचन की घोषणा कर दी और अपने इस निश्चित कदम मे इस विषय मे फैल रहे असमजस को दूर कर दिया। चुनाव घोषणा का एक लाभ यह भी हुआ कि इसने आम जनता को विनाश की दिशा से हटाकर भविष्य के लिए सोचने और करने की ओर प्रेरित किया।

दिसम्बर 1984 के अन्तिम सप्ताह मे चुनाव हुए और उसमे भारी बहुमत से काग्रेस की विजय हुई। इसमे उसे तीन चौथाई स्थान प्राप्त हुए। दरअसल यह भी एक रिकाड रहा क्योकि स्वतत्रता के बाद अब तक काग्रेस को इतना बहुमत कभी प्राप्त नही हुआ था। न तो नेहरूजी के युग मे और न इन्दिराजी के युग मे काग्रेस ने यह चमत्कार किया था।

1985 काग्रेस का शताब्दी वष है और इसी वष उसका एक नया युग भी आरम्भ हो गया है। यह राजीव गाधी का युग है। यह युग समस्याओ से पूण है, और उनका सफल समाकलन ही युग की सफलता भी निश्चित करेगा। इस देश की मूल समस्या सेकुलरवाद और उसकी स्थापना की है। आज का प्रश्न यह है कि जिस प्रकार 1947 म पाकिस्तान बना क्या अब फिर एक नया खालिस्तान और उसके बाद अन्य

धर्मों तथा प्रदेशों के दूसरे, तीसरे, चौथे 'स्तान' बनते चले जायेंगे।

कांग्रेस संस्था तथा उसके नेताओं को भविष्य में इसी समस्या से जूझना है। परन्तु आशा का कारण मुख्यतः इसलिए विद्यमान है क्योंकि सौ वर्ष की उम्र में जहां व्यक्ति और संस्थाएं प्रायः निर्जीव और नष्ट भी हो जाती हैं, वहां कांग्रेस संस्था की शक्ति न केवल नष्ट नहीं हुई है वरन नई परिस्थिति तथा नये परिप्रेक्ष्य में वह सकल्पवान है कि एक बार फिर देश तथा समाज को कुछ महत्वपूर्ण दे सके।

आशा का दूसरा कारण पिछले कुछ वर्षों में महात्मा गांधी के विचारों और कार्यपद्धति का पुनरोदय भी है जो एटेनबरो की फिल्म 'गांधी' में तथा उसके द्वारा व्यक्त है। आज एशिया, अफ्रीका और काफी हद तक लटिन अमेरिका की गरीबी के निराकरण का उपाय गांधी की आर्थिक विचारधारा ही लगती है। इसी तरह निरकुश शासनों के विरुद्ध संघर्ष का उपाय भी हिंसा या आतंकवाद न होकर असहयोग ही प्रतीत होता है जिसका अनेक देशों में प्रयोग भी किया गया है। दुनिया के विचारशील लोग यह महसूस करने लगे हैं कि भविष्य का नेता इक्कीसवीं शताब्दी का नेता गांधी ही है, कि उनने स्वयं अपने जीवन में जो कुछ किया वह मात्र आरम्भिक प्रयोग ही था जो उस समय न ठीक से समझा जा सका न स्वीकृत किया जा सका—उसकी वास्तविक परिणति का समय तो अब आ रहा है। 'स्माल इज ब्यूटीफुल', 'इन्टरमीजिएट तकनीकी' आदि का स्वीकार वास्तव में गांधी का ही स्वीकार है।

जहां तक राष्ट्रीय क्षेत्र का प्रश्न है उसमें पिछले दिनों मूल्यों का जो खेदजनक ह्रास हुआ है, उसके स्थान पर मानवी मूल्यों की पुनर्स्थापना तथा एक सरल, सहयोगी जीवन का विकास ही गांधीवादी जीवन की अवधारणा है जिसे हम फिर से अपनाना है।

कांग्रेस की स्थापना यद्यपि गांधी ने स्वयं नहीं की, तथापि गांधी के आगमन के बाद ही वह 'कांग्रेस' बनी, और दोनों एक दूसरे के पूरक तथा पर्याय हो गए—यहां तक कि गांधी के कांग्रेस छोड़ देने के बाद भी वह उनसे अलग नहीं हो सकी। आज भी यदि गांधी के विचारों का विश्व तथा भारत में प्रवर्तन होना है, तो उसका उपयुक्त तथा एकमात्र यन्त्र कांग्रेस संस्था ही बन सकती है।

□□

5822